जैन स्तोक मंजूषा

भाग–५

१. शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के लोकपालों एवं उनकी राजधानियों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तीसरा, उद्देशा सातवां; शतक चौथा, उद्देशा आठवां)

१–अहो भगवन्! शक्रेन्द्रजी के कितने लोकपाल हैं? हे गौतम! चार लोकपाल हैं–सोम, यम, वरुण, वैश्रमण। सौधर्मावतंसक विमान से पूर्वादि दिशाओं में असंख्यात योजन जाने पर अनुक्रम से इन चारों के विमान आते हैं। इनका यन्त्र और कितनाक वर्णन सूर्याभविमान के समान है। मेरुपर्वत से दक्षिणदिशा में जितना भी काम होता है, वह सब इन चारों लोकपालों की जानकारी में होता है।

चारों लोकपालों के विमान, विमानों की लम्बाई–चौड़ाई, परिधि तथा राजधानी का वर्णन इस प्रकार है–

सोम लोकपाल का सन्ध्याप्रभ विमान और सोमा राजधानी है। यम लोकपाल का वरशिष्ट विमान और जमा राजधानी है। वरुण लोकपाल का सयंजल विमान और वरुण राजधानी है। वैश्रमण लोकपाल का वल्गु विमान और वैश्रमणा राजधानी है। सब लोकपालों के विमानों की लम्बाई–चौड़ाई १२॥ लाख योजन है और परिधि ३९५२८४८ योजन झाझेरी (कुछ ज्यादा) है। राजधानी की लम्बाई–चौड़ाई और परिधि जम्बूद्वीप प्रमाण है। उपलेणका (चबूतरा) १६००० –१६००० योजन है। सब के *३४१–३४१ महल झूमकारूप हैं।

शक्रेन्द्र के लोकपाल सोम और यम की स्थिति एक

---

* बीच में मूल प्रासाद है, उसके चारों तरफ चार महल मूल से आधे लम्बे चौड़े ऊँचे हैं। चारों के चौतरफ १६ महल उनसे आधे, उन सोलह के चौतरफ ६४ महल उनसे आधे, उन चौसठ महल के चौतरफ २५६ महल, उनसे आधे = १+४+१६+६४+२५६=३४१महल का झूमका ऊपर लिखे अनुसार है।

पल्योपम और पल्योपम के तीसरे भाग अधिक की है। वरुण की स्थिति देश–ऊणी (कुछ कम) दो पल्योपम की है। वैश्रमण की स्थिति दो पल्योपम की है। सब लोकपालों के पुत्रवत् (पुत्रस्थानीय), आज्ञाकारी देवों की स्थिति १ पल्योपम की है।

सोम लोकपाल के आज्ञाकारी देव, देवियों के नाम– सोमकायिक, सोमदेवकायिक, विद्युत्कुमार, विद्युत्कुमारी, अग्निकुमार, अग्निकुमारी, वायुकुमार, वायुकुमारी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा। पुत्रवत् देवों के नाम–मंगल, विकोलिक, लोहिताक्ष, शनिश्चर, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति, राहु।

यम लोकपाल के आज्ञाकारी देव, देवियों के नाम–– यमकायिक, यमदेवकायिक, प्रेतकायिक, प्रेतदेवकायिक, असुरकुमार, असुरकुमारी, कंदर्प, नरकपाल (परमाधार्मिक)। पुत्रवत् देवों के नाम–अम्ब, अम्बरिस, श्याम, शबल, रुद्दे (रुद्र) उवरुद्दे (उपरुद्र), काल, महाकाल, असिपत्र, धनुष, कुम्भ, बालू, वैतरणी, खरस्वर, महाघोष।

वरुण लोकपाल के आज्ञाकारी देव, देवियों के नाम– वरुणकायिक, वरुणदेवकायिक, नागकुमार, नागकुमारी, उदधिकुमार, उदधिकुमारी, स्तनितकुमार, स्तनितकुमारी। पुत्रवत् देवों के नाम– कर्कोटक, कर्दमक, अञ्जन, शंखपाल, पुण्ड्र, पलाश, मोद, जय, दधिमुख, अयंपुल, कातरिक।

वैश्रमण लोकपाल के आज्ञाकारी देव, देवियों के नाम–– वैश्रमणकायिक, वैश्रमणदेवकायिक, सुवर्णकुमार, सुवर्णकुमारी, द्वीपकुमार, द्वीपकुमारी, दिशाकुमार, दिशाकुमारी, वाणव्यन्तर, वाणव्यन्तरी। पुत्रवत् देवों के नाम––पूर्णभद्र, मणिभद्र, शालिभद्र, सुमनोभद्र, चक्ररक्ष, पूर्णरक्ष, सद्वान, सर्वयश, सर्वकाम, समद्ध, अमोघ, असंग। ग्रामदाह यावत् सन्निवेशदाह, धनक्षय, जनक्षय,

तूँ ही बाती तूँ ही जोत

साध्वी ललिता

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

कुलक्षय आदि काम सोम लोकपाल के जाणपणा (जानकारी) में होते हैं। डिंबादि अनेक प्रकार के युद्ध और अनेक प्रकार के रोग यम लोकपाल के जाणपणा में होते हैं। अतिवृष्टि और अनावृष्टि, सुकाल, दुष्काल, झरना, तालाब, पानी का प्रवाह आदि वरुण लोकपाल के जाणपणा में होते हैं। लोह की खान, सोना, चांदी, सीसा, ताम्बा, रत्नों की खान, गड़ा हुवा धन वैश्रमण लोकपाल के जाणपणा में होते हैं।

ईशानेन्द्रजी के ४ लोकपाल हैं–सोम, यम, वरुण, वैश्रमण। ईशानावतंस विमान से उत्तरदिशा में इनके ४ विमान हैं–सुमन, सर्वतोभद्र, वल्गु, सुबल। सोम और यम की स्थिति दो पल्योपम में पल का तीसरा भाग ऊणी है। वैश्रमण की स्थिति दो पल्योपम की है। वरुण की स्थिति दो पल्योपम और पल का तीसरा भाग अधिक है। मेरुपर्वत से उत्तरदिशा में होने वाले सब काम इनके जाणपणा में होते हैं। सब लोकपालों के पुत्रवत् (पुत्र–स्थानीय), आज्ञाकारी देवों की स्थिति १ पल्योपम की है। शेष सारा अधिकार पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

२. अधिपति देवों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तीसरा, उद्देशा आठवां)

१–अहो भगवन्! असुरकुमार आदि भवनपति देवों में कितने अधिपति हैं? हे गौतम! असुरकुमार आदि दस भवनपतियों की एक–एक जाति में १०–१० अधिपति हैं, एक–एक जाति में दो–दो इन्द्र हैं। एक–एक इन्द्र के चार–चार लोकपाल हैं।

२–अहो भगवन्! वाणव्यन्तर देवों में कितने अधिपति हैं? हे गौतम! वाणव्यन्तर देवों में यावत् गन्धर्व तक दो–दो इन्द्र हैं और वे ही अधिपति हैं। वाणव्यन्तर देवों में लोकपाल नहीं होते।

३–अहो भगवन्! ज्योतिषी देवों में कितने अधिपति हैं? हे गौतम! ज्योतिषी देवों में चन्द्र और सूर्य ये दो अधिपति हैं और ये दो इन्द्र हैं। इनमें लोकपाल नहीं होते।

४–अहो भगवन्! वैमानिक देवों में कितने अधिपति हैं? हे गौतम! पहले, दूसरे देवलोक में १० अधिपति हैं। इसी तरह तीसरे, चौथे में १०, पांचवें से आठवें तक में ५–५ (एक–एक इन्द्र, चार–चार लोकपाल), नवमा, दसवां में ५, ग्यारहवां, बारहवां में ५ अधिपति हैं। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में अधिपति नहीं होते। वे सब अहमिन्द्र हैं। दक्षिणदिशा के लोकपालों के जो नाम कहे हैं, वे ही उत्तरदिशा के लोकपालों के नाम हैं। किन्तु तीसरे के स्थान में चौथा और चौथे के स्थान में तीसरा नाम कहना चाहिए। इनके नाम ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे में हैं।

३. देवता देवी की परिषद्, परिवार स्थिति का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तीसरा, उद्देशा दसवां)

१–अहो भगवन्! भवनपति और वैमानिक देवों में कितनी परखदा (परिषद्–सभा) हैं? हे गौतम! तीन–तीन परिषद् हैं–समिया (शमिका–शमिता), चण्डा, जाया। इनमें से समिया आभ्यन्तर परिषद् है। इससे इन्द्र महाराज सलाह पूछते हैं, विचार करते हैं। चण्डा मध्यम परिषद् है, इससे इन्द्र महाराज अपना विचार कहते हैं और नक्की (तय) करते हैं। जाया बाहर की परिषद् है, इसको इन्द्र महाराज अपना विचारा हुआ काम कह कर आज्ञा देते हैं। आभ्यन्तर परिषद् बुलाने से आती है, मध्यम परिषद् बुलाने से और बिना बुलाने से भी आती है, बाह्य परिषद् बिना बुलाये ही आती है।

प्रकाशकीय

गणधरों द्वारा ग्रंथित आगम ग्रन्थों का अध्ययन और अनुशीलन जन सामान्य के लिए दुरुह है। किन्तु कोई भी जिज्ञासु पाठक सूक्ष्मार्थ प्रतिपादक इन विशालकाय ग्रन्थों से सरलता से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सके इसलिए शास्त्रों में आये हुए मूल पाठों के आधार पर 'स्तोकों-थोकड़ों' का संकलन हुआ इनमें विशेष रूप से भगवती सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र के स्तोकों का संकलन दृष्टिगत होता है। इन स्तोकों की वाचना, पृच्छना, परियट्टणा और अनुप्रेक्षा करके अनेक भव्य आत्माओं ने तलस्पर्शी तत्त्वज्ञान रहस्य प्राप्त किया है।

भगवती और प्रज्ञापना सूत्र के थोकड़ों का सर्वप्रथम व्यवस्थित प्रकाशन श्री अगरचन्द भैरुंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था द्वारा हुआ। इसमें श्रद्धेय स्व. आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. के शिष्य शास्त्रमर्मज्ञ पं. रत्न श्री पन्नालालजी म.सा. तथा सुश्रावक श्री हीरालालजी मुकीम को सैंकड़ों थोकड़े कंठस्थ थे उनको भी जेठमलजी सेठिया ने लिपिबद्ध करवाया। तत्पश्चात् भगवती सूत्र के थोकड़ों के नौ भागों में तथा प्रज्ञापना सूत्र के थोकड़ों के तीन भागों में विभाजित कर प्रकाशित करवाया। अनेक संत-सती एवं मुमुक्षु भव्य जन इन थोकड़ों से लाभान्वित हुए।

इन थोकड़ों को कंठस्थ करने से तथा चिन्तन, मनन अन्वेषण करने से शास्त्रों के गहन विषयों पर भी

२–अहो भगवन्! वाणव्यन्तर देवों में कितनी परिषद् हैं? हे गौतम! तीन परिषद् हैं–इसा, तुडिया, दढरया (दृढरथा)।

३–अहो भगवन्! ज्योतिषी देवों में कितनी परिषद्.हैं? हे गौतम! तीन परिषद् हैं–तुम्बा, तुडिया और पर्वा।

इनका (वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवों की परिषदाओं का) काम भवनपति और वैमानिक देवों में कहा, उसी तरह जानना चाहिए।

अब संख्या और स्थिति का अधिकार चलता है, सो कहते हैं–

चमरेन्द्रजी की आभ्यन्तर परिषद् में २४,००० देव और ३५० देवियाँ, मध्यम परिषद् में २८,००० देव और ३०० देवियाँ, बाह्य परिषद् में ३२,००० देव और २५० देवियाँ हैं। देवों की स्थिति क्रम से २॥ पल, २ पल और १॥ पल है। देवियों की स्थिति क्रम से १॥ पल, १ पल और आधा पल है।

बलीन्द्रजी की तीनों परिषद् में क्रम से २०,००० २४,००० और २८,००० देव हैं और ४५०, ४०० और ३५० देवियाँ हैं। देवों की स्थिति क्रम से ३॥ पल, ३ पल और २॥ पल है। देवियों की स्थिति २॥ पल, २ पल और १॥ पल है।

दक्षिणदिशा के नवनिकाय के देवों की तीनों परिषद् में क्रम से ६०,०००, ७०,००० और ८०,००० देव हैं और १७५, १५० और १२५ देवियाँ हैं। देवों की स्थिति क्रम से आधा पल झाझेरी, आधा पल और देश–ऊणी आधा पल है। देवियों की स्थिति क्रम से देश–ऊणी आधा पल, पाव पल झाझेरी और पाव पल की है।

उत्तरदिशा के नवनिकाय के देवों की तीनों परिषद् में क्रम से ५०,०००, ६०,००० और ७०,००० देव हैं और २२५, २०० और १७५ देवियाँ हैं। देवों की स्थिति क्रम से देश–ऊणी एक पल,

सरलता से अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस बात का परीक्षण जब समता विभूति समीक्षण ध्यान योगी आचार्य भगवन श्री नानालालजी म.सा. तथा शास्त्रज्ञ, तरुणतपस्वी अवधूत साधक श्रद्धेय युवाचार्य श्री रामलालजी म.सा. ने किया तो एक योजना बनी कि विद्यार्थी जीवन के प्रारम्भ में ही थोकड़े स्मरण करने के संस्कार डालना आवश्यक है। इधर श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड द्वारा भी नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण की मांग जब परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म.सा. एवं परम श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी म.सा. के समक्ष रखी गयी तब आचार्य देव ने नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण के लिए श्री युवाचार्य प्रवर को संकेत किया। संकेतानुसार श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर ने उपस्थित सन्त-सती वर्ग के परामर्श से नवीन पाठ्यक्रम का निर्माण किया और उसमें अपने पूर्व चिन्तन का अनुसरण करते हुए थोकड़ों को भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। अपनी विलक्षण प्रज्ञा से श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी म. सा. ने विद्यार्थियों के परीक्षा स्तर को दृष्टि में रखते हुए उनके अनुकूल थोकड़ों की नवीन संयोजना की।

श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर की इस संयोजना को विद्यार्थियों की सुविधा के लिए प्रकाशित करवाने का निर्णय श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड ने लिया और वह जैन स्तोक मंजूषा के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

सन् 1996

धनराज बेताला
संयोजक
श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर

है या पच्चक्खाणापच्चक्खाणी है? हे गौतम! समुच्चय जीव पच्चक्खाणी भी है, अपच्चक्खाणी भी है, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी भी है। नारकी, देवता, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय ये २२ दंडक अपच्चक्खाणी। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में भांगा पावे २–अपच्चक्खाणी और पच्चक्खाणापच्चक्खाणी। मनुष्य में भांग पावे तीनों ही, समुच्चय जीव माफक कह देना।

२–अहो भगवन्! क्या जीव पच्चक्खाण को जानता है, अपच्चक्खाण को जानता है, पच्चक्खाणापच्चक्खाण को जानता है? हे गौतम! १६ दण्डक (नारकी, देवता, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य) के समदृष्टि पंचेन्द्रिय जीव तीनों ही भांगों को (पच्चक्खाण को, अपच्चक्खाण को और पच्चक्खाणा–पच्चक्खाण को) जानते हैं। शेष ८ दंडक (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय) के जीव तीनों ही भांगों को नहीं जानते हैं।

३–अहो भगवन्! क्या जीव पच्चक्खाण करता है, अपच्चक्खाण करता है, पच्चंक्खाणापच्चक्खाण करता है? हे गौतम! समुच्चय जीव, मनुष्य तीनों ही भांगों को करते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय २ भागों को (अपच्चक्खाण और पच्चक्खाणा–पच्चक्खाण को) करता है। शेष २२दंडक के जीव सिर्फ एक भांगा (अपच्चक्खाण) करते हैं।

४–अहो भगवान्! क्या जीव पच्चक्खाण में आयुष्य बांधते हैं या अपच्चक्खाण में आयुष्य बांधते हैं? या पच्चक्खाणापच्चक्खाण में आयुष्य बांधते हैं? हे गौतम! समुच्चय जीव और वैमानिक देवों में उत्पन्न होने वाले जीव पच्चक्खाण आदि तीनों भांगों में आयुष्य बांधते हैं। शेष २३ दंडक के जीव अपच्चक्खाण में आयुष्य बांधते हैं। पच्चक्खाण की गति वैमानिक ही है।

अर्थ सहयोगी

देशनोक निवासी श्री मोतीलालजी दुगड़ आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. एवं श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर के स्थापना काल से ही एकनिष्ठ सुश्रावक हैं। श्रीमद् जवाहराचार्य, श्री गणेशाचार्य, श्री नानेशाचार्य एवं युवाचार्य श्री राममुनि के श्रद्धालु भक्तों में श्री दुगड़जी का परिवार अग्रणी है। शासननिष्ठ श्री मोतीलालजी दुगड़ के चार पुत्रों-श्री सुन्दरलाल जी दुगड़, श्री सोहनलाल जी दुगड़, श्री पूनमचन्दजी दुगड़ एवं श्री कौशल कुमार दुगड़ में श्री सुन्दरलालजी ज्येष्ठ पुत्र हैं तथा संघ एवं समाज के कर्मठ कार्यकत्ताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

श्री सुन्दरलालजी दुगड़ जैन समाज के उन युवा उद्योगपतियों में प्रमुख हैं, जिन्होंने विगत एक दशक में अपने अथक परिश्रम, कौशल, प्रतिभा तथा उदारता से न केवल औद्योगिक जगत में विशिष्ठ स्थान बनाया है अपितु अपनी धर्मनिष्ठा,सदाचारिता एवं दुःखकातरता से शिक्षा और सेवा के क्षेत्र में भी अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया है।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पूर्व उपाध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी दुगड़ अनेक सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा सेवा संस्थानों के सम्प्रति ट्रस्टी, अध्यक्ष, मंत्री आदि विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं एवं घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। श्री दुगड़ ने भवन निर्माण का कार्यारम्भ कर व्यवसाय जगत में प्रवेश किया एवं आर.डी. बिल्डर्स की स्थापना की, किन्तु

५. तमस्काय का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक छठा, उद्देशा पांचवां)

१–अहो भगवन्! तमस्काय किस की बनी हुई है? हे गौतम! तमस्काय पानी की बनी हुई है।

२–अहो भगवन्! तमस्काय कहाँ से उठी है (शुरू हुई है) और इसका अन्त कहाँ हुआ है? हे गौतम! इस जम्बूद्वीप के बाहर असंख्याता द्वीप समुद्रों का उल्लंघन कर आगे जाने पर अरुणवरद्वीप आता है। उसकी वेदिका के बाहर के चरमान्त से ४२ हजार योजन अरुणोदकसमुद्र में जाने पर वहाँ जल के उपरिभाग से तमस्काया उठी है। * एक प्रदेशी श्रेणी १७२१ योजन ऊंची गई है। पीछे तिरछी विस्तृत होती हुई पहला दूसरा तीसरा चौथा, इन चार देवलोकों को ढक कर पांचवें ब्रह्मदेवलोक के तीसरे रिष्ट विमान पाथड़े तक चली गई है। यहाँ इसका अन्त है।

३–अहो भगवन्! तमस्काय का क्या संठाण (संस्थान) है? हे गौतम! नीचे तो शरावला (मिट्टी के दीपक) के आकार है, ऊपर कूकड़पींजरा के आकार है।

---

* यहाँ 'एक प्रदेशी श्रेणी' का मतलव एक प्रदेश वाली श्रेणी ऐसा नहीं करना चाहिए, किन्तु यहाँ एक प्रदेशी श्रेणी का मतलव 'समभित्ति' रूप श्रेणी अर्थात् नीचे से लेकर ऊपर तक एक समान भींत (दीवाल) रूप श्रेणी है। यहाँ 'एक प्रदेश वाली श्रेणी' ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं वैठ सकता है, क्योंकि तमस्काय स्तिवुकाकार जलजीव रूप है। उन जीवों के रहने के लिये असंख्यात आकाशप्रदेशों की आवश्यकता है। एक प्रदेश वाली श्रेणी का विस्तार वहुत थोड़ा होता है। उसमें वे जलजीव कैसे रह सकते हैं? इसलिए यहाँ एक प्रदेश वाली श्रेणी ऐसा अर्थ घटित नहीं होता है, किंतु 'समभित्ति रूप श्रेणी' यह अर्थ घटित होता है।

अपनी दूरदर्शिता कार्यकुशलता त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर आज दैनिक बंगला अखबार सोनार बंगला एवं जूट आदि मिलों का संचालन कर रहे हैं। आर. डी. बिल्डर्स नामक इनकी कम्पनी आर. डी. इण्डस्ट्रीज लि. में परिवर्तित होकर औद्योगिक जगत में पैर जमाकर इनके गतिशील चुम्बकीय व्यक्तित्व की कहानी कह रही है।

युवा उद्योग रत्न श्री सुन्दरलालजी दुगड़ समय की नब्ज पहचानने वाले प्रगतिशील विचारों के धनी हैं। 'दिया दूर नहीं जात' के पथ का अनुसरण करने वाले श्री दुगड़ ने अपनी जन्मभूमि देशनोक में समता-शिक्षा-सेवा संस्थान की स्थापना में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है। कपासन (उदयपुर) में आचार्य नानेश रूप रेखा प्राणी रक्षालय की स्थापना भी इनके अनुदान से हुई है।

हंसमुख, मिलनसार, विनम्र श्री दुगड़ का व्यक्तित्व प्रदर्शन, विज्ञापन एवं पाखंड से सर्वथा दूर सरलता सादगी और उदारता से समन्वित कलकत्ता के जैन अजैन समाज में अत्यन्त लोकप्रिय है। अनेक राजनेताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी ये एक निरभिमानी निष्काम कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में जाने पहचाने जाते हैं; धर्म और सेवा का कलकत्ता में ऐसा कोई संस्थान तथा संगठन नहीं है जो इनके उदार सहयोग एवं सक्रिय व्यक्तित्व से लाभान्वित नहीं होता हो।

श्री दुगड़ जी के अर्थ सहयोग से प्रकाशित यह पुस्तक इनकी प्रशस्त एवं प्रगाढ़ धर्म भावना का प्रतीक है। इस सहयोग हेतु हम इनके हृदय से आभारी हैं।
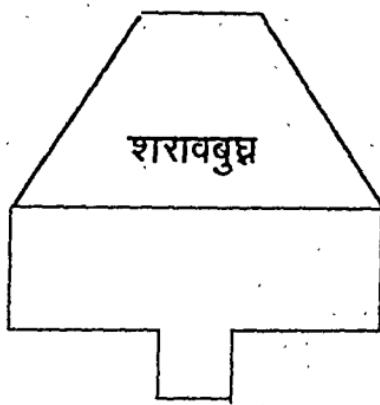
४—अहो भगवन्! तमस्काय की लम्बाई– चौड़ाई और परिधि कितनी कही गई है? हे गौतम! तमस्काय दो प्रकार की कही गई है । एक तो संख्याता विस्तार वाली और दूसरी असंख्याता विस्तार वाली संख्याता विस्तार वाली तमस्काय की लम्बाई–चौड़ाई संख्याता हजार योजन की है और परिधि असंख्याता हजार योजन की है। असंख्याता विस्तार वाली तमस्काय की लम्बाई–चौड़ाई असंख्याता हजार योजन की है और परिधि असंख्याता हजार योजन की है।

५—अहो भगवन्! तमस्काय कितनी मोटी है? हे गौतम! कोई महर्द्धिक देव, जो तीन चुटकी बजावे, उतने समय में इस जम्बूद्वीप की २१ बार परिक्रमा करे, ऐसी शीघ्र गति से छह मास तक चले तो संख्याता विस्तार वाली तमस्काय का पार पावे, किन्तु असंख्याता विस्तार वाली तमस्काय का पार नहीं पावे, ऐसी मोटी तमस्काय है।

६—अहो भगवन्! तमस्काय में घर, दूकान, ग्रामादि हैं? हे गौतम! नहीं हैं।

७—अहो भगवन्! तमस्काय में गाज, बीज, बादल, बरसात है? हे गौतम! है।

अनुक्रमणिका

भाग-५

भाग-६

८–अहो भगवन्! तमस्काय में गाज, बीज, बादल, बरसात कौन करते हैं? हे गौतम! देव, असुरकुमार, नागकुमार करते हैं।

९–अहो भगवन्! क्या तमस्काय में बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय है? हे गौतम! नहीं है, परन्तु विग्रहगति– समापन्न (विग्रहगति करते हुए) बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय के जीव हो सकते हैं।

१०–अहो भगवन्! क्या तमस्काय में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा हैं? हे गौतम! चन्द्र, सूर्य आदि नहीं हैं किन्तु तमस्काय के पास में चन्द्र–सूर्य की प्रभा पड़ती है, परन्तु वह अप्रभा सरीखी है।

११–अहो भगवन्! तमस्काय का वर्ण कैसा है? हे गौतम! तमस्काय का वर्ण काला भयंकर, डरावना है। कितनेक देव तमस्काय को देखते ही क्षोभ पाते हैं और अगर कोई देवता तमस्काय में प्रवेश करता है तो शरीर और मन की चंचलता से जल्दी उसको पार कर जाता है।

१२–अहो भगवन्! तमस्काय के कितने नाम हैं? हे गौतम! तमस्काय के *१३ नाम हैं–१ तम, २ तमस्काय, ३. अन्धकार,

---

* यहाँ तमस्काय के १३ नाम कहे गये हैं। उनका अर्थ इस प्रकार है–१. अन्धकार रूप होने से इसको 'तम' कहते हैं। २. अन्धकार का ढिगला (समूह) रूप होने से इसे 'तमस्काय' कहते हैं। ३. तमो रूप होने से इसे अन्धकार कहते हैं। ४. महातमो रूप होने से इसे 'महा–अन्धकार' कहते हैं। ५ – ६, लोक में इस प्रकार का दूसरा अन्धकार न होने से इसे 'लोकान्धकार' और 'लोकतमिस्त्र' कहते हैं। ७ – ८, तमस्काय में किसी प्रकार का उद्योत (प्रकाश) न होने से वह देवों के लिए भी अन्धकार रूप है, इसलिए इसको देव–अन्धकार और देवतमिस्त्र कहते हैं। ९. बलवान् देवता के भय से भागते हुए देवता के लिए यह एक प्रकार का जंगल रूप होने से यह शरणभूत है,

४.महा–अन्धकार, ५.लोक–अन्धकार, ६.लोकतमिस्र, ७.देव–अन्धकार, ८. देवतमिस्र, ९. देव–अरण्य, १०. देवव्यूह, ११. देवपरिघ, १२. देवप्रतिक्षोभ, १३. अरुणोदकसमुद्र।

१३–अहो भगवन्! तमस्काय क्या पृथ्वी का परिणाम है, पानी का परिणाम है, जीव का परिणाम है अथवा पुद्गल का परिणाम है? हे गौतम! तमस्काय पृथ्वी का परिणाम नहीं है, किन्तु पानी का, जीव का और पुद्गल का परिणाम है।

१४–अहो भगवन्! क्या सब प्राणी भूत जीव सत्त्व तमस्काय में पृथ्वीकायपणे यावत् त्रसकायपणे पहले उत्पन्न हुए हैं? हे गौतम! सब प्राणी भूत जीव सत्त्व अनेक बार अथवा अनन्त बार तमस्काय में पृथ्वीकायपणे यावत् त्रसकायपणे उत्पन्न हुए हैं, परन्तु बादर पृथ्वीकायपणे और बादर तेजस्कायपणे उत्पन्न नहीं हुए हैं।

६. आठ कृष्णराजि और लोकान्तिक देवों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक छठा. उद्देशा पांचवां)

१–अहो भगवन्! कृष्णराजियाँ कितनी कही गई हैं? हे गौतम! कृष्णराजियाँ ८ कही गई हैं।

इसलिए इसको 'देव–अरण्य' कहते हैं। १०. जिस प्रकार चक्रव्यूह का भेदन करना कठिन होता है, उसी प्रकार यह तमस्काया देवताओं के लिये दुर्भेद्य है, उसका पार करना कठिन है, इसलिए इसको 'देवव्यूह' कहते हैं। ११. तमस्काय को देखकर देवता भयभीत होते हैं, इसलिए वह उनके गमन में बाधक है, अतः इसको 'देवपरिघ' कहते हैं। १२. तमस्काय देवताओं के लिए क्षोभ का कारण है, इसलिए इसको 'देवप्रतिक्षोभ' कहते हैं। १३. तमस्काय अरुणोदकसमुद्र के पानी का विकार है, इसलिए इसको 'अरुणोदकसमुद्र कहते हैं।

२–अहो भगवन्! ये कृष्णराजियाँ कहां पर हैं? हे गौतम! ये पांचवें देवलोक के तीसरे रिष्ट पड़तल में हैं। पूर्व में दो, पश्चिम में दो, उत्तर में दो और दक्षिण में दो, इस तरह चार दिशाओं में ८ कृष्णराजियाँ समचौरस अखाड़ा के आकार हैं। पूर्वदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने दक्षिणदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्शी है। इसी तरह चारों दिशा में परस्पर स्पर्शी हैं। पूर्व और पश्चिम की बाह्य कृष्णराजि छहखुणी (छह कोणों वाली, षट्‌कोण) है *। दक्षिण और उत्तर की बाह्य कृष्णराजि तिखुणी (त्रिकोण) है। बाकी आभ्यन्तर की चारों ही कृष्णराजियाँ चोखुणी (चतुष्कोण) हैं।

३–अहो भगवन्! कृष्णराजियों की लम्बाई–चौड़ाई और परिधि कितनी है? हे गौतम! संख्याता योजन की चौड़ी हैं, असंख्याता योजन की लम्बी हैं और असंख्याता योजन की परिधि है।

४–अहो भगवन्! कृष्णराज़ियाँ कितनी मोटी हैं? हे गौतम! कोई महाऋद्धि का देवता जो तीन चुटकी बजावे उतने में इस जम्बूद्वीप की २१परिक्रमा करे, ऐसी तीव्रगति से अर्द्धमास (१५ दिन) तक जावे तो भी कोई कृष्णराजि का पार पावे और कोई का पार नहीं पावे, ऐसी कृष्णराजियाँ मोटी हैं।

५–अहो भगवन्! क्या कृष्णराजियों में घर, दूकान आदि हैं? हे गौतम! नहीं हैं।

६–अहो भगवन्! क्या कृष्णराजियों में ग्रामादि हैं? हे गौतम! नहीं हैं।

---

* गाथा इस प्रकार है–

पुव्वाऽवरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुत्तरा वज्झा।
अब्भिंतर चउरंसा, सव्वा वि य कण्हराईओ॥

४ शुक्लपक्षी, ५ समदृष्टि, ६ सज्ञानी, ७ केवलज्ञानी, ८ नोसंज्ञा, ९ अवेदी, १० अकषायी, ११ साकार–उपयोग, १२ अनाकार–उपयोग) तीन भांगे पाये जाते हैं–पहला, दूसरा और चौथा। तेरहवें गुणस्थान के दो समय बाकी रहते पहला भांगा पाया जाता है और एक समय बाकी रहते दूसरा भांगा पाया जाता है और चौदहवें गुणस्थान में चौथा भांगा पाया जाता है। अलेशी और अयोगी में सिर्फ एक चौथा भांगा पाया जाता है। बाकी ३३ बोलों में पहला और दूसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। २३ दण्डक में जिसमें जितने–जितने बोल पाये जाते हैं, उन सब में पहला और दूसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं।

आयुष्यकर्म की अपेक्षा समुच्चय जीव के ४७ में से ९ बोलों में इस प्रकार भांगे पाये जाते हैं–कृष्णपक्षी में पहला और तीसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। मिश्रदृष्टि, अवेदी, अकषायी इन तीन बोलों में तीसरा और चौथा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। अलेशी, अयोगी, केवलज्ञानी, इन तीन बोलों में एक चौथा भांगा पाया जाता है। मन–पर्ययज्ञान और नोसंज्ञा, इन दो बोलों में पहला, तीसरा और चौथा, ये तीन भांगे पाये जाते हैं। बाकी ३८ बोलों में चारों भांगे पाये जाते हैं। नारकी में ३५ बोल पाये जाते हैं। उनमें से कृष्णलेशी और कृष्णपक्षी में पहला और तीसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। मिश्रदृष्टि में तीसरा और चौथा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। बाकी ३२ बोलों में चारों ही भांगे पाये जाते हैं। भवनपति से लेकर नव ग्रैवेयक तक जितने–जितने बोल पाये जायें, उतने–उतने कह देने चाहिए। कृष्णपक्षी में पहला और तीसरा,ये दो भांगे पाये जाते हैं। मिश्रदृष्टि में (भवनपति से लेकर बारहवें देवलोक तक) तीसरा और चौथा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। बाकी बोलों में चारों ही भांगे पाये जाते हैं। चार अनुत्तर विमान के देवों में चारों ही भांगे पाये जाते हैं।

७–अहो भगवन्! क्या कृष्णराजियों में गाज, बीज आदि है, बरसात बरसती है? हाँ, गौतम! गाज, बीज आदि है, बरसात भी बरसती है।

८–अहो भगवन्! यह गाज, बीज, बरसात कौन करता है? हे गौतम! यह देव (वैमानिक देव) करता है, किन्तु असुरकुमार, नागकुमार नहीं करते हैं।

९–अहो भगवन्! क्या कृष्णराजियों में बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय है? हे गौतम! नहीं है, याने विग्रहगतिसमापन्न (वाटेवहता) जीव सिवाय नहीं है।

१०–अहो भगवन्! क्या कृष्णराजियों में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा हैं? हे गौतम! नहीं हैं।

११–अहो भगवन्! क्या कृष्णराजियों में सूर्य, चन्द्रमा की प्रभा (कान्ति) है? हे गौतम! नहीं है।

१२–अहो भगवन्! कृष्णराजियों का वर्ण कैसा है? हे गौतम! कृष्णराजियों को देख कर देवता भी भय खावे, ऐसा उनका काला वर्ण है।

१३–अहो भगवन्! कृष्णराजियों के कितने नाम हैं? हे गौतम! कृष्णराजियों के ८ *नाम हैं–१ कृष्णराजि, २ मेघराजि, ३ मघा, ४ माघवती, ५ वातपरिघा, ६ वातपरिखोभा, ७ देवपरिघा, ८

* यहाँ पर कृष्णराजि के ८ नाम कहे गये हैं। उनका अर्थ इस प्रकार है–१. काले पुद्गलों की रेखा को 'कृष्णराजि' कहते हैं। २. काले मेघ की रेखा के तुल्य होने से इसको 'मेघराजि' कहते हैं। ३. 'मघा' छठी नारकी का नाम है। छठी नारकी के समान अन्धकार वाली होने से इसको 'मघा' कहते हैं। ४. 'माघवती' सातवीं नरक का नाम है। सातवीं नारकी के समान अन्धकार वाली होने से इसको 'माघवती' कहते हैं। ५. कृष्णराजि वायु के समूह के समान गाढ़ अन्धकार वाली है, परिघ (आगल) के समान दुर्लंघ्य (मुश्किल से उल्लंघन करने योग्य) होने से इसको 'वातपरिघा' कहते हैं। ६.

सर्वार्थसिद्ध के देवों में दूसरा, तीसरा और चौथा, ये तीन भांगे पाये जाते हैं। पृथ्वी, पानी, वनस्पति के २७ बोलों में से तेजोलेश्या में एक तीसरा भांगा पाया जाता है। कृष्णपक्षी में पहला और तीसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। बाकी २५ बोलों में चारों ही भांगे पाये जाते हैं। तेजस्काय और वायुकाय में २६ बोल होते हैं, उन सब में पहला और तीसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। तीन विकलेन्द्रिय में ३१ बोल होते हैं। उनमें से समदृष्टि, सज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी इन चार बोलों में सिर्फ एक तीसरा भांगा पाया जाता है। बाकी २७ बोलों में पहला और तीसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं।

तिर्यंचपञ्चेन्द्रिय में ४० बोल होते हैं, उनमें से कृष्णपक्षी में पहला और तीसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। मिश्रदृष्टि में तीसरा और चौथा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। समदृष्टि, सज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी, इन पांच बोलों में पहला, तीसरा और चौथा, ये तीन भांगे पाये जाते हैं। बाकी ३३ बोलों में चारों भांगे पाये जाते हैं।

मनुष्य में ४७ बोल होते हैं, उनमें से अलेशी, केवलज्ञानी और अयोगी, इन तीन बोलों में सिर्फ एक चौथा भांगा पाया जाता है। मिश्रदृष्टि, अवेदी, अकषायी, इन तीन बोलों में तीसरा और चौथा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। समदृष्टि, सज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, नोसंज्ञा, इन सात बोलों में पहला, तीसरा और चौथा, ये तीन भांगे पाये जाते हैं। कृष्णपक्षी में पहला और तीसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। बाकी ३३ बोलों में चारों ही भांगे पाये जाते हैं।

यह पहला औधिक उद्देश सम्पूर्ण हुआ।

अब ग्यारह उद्देशों के नाम कहे जाते हैं–१ औधिक (सामान्य), २ अणंतरोववन्नए–अनन्तरोपपन्न (एक समय के उत्पन्न हुए), ३ परंपरोववन्नए–परम्परोपपन्न (जिनको उत्पन्न हुए बहुत समय हो गया है), ४ अनन्तरावगाढ़ (पहले समय के अवगाहे हुए),

देवपरिखोभा।

१४–अहो भगवन्! क्या कृष्णराजियाँ पृथ्वी का परिणाम हैं? पानी का परिणाम हैं ? जीव का परिणाम हैं या पुद्गल का परिणाम हैं? हे गौतम! कृष्णराजियाँ पानी का परिणाम नहीं हैं, परन्तु पृथ्वी का, जीव का और पुद्गल का परिणाम हैं।

१५–अहो भगवन्! क्या कृष्णराजियों में सब प्राणी भूत जीव सत्त्व पहले उत्पन्न हुए हैं? हे गौतम! सब प्राणी भूत जीव सत्त्व अनेक बार अथवा अनन्ती बार उत्पन्न हुए हैं, किन्तु बादर अप्कायपने, बादर तेजस्काय पने और बादर वनस्पतिपने उत्पन्न नहीं हुए हैं।

१६–अहो भगवन्! लोकान्तिक देवों के विमान कहाँ हैं? हे गौतम! कृष्णराजियों के ८ आन्तरों में लोकान्तिक देवों के ८ विमान हैं–१. अर्ची, २. अर्चिमाली, ३. वैरोचन, ४. प्रभंकर, ५. चन्द्राभ, ६. सूर्याभ, ७. शुक्राभ, ८. सुप्रतिष्टाभ और बीच में रिष्टाभ विमान है। इन विमानों में अनुक्रम से १. सारस्वत, २. आदित्य, ३. वह्नि, ४. वरुण, ५. गर्दतोय, ६. तुषित, ७. अव्याबाध, ८. आग्नेय, ९. रिष्ट, ये नौ जाति के देव परिवारसहित रहते हैं।

इन देवों का *परिवार–सारस्वत और आदित्य देव के ७

कृष्णराजि वायु के समूह के समान गाढ़ अन्धकार वाली होने से परिक्षोभ (भय) उत्पन्न करने वाली है, इसलिए इसको 'वातपरिखोभा' कहते हैं। ७. दुर्लंघ्य होने से कृष्णराजि देवताओं के लिए 'परिघ' आगल के समान है, इसलिए इसको 'देवपरिघा' कहते हैं। ८. देवताओं को भी क्षोभ (भय) उत्पन्न करने वाली होने से कृष्णराजि को 'देवपरिखोभा' कहते हैं।

* परिवार देवों की गाथा–

पढमजुगलम्मि सत्तओसयाणि, बीयम्मि चउद्दससहस्सा।
तइए सत्तसहस्सा, णव चेव सयाणि सेसेसु॥

५ परम्परावगाढ़ (बहुत समय के अवगाहे हुए), ६ अनन्तराहारक (पहले समय के आहारक), ७ परम्पराहारक (बहुत समय के आहारक), ८ अनन्तरपर्याप्तक (पहले समय के पर्याप्त), ९ परम्पर-पर्याप्तक (बहुत समय के पर्याप्तक), १० चरम (उसी भव में मोक्ष जानेवाले), ११ अचरम (बहुत भवों के बाद मोक्ष जानेवाले अथवा नहीं जानेवाले)।

दूसरा उद्देशा-अणंतरोववन्नए, चौथा उद्देशा-अनन्तरावगाढ़, छठा उद्देशा-अनन्तराहारक, आठवां उद्देशा-अनन्तरपर्याप्त, इन चार उद्देशों में नारकी से लेकर बारहवें देवलोक तक ४७ बोल की बन्धी के थोकड़े में जितने-जितने बोल पाया जाना बताया है, उनमें तीन, तीन बोल कम कर देना। (औघिक में ४७ बोल कहे गये हैं, उनमें से मिश्रदृष्टि, मनयोगी, वचनयोगी, ये तीन बोल कम कर देने चाहिए)। क्योंकि ये पहले समय के उत्पन्न हुए हैं, इसलिये इनमें उक्त तीन बोल नहीं पाये जाते। नव ग्रैवेयक में ३० बोल पाये जाते हैं। ३२ में से मनयोग, वचनयोग कम हुए और पांच अनुत्तर विमान में २४ बोल पाये जाते हैं। इनमें भी मनयोग, वचनयोग कम हुए।

पांच स्थावर में, औघिक उद्देशे में जितने बोल कहे हैं, उतने कह देने चाहिए। तीन विकलेन्द्रियों में ३० बोल पाये जाते हैं। तिर्यंचपञ्चेन्द्रिय में ३५ बोल पाये जाते हैं (औघिक में ४० बोल कहे गये हैं, उनमें से मिश्रदृष्टि, विभंगज्ञान, अवधिज्ञान, मनयोग, वचनयोग, ये पांच बोल कम कर देने चाहिए)। मनुष्य में ३६ बोल पाये जाते हैं (औघिक में ४७ बोल कहे गये हैं, उनमें से अलेशी, मिश्रदृष्टि, विभंगज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, नोसंज्ञा, अवेदी, अकषायी, मनयोगी, वचनयोगी, अयोगी, ये ११ बोल कम कर देने चाहिए)। इस प्रकार २४ ही दण्डक में सात कर्मों की अपेक्षा (आयुष्य को छोड़ कर) ये बोल कहे गये हैं, उन सब में पहला और दूसरा, ये दो, दो भांगे पाये जाते हैं।

आयुष्यकर्म की अपेक्षा मनुष्य को छोड़ कर बाकी २३

देव स्वामी, ७०० देव का परिवार है। वह्नि और वरुण देव के १४ देव स्वामी और १४००० देव का परिवार है। गर्दतोय और तुषित देव के ७ देव स्वामी और ७००० देव का परिवार है। अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट देव के ९ देव स्वामी और ९०० देव का परिवार है। सब प्राणी भूत जीव सत्त्व अनेक बार अथवा अनन्ती बार लोकान्तिक देवपने उत्पन्न हुए हैं, किन्तु लोकान्तिक देवीपने उत्पन्न नहीं हुए हैं×।

अहो भगवन्! लोकान्तिक विमानों में कितनी स्थिति कही गई है? हे गौतम! लोकान्तिक विमानों में ८ सागरोपम की स्थिति कही गई है।

अहो भगवन्! लोकान्तिक विमानों से लोकान्त (लोक का अन्त) कितना दूर है? हे गौतम! लोकान्तिक विमानों से असंख्य हजार योजन की दूरी पर लोकान्त है।

७. मारणान्तिकसमुद्घात करके मरने, उपजने का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक छठा, उद्देशा छठा)

१–अहो भगवन्! पृथ्वियां कितनी कही गई हैं? हे गौतम! पृथ्वियां सात कही गई हैं–रत्नप्रभा यावत् तमतमाप्रभा।

२–अहो भगवन्! रत्नप्रभा में कितने नरकावास कहे गये हैं? हे गौतम! रत्नप्रभा में ३० लाख नरकावास कहे गये हैं। इस तरह सब के नरकावासा कह देना यावत् पांच अनुत्तर विमान तक कह देना चाहिए।

× लोकान्तिक देवों का विस्तृत वर्णन 'जीवाभिगमसूत्र' के देवोद्देशक में है।

दण्डक में सिर्फ एक तीसरा भांगा पाया जाता है (सात कर्मोंकी अपेक्षा जिस दण्डक में जितने-जितने बोल कहे गये हैं, उतने-उतने बोल यहाँ भी कह देने चाहिए)। मनुष्य में ३६ बोल कहे गये हैं, उनमें से कृष्णपक्षी में एक तीसरा भांगा पाया जाता है। बाकी ३५ बोलों में तीसरा और चौथा, ये दो भांगे पाये जाते हैं।

तीसरा उद्देशा---परम्परोववन्नए, पांचवां उद्देशा--परम्परागाढ़, सातवां उद्देशा-परम्पराहारक, नवमा उद्देशा-परम्परपर्यासक और दशवां उद्देशा-चरम, ये पांच उद्देशा औघिक की तरह कह देना चाहिए। किन्तु इतना फर्क है कि यहाँ समुच्चय जीव का बोल नहीं कहना चाहिए। ग्यारहवां अचरम उद्देशा--चरम उद्देशा की तरह कह देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ ४४ बोल ही कहने चाहिए (पहले ४७ बोल कहे गये हैं, उनमें से अलेशी, केवलज्ञानी और अयोगी, ये तीन बोल यहाँ नहीं कहने चाहिए) पहले चार भांगे कहे गये हैं, उनमें से चौथा भांगा यहाँ नहीं कहना चाहिए। सर्वार्थ-सिद्ध और समुच्चय जीव का बोल नहीं कहना चाहिए।

९. करिंसु शतक का थोकड़ा *

(भगवतीसूत्र , शतक सत्ताईसवां, उद्देशा ग्यारहवां)

१-अहो भगवन्! क्या जीव ने १--पापकर्म किये, करता है, करेगा? २-पापकर्म किये, करता है, नहीं करेगा? ३--पापकर्म

---

* जैसे छब्बीसवें शतक के प्रश्न में 'बंधि' पद आया है, इसलिए छब्बीसवें शतक का नाम 'बंधिशतक' कहा गया है। इसी तरह यहाँ सत्ताईसवें शतक के पहले प्रश्न में 'करिंसु' पद आया है, इसलिए इस सत्ताईसवें शतक का नाम 'करिंसु शतक' कहा गया है। यद्यपि कर्म का वन्ध और 'कर्मकरणे में कोई फर्क नहीं है तथापि सामान्य रूप से कर्म बांधना 'कर्मवन्ध' कहलाता है और 'करण' के द्वारा 'संक्रम' आदि रूप में परिणमाना' कर्मकरण कहलाता है। यह विशेषता बतलाने के लिए ही 'वन्ध' और 'करण' का पृथक्-पृथक् निर्देश किया गया है।

३–अहो भगवन्! जो जीव मारणान्तिकसमुद्घात करके रत्नप्रभानरक में नारकीपने उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जीव वहाँ जाकर आहार करते हैं? आहार को परिणमाते हैं? और शरीर बांधते हैं? हे गौतम! कितनेक जीव* वहाँ जाकर आहार लेते हैं, परिणमाते हैं, शरीर बांधते हैं और कितने जीव+ वहाँ जाकर वापिस अपने पहले के शरीर में आ जाते हैं और फिर दूसरी बार मारणान्तिकसमुद्घात करके मर कर वापिस रत्नप्रभानरक में नैरयिकपने उत्पन्न होकर आहार लेते हैं, परिणमाते हैं और शरीर बांधते हैं। इसी तरह यावत् तमतमाप्रभा तक कह देना चाहिए।

जिस तरह रत्नप्रभा का कहा, उसी तरह १८ दण्डक में (१३ दण्डक देवता के, ३ दण्डक तीन विकलेन्द्रिय के, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य, इन १८ दण्डक में) कह देना चाहिए।

पांच स्थावर मेरुपर्वत से छह दिशाओं में अंगुल के असंख्यातवें भाग से असंख्यात हजार योजन लोकान्त तक एक प्रदेशी श्रेणी (विदिशा) को छोड़ कर चाहे जहाँ उत्पन्न होते हैं। इनमें भी पूर्वोक्त प्रकार से दो–दो अलावा (आलापक) कहना। इस तरह पांच स्थावर के छह दिशा संबंधी ६० आलापक हुए और त्रस के १९ दण्डकों के ३८ आलापक हुए। ये सब मिलाकर ९८ आलापक हुए। ठिकाणा (स्थान) की अपेक्षा तो अनेक आलापक होते हैं।

---

*जो जीव यहां से मर कर जाते हैं, वे वहां जाकर आहार करते हैं यावत् शरीर बांधते हैं।

+ जो जीव मारणान्तिकसमुद्घात करके विना मरे ही यानी उस जीव के कितनेक आत्मप्रदेश रत्नप्रभा नरक में जाते हैं, वहाँ जाकर आहार लिये विना ही अपने पहले के शरीर में वापिस आते हैं, फिर दूसरी वार मारणान्तिकसमुद्घात करके मर कर वापिस रत्नप्रभानरक में उत्पन्न होकर आहार लेते हैं, परिणमाते हैं यावत् शरीर बांधते हैं।

किये, नहीं करता है, करेगा? ४–पापकर्म किये, नहीं करता है, नहीं करेगा? हे गौतम! किसी जीव ने पापकर्म किया, करता है, करेगा। किसी जीव ने पापकर्म किया, करता है, नहीं करेगा। किसी जीव ने पापकर्म किया, नहीं करता है, करेगा। किसी जीव ने पापकर्म किया, नहीं करता है, नहीं करेगा।

२–अहो भगवन्! क्या सलेशी जीव ने पापकर्म किये, करता है, करेगा? हे गौतम! यह सारा वर्णन छब्बीसवें 'बंधीशतक' की तरह ८ कर्म और एक समुच्चय पापकर्म, ये ९ दण्डक और ११ उद्देशा कह देना चाहिए।

१०. समज्जिया शतक का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अट्ठाईसवां, उद्देशा ग्यारहवां)

१–अहो भगवन्! जीवों ने किस गति में पापकर्मों का समर्जन किया यानी बांधे और किस गति में समाचरण किया यानी भोगे? हे गौतम! १–सब जीवों ने * तिर्यंचयोनि में पापकर्मों का उपार्जन किया और तिर्यंचगति में ही भोगे। २– अथवा सब जीवों ने तिर्यंचयोनि में बांधे और नैरयिकयोनि में भोगे। ३–अथवा सब जीवों ने तिर्यंचयोनि में बांधे और मनुष्ययोनि में भोगे। ४–अथवा सब जीवों ने तिर्यंचयोनि में बांधे और देवयोनि में भोगे। ५–अथवा सब जीवों ने तिर्यंचयोनि में बाँधे और मनुष्ययोनि में भोगे। ६–अथवा सब जीवों ने तिर्यंचयोनि में बांधे, नरकयोनि में और देवयोनि में भोगे।

---

* तिर्यंचयोनि वहुत जीवों का आश्रय है। इसलिए तिर्यंचयोनि सव जीवों की माता है। इसलिए नारकी आदि सव जीव तिर्यंचयोनि से आकर उत्पन्न हुए हों इस अपेक्षा से यह समझना चाहिए कि पहले सव जीव तिर्यंचयोनि में थे और वहाँ उन्होंने नरकगति आदि के हेतुभूत कर्मों का उपार्जन किया था।

ठिकाणा संबंधी अनेक आलापकों में पहला आलापक देश से समुद्घात इलिकागति का है और दूसरा आलापक सर्व से समुद्घात डेडका (मेंढ़क) गति का है।

८. सैंतालीस बोलों की बंधी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक छब्बीसवां, उद्देशा ग्यारहवां)

जीवा य लेस्स पक्खिय, दिट्ठि, अन्नाण नाण सण्णाओ।
वेय कसाय उवओग, जोग एक्कारस वि ठाणा ॥ १ ॥

अर्थ—१ समुच्चय जीव, ८ लेश्या (६ लेश्या, १ सलेशी, १ अलेशी), २ पाक्षिक (कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक), ३ दृष्टि (सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि), ४ अज्ञान (३ अज्ञान, १ समुच्चय अज्ञान), ६ ज्ञान (५ ज्ञान, १ समुच्चय ज्ञान), ५ संज्ञा (४ संज्ञा, १ नोसंज्ञा), ५ वेद (३ वेद, १ सवेदी, १ अवेदी), ६ कषाय (४ कषाय, १ सकषायी, १ अकषायी), ५ योग (मनयोग, वचनयोग, काययोग, सयोगी, अयोगी), २ उपयोग (साकार–उपयोग, अनाकार–उपयोग), ये सब ४७ बोल हुए।

१—नारकी में ३५ बोल पाये जाते हैं–(समुच्चय जीव का १, लेश्या का ४, पक्ष का २, दृष्टि का ३, ज्ञान का ४, अज्ञान का ४, संज्ञा का ४, वेद का २, कषाय का ५, योग का ४, उपयोग का २, ये ३५ बोल)।

भवनपति, वाणव्यन्तर में ३७ बोल पाये जाते हैं (नारकी में कहे हुए ३५ बोलों में एक लेश्या और एक वेद–नपुंसक वेद इनमें नहीं है पर स्त्रीवेद व पुरुषवेद हैं। ये २ बोल बढ़ गये)। ज्योतिषी देवों में और पहले, दूसरे देवलोक में ३४ बोल पाये जाते हैं।(ऊपर कहे हुए ३७ में से ३लेश्या घट गईं)। तीसरे देवलोक से बारहवें

७–अथवा सब जीवों ने तिर्यंचयोनि में बांधे, मनुष्ययोनि में और देवयोनि में भोगे। ८–अथवा सब जीवों ने तिर्यंचयोनि में बांधे, नरकयोनि में, मनुष्ययोनि में और देवयोनि में भोगे।+

शेष सारा अधिकार ११ उद्देशा, ४७ बोल, समुच्चय जीव, २४ दण्डक में जहाँ जो–जो बोल पाये जावें, वहाँ समुच्चय पापकर्म और आठकर्म में आठ, आठ भांगे कह देना चाहिए।

११. पट्ठविंसु निट्ठविंसु का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उनतीसवां, उद्देशा ग्यारहवां)

गाथा–

जीवा य लेस्स पक्खिय दिट्ठि अन्नाण नाण सण्णाओ।
वेय कसाय उवओग जोग एक्कारस वि ठाणा ॥१॥

अर्थ–१ समुच्चय जीव, ८ लेश्या (६ लेश्या, १ सलेशी, १ अलेशी), २ पाक्षिक (कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक), ३ दृष्टि (समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि), ४ अज्ञान (३ अज्ञान, १ समुच्चय अज्ञान), ६ ज्ञान (५ ज्ञान, १ समुच्चय ज्ञान), ५ संज्ञा (४ संज्ञा, १ नोसंज्ञा), ५ वेद (३ वेद, १ सवेदी, १ अवेदी), ६ कषाय (४ कषाय, १ सकषायी १ अकषायी), २ उपयोग (साकार–उपयोग, अनाकार–उपयोग), ये सब मिलाकर ४७ बोल हुए।

१–अहो भगवन्! क्या बहुत जीवों ने पापकर्म भोगना समकाल (एक साथ) शुरू किया और समकाल (एक साथ) पूरा

+ इनमें असंयोगी १, दो संयोगी ३, तीन संयोगी ३, चार संयोगी १, ये ८ भांगे होते हैं। पहला भांगा जीव तिर्यंचगति से निकल कर दूसरी गति में गया ही नहीं। दूसरा, तीसरा और चौथा भांगा–दो गति के सिवाय तीसरी गति में गया ही नहीं। पांचवां, छठा, ,सातवां भांगा–तीन गति के सिवाय चौथी गति में गया ही नहीं। आठवां भांगा–जीव चारों गतियों में गया। इनमें मूल स्थान तिर्यंचगति है।

देवलोक तक ३३ बोल पाये जाते हैं। (ऊपर कहे हुए ३४ में से एक वेद (स्त्रीवेद) कम हो गया)। नव ग्रैवेयक में ३२ बोल पाये जाते हैं (३३ में से एक दृष्टि (मिश्रदृष्टि) कम हो गई।) पांच अनुत्तर विमान में २६ बोल पाये जाते हैं (ऊपर कहे हुए ३२ में से १ पक्ष (कृष्णपक्ष), १ दृष्टि (मिथ्यादृष्टि), ४ अज्ञान, ये ६ बोल कम हो गये)। पृथ्वी, पानी, वनस्पति में २७ बोल पाये जाते हैं (समुच्चय जीव का १, लेश्या के ५, पक्ष के २, दृष्टि का १ (मिथ्यादृष्टि), अज्ञान के ३, संज्ञा के ४, वेद के २, कषाय के ५, योग के २, उपयोग के २, ये सब २७ हुए)। तेउ, वायु में २६ बोल पाये जाते हैं (ऊपर कहे हुए २७ में से एक लेश्या कम हो गई)। तीन विकलेन्द्रिय में ३१ बोल पाये जाते हैं (ऊपर के २६ में १ दृष्टि–समदृष्टि, ३ ज्ञान के और १ योग–वचन का, ये ५ बोल बढ़ गये)। तिर्यंचपञ्चेन्द्रिय में ४० बोल पाये जाते हैं (४७ में से १ अलेशी, २ ज्ञान (मनपर्यय और केवल), १ नोसंज्ञा, १ अवेदी, १ अकषायी, १ अयोगी, ये ७ बोल कम हो गये)। मनुष्य में ४७ बोल पाये जाते हैं।

अहो भगवन्! क्या जीवों ने पापकर्म बांधा, बांधते हैं, बांधेंगे? हे गौतम! जीवों में बन्ध की अपेक्षा ४ भांगे होते हैं– * १ कितनेक जीवों ने पापकर्म बांधा था, बांधते हैं, बांधेंगे। २ कितनेक जीवों ने पापकर्म बांधा था, बांधते हैं, नहीं बांधेंगे। ३ कितनेक जीवों ने पापकर्म बांधा था, अब नहीं बांधते हैं, आगे बांधेंगे। ४ कितनेक जीवों ने पापकर्म बांधा था, अब नहीं बांधते हैं, आगे नहीं बांधेंगे।

---

* इनमें से पहला भांगा अभव्य की अपेक्षा से है। दूसरा भांगा उन जीवों की अपेक्षा से है जो क्षपकश्रेणी को प्राप्त होने वाले हैं। तीसरा भांगा उन जीवों की अपेक्षा से है जिन्होंने मोहनीयकर्म का उपशम किया है अर्थात् जो उपशमश्रेणी को प्राप्त हुए हैं। चौथा भांगा उन जीवों की अपेक्षा से है जिन्होंने मोहनीयकर्म का क्षय कर दिया है।

किया? २–अथवा समकाल में भोगना शुरू किया और विषमकाल में (भिन्न समय में) पूरा किया? ३–अथवा विषमकाल में भोगना शुरू किया और समकाल में पूरा किया? ४–अथवा विषमकाल में भोगना शुरू किया और विषमकाल में पूरा किया? हे गौतम! १–कितनेक जीवों ने पापकर्म भोगना समकाल में (एक साथ) शुरू किया और समकाल में पूरा किया। २–कितनेक जीवों ने पापकर्म भोगना समकाल में शुरू किया और विषमकाल में पूरा किया। ३–कितनेक जीवों ने पापकर्म भोगना विषमकाल में शुरू किया और समकाल में पूरा किया। ४–कितनेक जीवों ने पापकर्म भोगना विषमकाल में शुरू किया और विषमकाल में पूरा किया। अहो भगवन्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जीव चार प्रकार के हैं–यथा–१–एक साथ आयुष्य का उदयवाले सम (एक साथ) उत्पन्न हुए, २– एक साथ आयुष्य का उदय वाले और विषमकाल में (भिन्न काल में) उत्पन्न हुए, ३– विषमकाल में आयुष्य का उदयवाले और समकाल में उत्पन्न हुए, ४– विषमकाल में आयुष्य का उदयवाले और विषमकाल में उत्पन्न हुए। १–जो जीव साथ में आयुष्य के उदयवाले हैं और सम (एक साथ) उत्पन्न हुए हैं, उन्होंने आयुकर्म एक साथ भोगना शुरू किया और एक साथ पूरा किया। ये जीव एक साथ पाप भोगना शुरू करते हैं और एक साथ क्षय करते हैं। २–जो जीव एक साथ में आयुष्य के उदयवाले हैं और विषम (भिन्न काल में) उत्पन्न हुए हैं, उन्होंने आयुकर्म एक साथ भोगना शुरू किया और विषमकाल में पूरा किया*। ये जीव एक साथ पाप भोगना शुरू करते हैं और क्षय जुदा, जुदा समय में करते हैं।

---

* जैसे मनुष्यभव में दो जीवों ने एक साथ नरकायु बांधी। एक ने अन्तर्मुहूर्त रहते आयु बांधी और एक ने इससे अधिक समय रहते आयु बांधी। प्रदेश की अपेक्षा से दोनों जीवों ने एक साथ आयु भोगना शुरू किया। किन्तु दोनों नरक में भिन्न–भिन्न काल में उत्पन्न हुए। जिसने अन्तर्मुहूर्त रहते आयु बांधी थी, वह पहले उत्पन्न हुआ और दूसरा बाद में। दोनों नरकायु का क्षय भी भिन्न–भिन्न काल में करेंगे। तत्त्व केवलीगम्य।

४७ बोलों में से २० बोलों में (१ समुच्चय जीव, १×सलेशी, १ शुक्ललेशी, १+ शुक्लपक्षी, १>समदृष्ट, १ सज्ञानी, १ मतिज्ञानी, १ श्रुतज्ञानी, १ अवधिज्ञानी, १ मनः—पर्ययज्ञानी, १* नोसंज्ञा, १ अवेदी, १ < सकषायी, १ लोभकषाय, १ सयोगी, १

× सलेशी जीव में चार भांगे होते हैं—क्योंकि शुक्ललेश्या वाले जीव पापकर्म के बंधक भी होते हैं। कृष्णादि पांच लेश्या वालों में पहले के दो भांगे ही पाये जाते हैं। क्योंकि उनमें वर्तमान काल में मोहनीय रूप पापकर्म का क्षय या उपशम नहीं है, इसलिए उनमें अन्त के दो भांगे नहीं होते हैं।

+ जिन जीवों का संसारपरिभ्रमण अर्द्धपुद्गलपरावर्तन से अधिक बाकी है, उनको कृष्णपाक्षिक कहते हैं और जिन जीवों का संसारपरिभ्रमण अर्द्धपुद्गलपरावर्तन से अधिक बाकी नहीं है, किन्तु अर्द्धपुद्गलपरावर्तन में ही मोक्ष चले जावेंगे, उन्हें शुक्लपाक्षिक कहते हैं। कृष्णपाक्षिक में पहले के दो भांगे ही होते हैं। कृष्णपाक्षिक में दूसरा भांगा कृष्णपाक्षिक से शुक्लपाक्षिक बनने वाले जीव की अपेक्षा घटित होता है, क्योंकि उस जीव ने कृष्णपाक्षिकपणे बांधा था, बांधता है पर भविष्य में शुक्लपाक्षिक हो जाने से कृष्णपाक्षिपणे नहीं बांधेगा। शुक्लपाक्षिक में चार भांगे पाये जाते हैं—पहला भांगा तो नववें गुणस्थान में दो समय बाकी रहने तक है। दूसरा भांगा नववें गुणस्थान में एक समय बाकी रहने तक है। तीसरा भांगा उपशमश्रेणी में गिरने की अपेक्षा से है। चौथा भांगा क्षपकपणा की अपेक्षा से है।

> सम्यग्दृष्टि में शुक्लपाक्षिक की तरह चार भांगे पाये जाते हैं।

* आहार आदि की संज्ञा की आसक्ति वाले जीवों में क्षपकपणा और उपशमकपणा नहीं होता है। इसलिए उनमें पहला और दूसरा, ये दो भांगे ही पाये जाते हैं। नोसंज्ञा अर्थात् आहारादि की आसक्तिरहित जीवों में मोहनीयकर्म का क्षय तथा उपशम सम्भव होने से चारों भांगे पाये जाते हैं।

< सकषायी में चार भांगे होते हैं। पहला भांगा अभव्य जीव की अपेक्षा से होता है। दूसरा भांगा उस भव्य जीव की अपेक्षा से होता है जिसका मोहनीयकर्म क्षय होनेवाला है। तीसरा भांगा उपशम सूक्ष्मसम्पराय की अपेक्षा से है। चौथा भांगा क्षपक सूक्ष्मसम्पराय की अपेक्षा से है। इसी तरह लोभकषायी में चार भांगे समझने चाहिए। क्रोधकषायी में पहला और दूसरा, ये दो भांगे ही पाये जाते हैं। पहला भांगा अभव्य की अपेक्षा से है और दूसरा भांगा भव्य विशेष की अपेक्षा से है। तीसरा और चौथा भांगा नहीं होता, क्योंकि जब क्रोध का उदय होता है तब अवन्धकपणा नहीं होता है।

३–जो जीव विषमकाल में आयुष्य के उदयवाले हैं और समकाल में उत्पन्न हुए हैं, उन्होंने विषमकाल में आयुकर्म भोगना शुरू किया और समकाल में पूरा किया। ये जीव पाप भोगना जुदे, जुदे काल में शुरू करते हैं और क्षय एक साथ करते हैं। ४–जो जीव विषमकाल में आयुष्य के उदयवाले हैं और विषमकाल में उत्पन्न हुए हैं, उन्होंने विषमकाल में आयुकर्म भोगना शुरू किया और विषमकाल में पूरा किया। वे जीव जुदे, जुदे काल में पाप भोगना शुरू करते हैं और जुदे, जुदे काल में ही क्षय करते हैं।

२–अहो भगवन्! क्या सलेशी जीवों ने एक साथ कर्म भोगना शुरू किया और एक साथ पूरा किया? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न पूछना चाहिए। हे गौतम! कितनेक सलेशी जीवों ने एक साथ कर्म भोगना शुरू किया और एक साथ पूरा किया, इत्यादि सब पूर्ववत् कह देना चाहिए। सलेशी से अनाकार–उपयोग तक ४७ बोलों में पूर्वोक्त चार–चार भांगे कह देने चाहिए। जिस तरह समुच्चय जीव का कहा, उसी तरह २४ ही दण्डक में जितने–जितने बोल पाये जावें, उतने–उतने कह देने चाहिए।

जिस तरह यह पहला उद्देशा कहा गया, उसी तरह ११ ही उद्देशे कह देने चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि दूसरा, चौथा, छठा और आठवां, इन चार उद्देशों में दो, दो भांगे (पहला भांगा और दूसरा भांगा) ही कहने चाहिए। शेष तीसरा, पांचवां, सातवां, नवां, दशवां और ग्यारहवां, इन ६ उद्देशों में पहले की तरह ही चार–चार भांगे कहना चाहिए।

१२. समवसरण का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तीसवां, उद्देशा पहला)

गाथा

जीवा य लेस्स पक्खिय दिट्ठि, अन्नाण नाण सण्णाओ।
वेय कसाय उवओग जोग, एक्कारस वि ठाणा ॥१॥

मनयोगी, १ वचनयोगी, १ काययोगी, १ साकार–उपयोग, १ अनाकार–उपयोग, २०, समुच्चय पाप और मोहनीय कर्म में समुच्चय जीव, मनुष्य की अपेक्षा चारों भांगे पाये जाते हैं। नवमें गुणस्थान के दो समय बाकी रहते एक पहला भांगा पाया जाता है। एक समय बाकी रहते एक दूसरा भांगा पाया जाता है। उपशममोह में (ग्यारहवें गुणस्थान में) एक तीसरा भांगा पाया जाता है। क्षीणमोह में (बारहवें गुणस्थान में) एक चौथा भांगा पाया जाता है। १ अलेशी, १ अयोगी, १ केवली में एक चौथा भांगा पाया जाता है।

अकषायी में तीसरा और चौथा ये दो भांगे पाये जाते हैं। ये सब २४ बोल हुए। बाकी २३ बोलों में पहला और दूसरा ये दो भांगे पाये जाते हैं। बाकी २३ दण्डक में जितने–जितने बोल पाये जाते हैं, पहला और दूसरा ये दो–दो भांगे पाये जाते हैं।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, नाम, गोत्र, अन्तराय इन पांच कर्मों में समुच्चय जीव, मनुष्य की अपेक्षा १८ बोलों में (ऊपर २० कहे, उनमें से सकषायी और लोभकषायी ये दो बोल छोड़ कर) चारों भांगे पाये जाते हैं। दसवें गुणस्थान के दो समय बाकी रहते तो पहला भांगा पाया जाता है। एक समय बाकी रहते एक दूसरा भांगा पाया जाता है। उपशममोह (ग्यारहवें गुणस्थान) में एक तीसरा भांगा पाया जाता है।

क्षीणमोह (बारहवें गुणस्थान) में एक चौथा भांगा पाया जाता है। अलेशी, अयोगी, केवली में एक चौथा भांगा पाया जाता है। अकषायी में तीसरा और चौथा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। बाकी २५ बोलों में पहला और दूसरा, ये दो, दो भांगे पाये जाते हैं। बाकी २३ दण्डक में जिसमें जितने–जितने बोल पाये जाते हैं उन सब में पहला और दूसरा, ये दो, दो भांगे पाये जाते हैं। जैसे नारकी में ३५ बोल पाये जाते हैं, उनमें पहला दूसरा, ये दो भांगे पाये जाते हैं। इसी तरह भवनपति, वाणव्यन्तर में ३७ बोलों में पहला दूसरा,

अर्थ–१ समुच्चय जीव, ८ लेश्या (६ लेश्या, १ सलेशी, १ अलेशी), २ पाक्षिक (कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक), ३ दृष्टि (समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि), ४ अज्ञान (३ अज्ञान, १ समुच्चय अज्ञान), ६ ज्ञान (५ ज्ञान, १ समुच्चय ज्ञान), ५ संज्ञा (४ संज्ञा, १ नोसंज्ञा), ५ वेद (३ वेद, १ सवेदी, १ अवेदी), ६ कषाय (४ कषाय, १ सकषायी, १ अकषायी), २ उपयोग (साकार–उपयोग, अनाकार–उपयोग), ५ योग (३ मन, वचन, काया का योग, १ सयोगी, १ अयोगी)। ये सब मिलाकर ४७ बोल हुए।

१–अहो भगवन्! समवसरण (मत) कितने प्रकार का है? हे गौतम! चार प्रकार का है–*१ क्रियावादी, २ अक्रियावादी, ३ अज्ञानवादी, ४ विनयवादी।

समुच्चय जीव में ४७ बोल पाये जाते हैं। कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और चार अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़ कर) पाये जाते हैं। चारों गति का आयुष्य बांधते हैं। ये भव्य, अभव्य दोनों होते हैं। मिश्रदृष्टि में दो समवसरण (अज्ञानवादी विनयवादी) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध है। नियमा भव्य हैं। समदृष्टि में और चार ज्ञान में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। नारकी,

---

* १ क्रियावादी–आत्मा का अस्तित्व मानने वाले तथा ज्ञान और क्रिया से मोक्ष मानने वाले। इनके १८० भेद हैं।
२ अक्रियावादी–आत्मा आदि का अस्तित्व न मानने वाले। इनके ८४ भेद हैं।
३ अज्ञानवादी–अज्ञान से मोक्ष मानने वाले। इनके ६७ भेद हैं।
४ विनयवादी–सब का विनय करने से ही मोक्ष मानने वाले। जैसे–कुत्ता, बिल्ली, गाय, भैंस आदि सब का विनय करने से मोक्ष मानने वाले। इनके ३२ भेद हैं।
इन चारों के सब मिलाकर ३६३ मत होते हैं। यद्यपि ये सभी मिथ्यादृष्टि हैं, किन्तु यहाँ क्रियावादी का जो वर्णन है, वह सम्यक् अस्तित्व मानने वाले सम्यग्दृष्टियों का है।, इसलिये इन्हें समदृष्टि समझना चाहिये।

ये दो भांगे पाये जाते हैं। इस तरह बाकी सब दण्डक में कह देना चाहिए।

वेदनीयकर्म * समुच्चय जीव मनुष्य की अपेक्षा १२ बोलों में (१ समुच्चयजीव, २ × सलेशी, ३ + शुक्ललेशी,

---

* वेदनीयकर्म में पहला भांगा अभव्य की अपेक्षा होता है तथा तेरहवें गुणस्थान में दो समय बाकी रहते भी पहला भांगा पाया जाता है। जो भव्य जीव मोक्ष जाने वाला है, उसकी अपेक्षा से दूसरा भांगा होता है तथा तेरहवें गुणस्थान में एक समय बाकी रहते भी दूसरा भांगा पाया जाता है। तीसरा भांगा सम्भव नहीं है, क्योंकि जो जीव एक वक्त वेदनीयकर्म के अबंधक हो जाते हैं वे फिर कभी भी वेदनीयकर्म का वन्ध नहीं करते हैं। चौथा भांगा अयोगीकेवली के पहले समय की अपेक्षा से होता है।

×सलेशी जीव में पूर्वोक्त हेतु से तीसरे भांगे को छोड़कर बाकी तीन भांगे पाये जाते हैं। किन्तु कोई शंका करते हैं कि चौथा भांगा (पहले बांधा था, अब नहीं बांधता है और आगे भी नहीं बांधेगा) सलेशी में घटित नहीं हो सकता है। यह भांगा तो अलेशी (लेश्या–रहित), अयोगी में ही घटित हो सकता है। क्योंकि लेश्या तेरहवें गुणस्थान तक होती है और वहाँ तक वेदनीयकर्म का बंध भी होता है।

इसका समाधान इस प्रकार है कि इस सूत्र के वचन से अयोगी अवस्था के प्रथम समय में घंटालालान्याय (जैसे घंटा बजा चुकने पर भी उसके झणकार की आवाज पीछे तक रहती है, उसी तरह) से परम शुक्ललेश्या सम्भवित है। इसीलिए सलेशी में चौथा भांगा घटित हो सकता है।

+शुक्ललेश्या वाले में सलेशी की तरह तीन भांगे होते हैं। शैलेशी अवस्था में रहे हुए केवली और सिद्ध लेश्यारहित होते हैं। इनमें सिर्फ एक चौथा भांगा ही होता है।

कृष्णादि पांच लेश्या वाले जीवों में और कृष्णपाक्षिक जीवों में अयोगीपने का अभाव है। इसलिए इनमें पहले के दो भांगे ही पाये जाते हैं। शुक्लपाक्षिक में अयोगीपना हो सकता है, इसलिए उसमें पहला, दूसरा और चौथा, ये तीन भांगे पाये जाते हैं।

देवता–मनुष्य का और तिर्यंच, मनुष्य–वैमानिकदेव* का आयुष्य बांधते हैं। ये नियमा भव्य होते हैं। कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या में चारों समवसरण पाये जाते हैं। जिसमें क्रियावादी नारकी, देवता–मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं और क्रियावादी तिर्यंच, मनुष्य इन लेश्याओं में आयु नहीं बांधते। नियमा भव्य होते हैं। बाकी तीन समवसरण वाले चारों गति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों होते हैं। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में चारों समवसरण पाये जाते हैं। जिसमें क्रियावादी देवता– मनुष्य का और मनुष्य, तिर्यंच (क्रियावादी) वैमानिक का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते हैं। बाकी तीन समवसरण वाले देवता–तिर्यंच और मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं तथा मनुष्य तिर्यंच नारकी को छोड़कर बाकी तीन गति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों हैं। मनःपर्ययज्ञान और नोसंज्ञा में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। वैमानिक का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते हैं। अवेदी, अकषायी, अलेशी, केवलज्ञानी और अयोगी में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है, आयुष्य का अबंध है। नियमा भव्य होते हैं। बाकी २२ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। जिसमें क्रियावादी नारकी, देवता तो मनुष्य का और मनुष्य व तिर्यंच वैमानिकदेव का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते हैं। बाकी तीन समवसरण वाले चारों गति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों होते हैं।

नारकी में ३५ बोल पाये जाते हैं। कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और चार अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़कर) पाये जाते हैं। मनुष्य और तिर्यंच का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों

---

* यहाँ जो वैमानिक देव का आयुष्य बांधना बताया गया है, वह विशिष्ट सम्यग्दृष्टि क्रियावादी की अपेक्षा से है। विशेष खुलासा सद्धर्ममंडन पृष्ठ ४० से ४२ पर देखें।

होते हैं। मिश्रदृष्टि में दो समवसरण (विनयवादी, अज्ञानवादी) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबन्ध है। नियमा भव्य हैं। समदृष्टि और चार ज्ञान (तीन ज्ञान और एक समुच्चय ज्ञान) में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। एक मनुष्यगति का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते हैं। बाकी २३ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। जिसमें क्रियावादी मनुष्यगति का आयुष्य बांधता है। नियमा भव्य होते हैं। बाकी तीन समवसरण वाले मनुष्यगति और तिर्यंचगति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य,अभव्य दोनों होते हैं।

भवनपति से लेकर नव ग्रैवेयक तक जितने–जितने बोल पाये जायें, उतने–उतने कह देने चाहिए और समवसरण नारकीवत् कहना। भवनपति से लेकर बारहवें देवलोक तक १२ बोल (कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि, चार अज्ञान, मिश्रदृष्टि, समदृष्टि, चार ज्ञान) और नव ग्रैवेयक में ११ बोल (कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि, चार अज्ञान, समदृष्टि, चार ज्ञान, समुच्चय ज्ञान और पहले के ३ ज्ञान) में समवसरण नारकी के अनुसार कह देना चाहिए। बाकी बोल अपने–अपने स्थान के अनुसार कह देने चाहिए। इन सब का कथन नारकी के अनुसार कह देना चाहिए, सिर्फ इतनी विशेषता है कि नववें देवलोक से नव ग्रैवेयक तक चारों ही समवसरण पाये जाते हैं। आयुष्य एक मनुष्यगति का बांधते हैं।

पांच अनुत्तरविमान में २६ बोल पाये जाते हैं, उन सब में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। मनुष्यगति का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते हैं।

पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में २७ बोल पाये जाते हैं। उन सब में दो समवसरण (अक्रियावादी, अज्ञानवादी) पाये जाते हैं। तेजोलेश्या में आयुष्य का अबन्ध होता है। बाकी २६ बोलों

जिस तरह नारकी का कहा, उसी तरह १३ दण्डक देवता के कह देना।

बहुत पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदंडक के जीवों ने नारकी, देवता के १४ दंडकपने औदारिकपुद्गलपरावर्तन और ७ दंडकपने वैक्रियपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि। बहुत दस औदारिकदंडक के जीवों ने दस औदारिकदंडकपने औदारिकपुद्गलपरावर्तन और १७ दंडकपने वैक्रियपुद्गलपरावर्तन कितने किये ? अतीता अनंता, पुरेक्खडा अनन्ता। बहुत दस औदारिकदंडक के जीवों ने २४ दंडकपने तैजस्, कार्मण और श्वासोच्छ्वास पुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा अनन्ता। बहुत दस औदारिकदंडक के जीवों ने १६ दंडकपने मनपुद्गलपरावर्तन और १९ दण्डकपने वचनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा अनन्ता। बहुत दस औदारिकदण्डक के जीवों ने ८ दण्डकपने मनपुद्गलपरावर्तन और ५ दण्डकपने वचनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि। तीसरे सूत्र (एक जीव माहों माहीं) के अनुसार ८०६४ आलापक हुए । कुल ३३६+ ३३६+ ८०६४+ ८०६४= १६८०० आलापक हुए। इनमें से निषेधरूप के ३२६४ आलापक निकाल देने से बाकी १३५३६ आलापक विधिरूप आलापक रहे।

४ काल को काल की उपमा–असंख्यात समय की १ आवलिका, संख्यात आवलिका का १ श्वास, संख्यात आवलिका का १ उच्छ्वास, एक श्वासोच्छ्वास काल का १ पाणुकाल (प्राण), सात पाणुकाल का १ थोव (स्तोक), सात थोव का १ लव, ७७ लव का १ मुहूर्त, ३० मुहूर्त की १ अहोरात्रि, १५ अहोरात्रि का १ पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास की १ ऋतु, तीन ऋतु का १ अयन, दो

में मनुष्यगति और तिर्यंचगति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों होते हैं।

तेजस्काय और वायुकाय में २६ बोल पाये जाते हैं। दो समवसरण (अक्रियावादी, अज्ञानवादी) पाये जाते हैं। एक तिर्यंचगति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों होते हैं।

तीन विकलेन्द्रिय में ३१ बोल पाये जाते हैं। दो समवसरण (अक्रियावादी, अज्ञानवादी) पाये जाते हैं। समदृष्टि और तीन ज्ञान (दो ज्ञान, एक समुच्चय ज्ञान, में आयुष्य का अबंध होता है। नियमा भव्य होते हैं। बाकी २७ बोलों में मनुष्यगति और तिर्यंचगति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य और अभव्य दोनों होते हैं।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय में ४० बोल पाये जाते हैं। कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और चार अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़कर) पाये जाते हैं। चारों ही गति का आयुष्य बांधते हैं, भव्य, अभव्य दोनों होते हैं। मिश्रदृष्टि में दो समवसरण (अज्ञानवादी, विनयवादी) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबन्ध होता है। नियमा भव्य होते हैं। समदृष्टि और चार ज्ञान में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। वैमानिक देवता का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते हैं। कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या में ४ समवसरण पाये जाते हैं। जिसमें क्रियावादी में आयुष्य का अबंध होता है। नियमा भव्य होते हैं। बाकी तीन समवसरण में चारों गति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों होते हैं। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में ४ समवसरण पाये जाते हैं। क्रियावादी वैमानिक देवता का आयुष्य बांधते हैं। भव्य होते हैं। बाकी तीन समवसरण तीन गति का (नारकी को छोड़ कर) आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों होते हैं। बाकी २२ बोलों में चार समवसरण पाये जाते हैं। जिसमें क्रियावादी वैमानिक का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते

अयन का १ संवत्सर, पांच संवत्सर का १ युग, बीस युग के १०० वर्ष, दस सौ वर्षों का एक हजार वर्ष, सौ हजार वर्षों का एक लाख वर्ष, ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग।* पूर्व, त्रुटिताङ्ग त्रुटित, अडडाङ्ग अडड, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिपूरांग, अर्थनिपूर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका। ऐसी अनंता शीर्षप्रहेलिका एक पुद्गलपरावर्तन में पूरी हो जाती हैं।

५ वर्ष (क्षेत्र) को वर्ष (क्षेत्र) की उपमा–(१)अनन्ता सूक्ष्म परमाणु इकट्ठे होवें तब एक बादर व्यवहारिया परमाणु होता है।(२) अनन्ता बादर परमाणु इकट्ठे होवें तब एक उष्णसेणिया होता है। (३) आठ उष्णसेणिया इकट्ठे होवें तब एक शीतसेणिया होता है।(४) आठ शीतसेणिया इकट्ठे होवें तब एक उड्ढरेणु (ऊर्ध्वरेणु) होता है। (५) आठ उड्ढरेणु इकट्ठे होवें तब एक त्रसरेणु होता है। (६) आठ त्रसरेणु इकट्ठे होवें तब एक रथरेणु होता है।(७) आठ रथरेणु इकट्ठे होवें तब देवकुरु, उत्तरकुरु के युगलिया का एक बालाग्र होता है। (८) देवकुरु, उत्तरकुरु के युगलियों के आठ बालाग्र इकट्ठे होवें तब हरिवास, रम्यक्वास के युगलियों का एक बालाग्र होता है। (९) हरिवास, रम्यक्वास के युगलियों के आठ बालाग्र इकट्ठे होवें तब हेमवय, हिरणवय के युगलियों का एक बालाग्र होता है। (१०) हेमवय, हिरणवय के युगलियों के आठ बालाग्र इकट्ठे होवें तब पूर्व

---

* ८४ लाख पूर्वाङ्ग का १ पूर्व, ८४ लाख पूर्व का १ त्रुटिताङ्ग, इसी तरह शीर्षप्रहेलिका तक ८४ लाख से गुना करते जाना चाहिए। शीर्षप्रहेलिका में एक सौ चौरानवे आंक होते हैं।

+ यहां काल का माप होने से भरत, ऐरवत मनुष्य के वालाग्र नहीं लिये गये हैं। जहां पर क्षेत्र (अवगाहना) का माप करना होता है, वहां पर भरत, ऐरवत मनुष्यों के वालाग्र लिए जाते हैं।

हैं। बाकी तीन समवसरण चारों गति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों होते हैं।

मनुष्य में ४७ बोल पाये जाते हैं। जिनमें से १८ बोल तिर्यंच में कहे, उसी तरह से कह देने चाहिए। मनःपर्ययज्ञान और नोसंज्ञा में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। एक वैमानिक देवता का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते हैं। अवेदी, अकषायी, अलेशी, केवलज्ञानी और अयोगी में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है। नियमा भव्य होते हैं। बाकी २२ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। जिसमें क्रियावादी वैमानिक देवता का आयुष्य बांधते हैं। नियमा भव्य होते हैं। बाकी तीन समवसरण चारों गति का आयुष्य बांधते हैं। भव्य, अभव्य दोनों होते हैं।

प्रथम (औघिक) उद्देशा सम्पूर्ण।

दूसरा, चौथा, छठा और आठवां–इन चार उद्देशों में ३२ बोलों में नारकी में जो ३५ बोल कहे गये हैं, उनमें से मनयोग, वचनयोग, मिश्रदृष्टि, ये तीन बोल कम कर देने चाहिए। कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और चार अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़कर) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है। समदृष्टि और चार ज्ञान (३ ज्ञान, १ समुच्चय ज्ञान) में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है। बाकी २१ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है।

भवनपति और वाणव्यन्तर में ३४ बोल पाये जाते हैं (औघिक में ३७ बोल कहे उनमें से मनयोग, वचनयोग और मिश्रदृष्टि, ये तीन कम कर देने चाहिए)। उनमें से कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि, चार अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़ कर) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है। समदृष्टि और चार

पश्चिम महाविदेहक्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है।(११)+ पूर्व पश्चिम महाविदेहक्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्र इकट्ठे होवें तब एक लीक होती है।(१२) आठ लीक की जूं (यूका) होती है।(१३) आठ जूं का एक उत्सेध–अंगुल होता है।(१४) छह उत्सेध–अंगुल का एक पाउ होता है।(१५) बारह अंगुल की एक वेंत (वितस्ति–बिलांत) होती है।(१६) दो वेंत (चौबीस अंगुल) का एक हाथ होता है।(१७) दो हाथ (अड़तालीस अंगुल) की एक कुक्षि होती है।(१८) चार हाथ (९६ अंगुल) का एक धनुष होता है।(१९) दो हजार धनुष का एक गाउ (कोस) होता है।(२०) चार गाउ का एक योजन होता है।

जैसे–कल्पना कीजिये—चार कोस का लम्बा, चार कोस का चौड़ा और चार कोस का ऊंडा (गहरा) एक कुआ (कूप) हो। उसमें देवकुरु , उत्तरकुरु के एक दिन के जाव सात दिन के जन्मे हुए युगलियों के केशों के (बालाग्र के) असंख्याता खंड (टुकड़ा) करें, दृष्टिगोचर हों उससे असंख्यात गुणे छोटे, सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्ता की अवगाहना से असंख्यातगुणे बड़े, बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त की अवगाहना जितने खंड करें। उन सूक्ष्म खंडों से उस कुए को ठसाठस भर दें। पांच उपमायें दी जाती हैं, उन उपमाओं करके सहित उस कुए को ठसाठस भर दें–(१) चक्रवर्ती की सेना उस भरे हुए कुए के ऊपर होकर निकल जाय तो जरा सा भी दबे नहीं (एक खंड भी मुचे नहीं)।(२) संवर्त्तक नाम का वायु चले तो एक खंड (टुकड़ा) भी उड़े नहीं।(३) पुष्करावर्त मेघ बरसे तो एक खंड भी भींजे नहीं।(४) गंगा, सिंधु नदी का पूर आवे तो एक खण्ड भी बहे नहीं।(५) महा दावानल (वनाग्नि) लगे तो एक खण्ड भी जले नहीं। इस प्रकार उस कुए को ठसाठस भर कर सौ, सौ वर्षों से एक, एक बालाग्रखंड निकाला जाय तो जितने काल में वह कुआ निर्लेपपणे (बिलकुल) खाली हो, उसको एक पल्योपम×

ज्ञान में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है। बाकी २३ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है।

ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक में ३१ बोल पाये जाते हैं (औधिक में ३४ बोल कहे, उनमें से मनयोग, वचनयोग और मिश्रदृष्टि, ये तीन बोल कम कर देने चाहिए)। कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और चार अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़ कर) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है। समदृष्टि और चार ज्ञान में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है। बाकी २० बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है।

तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक तक ३० बोल पाये जाते हैं (औधिक में ३३ बोल कहे, उनमें से मनयोग वचनयोग और मिश्रदृष्टि, ये तीन कम देने चाहिए)। कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और चार अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़कर) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है। समदृष्टि और चार ज्ञान में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है। बाकी १९ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है।

नव ग्रैवेयक में २८ बोल (औधिक में ३० बोल कहे, उनमें से मनयोग, वचनयोग, ये दो कम कर देने चाहिए) पाये जाते हैं। कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और चार अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़कर) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है। समदृष्टि और चार ज्ञान में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है। बाकी १७ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है।

कहते हैं। ऐसे दस * कोडाकोड कुए खाली हों, उतने काल को एक सागरोपम कहते हैं। ऐसे चार कोडाकोडी सागर का पहला

× पल्योपम तीन प्रकार के होते हैं– १ उद्धारपल्योपम (२) अद्धापल्योपम (३) क्षेत्रपल्योपम।

प्रत्येक पल्योपम व्यवहारिक और सूक्ष्म के भेद से दो– दो प्रकार का है। व्यवहारिकपल्योपम की प्ररूपणा सूक्ष्मपल्योपम के स्वरूप को सुगमता पूर्वक समझाने के लिये की गई है। वैसे इसका कोई प्रयोजन नहीं है।

उद्धारपल्योपम

व्यवहारिक उद्धारपल्योपम—चार कोश लम्बा, चार कोश चौड़ा और चार कोश गहरा एक कुआ है। उस कुए को देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र के एक यावत् सात दिन के जन्मे हुए युगलियों के बालाग्रों से ऊपर लिखे अनुसार ठूंस –ठूंस कर भरा जाय। उस कुए में से एक–एक बालाग्र को एक–एक समय में निकालते–निकालते जितना काल सारे कुए के खाली होने में लगे, उतने कालपरिमाण को व्यवहारिक उद्धारपल्योपम कहा जाता है।

दस कोडाकोडी व्यवहारिक उद्धारपल्योपमों का एक व्यवहारिक उद्धारसागरोपम होता है।

सूक्ष्म उद्धारपल्योपम–उपर्युक्त परिमाण वाला कुआ पूर्वोक्त जुगलियों के बालाग्रों के असंख्यात–असंख्यात खंड करके उन बालाग्रों के खंडों से ऊपर लिखे अनुसार ठूंस–ठूंस कर भरा जाये। उस कुए में से बालाग्र के एक–एक खंड को एक–एक समय में निकालते निकालते सारे कुए के खाली होने में जितना काल लगे, उस कालपरिमाण को सूक्ष्म उद्धारपल्योपम कहते हैं।

दस कोडाकोडी सूक्ष्म उद्धारपल्योपमों का एक सूक्ष्म उद्धारसागरोपम होता है। ढाई सूक्ष्म उद्धारसागरोपमों में जितने समय होते है, उतने ही द्वीप, समुद्र हैं।

अद्धापल्योपम

व्यवहारिक अद्धापल्योपम—चार कोश लम्बे, चार कोश चौड़े और चार कोश गहरे कुए को देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र के एक यावत् सात

पांच अनुत्तर विमान में २४ बोल (औघिक में २६ कहे, उनमें से मनयोग और वचनयोग, ये दो कम कर देने चाहिए) पाये जाते हैं। एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है।

पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में २७ बोल पाये जाते हैं। तेजस्काय, वायुकाय में २६ बोल पाये जाते हैं। तीन विकलेन्द्रिय में ३० बोल (औघिक में ३१ कहे, उनमें से वचनयोग कम कर देना चाहिए) पाये जाते हैं। इनमें दो समवसरण (अक्रियावादी,अज्ञानवादी) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय में ३५ बोल (औघिक में ४० कहे गये हैं, उनमें से विभंगज्ञान, अवधिज्ञान, मिश्रदृष्टि, मनयोग, वचनयोग, ये ५ बोल कम कर देने चाहिए) पाये जाते हैं, उनमें से कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और तीन अज्ञान में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़ कर) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है। समदृष्टि और तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, समुच्चयज्ञान) में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है। बाकी २६ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है।

मनुष्य में ३६ बोल (औघिक में ४७ कहे गये हैं, उनमें से अलेशी, मिश्रदृष्टि विभंगज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, नोसंज्ञा, अवेदी, अकषायी, मनयोगी, वचनयोगी, अयोगी, ये ११ बोल कम कर देने चाहिए) पाये जाते हैं। कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि और तीन अज्ञान (२ अज्ञान, १ समुच्चय अज्ञान) में तीन समवसरण (क्रियावादी को छोड़ कर) पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है। समदृष्टि और चार ज्ञान में एक समवसरण (क्रियावादी) पाया जाता है। आयुष्य का अबंध होता है। बाकी २६ बोलों में चारों समवसरण पाये जाते हैं। आयुष्य का अबंध होता है।

दिन के जन्मे हुए युगलियों के वालाग्रों से ऊपर लिखे अनुसार ठूंस ठूंस कर भरा जाय। उस कुए में से सौ, सौ वर्ष में एक, एक बालाग्र निकालते, निकालते सारे कुए के खाली होने में जितना समय लगे, उस कालपरिमाण को व्यवहारिक अद्धापल्योपम कहते हैं।

दस कोडाकोडी व्यवहारिक अद्धापल्योपमों का एक व्यवहारिक सागरोपम होता है।

सूक्ष्म अद्धापल्योपम–उपर्युक्त परिमाण वाले कुए को पूर्वोक्त जुगलियों के वालाग्रों के असंख्यात–असंख्यात खण्ड करके उन खंडों से ऊपर लिखे अनुसार ठूंस ठूंस कर भरा जाय। उस कुए में से वालाग्र के एक, एक खंड को सौ–सौ वर्षों में निकाला जाय। इस प्रकार निकालते–निकालते सारा कुआ जितने काल में खाली हो जाय, उतने कालपरिमाण को सूक्ष्म अद्धापल्योपम कहते हैं।

दस कोडाकोड़ी सूक्ष्म अद्धापल्योपमों का एक सूक्ष्म अद्धासागरोपम होता है।

सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सूक्ष्म अद्धासागरोपम से चार गति के जीवों की आयु का माप किया जाता है।

क्षेत्रपल्योपम

व्यवहारिक क्षेत्रपल्योपम–चार कोश लम्बे, चार कोश चौड़े और चार कोश गहरे कुए को देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र के एक यावत् सात दिन के जन्मे हुए युगलियों के वालाग्रों से ऊपर लिखे अनुसार ठूंस– ठूंस कर भरा जाये। इस कुए में इन वालाग्रों से जो आकाशप्रदेश स्पृष्ट (फरसे हुए) हैं, उन आकाशप्रदेशों में से एक, एक आकाशप्रदेश को एक,एक समय में निकालते–निकालते जितने काल में ये सभी स्पृष्ट आकाशप्रदेश निकलें, उतने कालपरिमाण को एक व्यवहारिक क्षेत्रपल्योपम कहते हैं।

दस कोडाकोडी व्यवहारिक क्षेत्रपल्योपमों का एक व्यवहारिक क्षेत्रसागरोपम होता है।

सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम—उपर्युक्त परिमाण वाला कुआ पूर्वोक्त युगलियों के वालाग्रों के असंख्यात, असंख्यात खंड करके ऊपर लिखे अनुसार ठूंस–ठूंस कर भरा जाये। इन वालाग्रखंडों से जो आकाशप्रदेश स्पृष्ट (फरसे हुए) हैं और जो अस्पृष्ट (फरसे हुए नहीं) हैं, उन सभी स्पृष्ट, अस्पृष्ट आकाशप्रदेशों

२–चौथी, पांचवीं, छठी नारकी में ८ उपयोग (पूर्ववत्) लेकर जाते हैं और ५ उपयोग लेकर निकलते हैं। (२ ज्ञान, २ अज्ञान, १ दर्शन–अचक्षुदर्शन =५)। = ८५

३–सातवीं नारकी में ५ उपयोग लेकर जाते हैं (३ अज्ञान, २ दर्शन–अचक्षु और अवधिदर्शन =५)। ३ उपयोग लेकर निकलते हैं (२ अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन =३)। =५३

४–भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी में ८ उपयोग (पहली नारकीवत्) लेकर जाते हैं और ५ उपयोग (चौथी नारकीवत्) लेकर निकलते हैं। = ८५

५–पहले देवलोक से नव ग्रैवेयक तक में ८ उपयोग (पहली नारकीवत्) लेकर जाते हैं और ७ उपयोग (पहली नारकीवत्) लेकर निकलते हैं। = ८७

६–पांच अनुत्तरविमान में ५ उपयोग लेकर जाते हैं (३ ज्ञान, दो दर्शन–अचक्षु और अवधिदर्शन = ५)। ५ ही उपयोग लेकर निकलते हैं। = ५५

७–पांच स्थावर में ३ उपयोग लेकर जाते हैं (२ अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन) और ३ ही उपयोग लेकर निकलते हैं। = ३३

८–तीन विकलेन्द्रिय में ५ उपयोग लेकर जाते हैं (२ ज्ञान, २ अज्ञान, १ दर्शन–अचक्षु = ५) और ३ उपयोग लेकर निकलते हैं (२ अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन)। = ५३

९–तिर्यंचपंचेन्द्रिय में ५ उपयोग लेकर जाते हैं (२ ज्ञान, २ अज्ञान, १ दर्शन–अचक्षु) और ८ उपयोग (पहली नारकी में उत्पत्तिवत्) लेकर निलते हैं। = ५८

१०– मनुष्य में ७ उपयोग लेकर जाते हैं (३ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दर्शन–अचक्षु, अवधिदर्शन =७) और ८ उपयोग (पहली नारकी में उत्पत्तिवत्) लेकर निकलते हैं। =७८

में से एक, एक आकाशप्रदेश एक, एक समय में निकाला जाय, इस प्रकार निकालते–निकालते सभी आकाशप्रदेशों से जितने काल में कुआ खाली हो, उतने कालपरिमाण को सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम कहते हैं।

दस कोडाकोडी सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपमों का एक सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम होता है।

सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम द्वारा दृष्टिवाद के द्रव्यों का मान किया जाता है।

यहां पर शंका हो सकती है कि जब उपर्युक्त पल्य बालाग्रों के असंख्यात–असंख्यात खंड करके ठूंस ठूंस कर भरा हुआ है और छिद्र रहित है, फिर इसमें बालाग्र के खंड आकाशप्रदेश से अस्पृष्ट कैसे रह सकते हैं? इसके समाधान के लिये शास्त्रकार यह दृष्टान्त देते हैं। जैसे एक कोठा कोलों से भरा हुआ है किंतु उसमें बिजौरे भरे जायें तो समा जायेंगे, क्योंकि कोलों के बीच छिद्र रह जाते हैं। फिर इस कोठे में बिल्वफल भरे जायें तो वे भी समा जायेंगे, क्योंकि बिजौरों के बीच भी छिद्र रहे हुए हैं। इसी तरह इसमें आँवले भरे जायें तो वे भी समा जायेंगे क्योंकि बिल्वफलों के बीच जगह छूटी हुई है। इसी प्रकार भरे हुए उस कोठे में उत्तरोत्तर छोटी छोटी वस्तुएँ बेर, चने, मूंग, सरसों, गंगानदी की रेत भरी जाये तो वह भी समा जायेगी। इसी प्रकार बालाग्र के खंड बादर हैं और आकाशप्रदेश सूक्ष्म हैं। इसलिये आकाशप्रदेश बालाग्रों से अस्पृष्ट रह जाते हैं।

भगवतीसूत्र के छट्ठे शतक, सातवें उद्देशे में विदेहक्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्र की एक लीख बताई गई है और अनुयोगद्वारसूत्र में विदेह क्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्र का भरत ऐरवत क्षेत्र के मनुष्य का एक बालाग्र होता है और भरत ऐरवत क्षेत्र के मनुष्य के आठ बालाग्र की एक लीख होती है। चूंकि अद्धापल्योपम के पल्य का नाप भगवतीसूत्र– छठे शतक सातवें उद्देशे में बताये गये नाप से होता है और उद्धार और क्षेत्र पल्योपम का नाप अनुयोगद्वारसूत्र में बताये गये नाप से होता है, इसलिये अद्धापल्योपम उद्धार व क्षेत्र पल्योपम के आठवें भाग होता है।

* एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने से जितनी संख्या आवे उसको कोडाकोडी कहते हैं।

१४. पुद्‌गलपरावर्तन का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बारहवां, उद्देशा चौथा)

१. नामद्वार, २. अर्थ (गुण) द्वार, ३. संख्याद्वार, ४. काल को काल की उपमाद्वार, ५. वर्ष (क्षेत्र) को वर्ष (क्षेत्र) की उपमाद्वार, ६. पुद्‌गलपरावर्तन में पुद्‌गलपरावर्तनद्वार, ७. पुद्‌गलपरावर्तन के काल की अल्पाबोधद्वार, ८. अल्पबहुत्व (अल्पाबोध) द्वार।

१ नामद्वार–अहो भगवन्! पुद्‌गलपरावर्तन कितने प्रकार का है? हे गौतम! ७ प्रकार का है–१, औदारिकपुद्‌गलपरावर्तन, २, वैक्रियपुद्‌गलपरावर्तन, ३, तैजस्‌पुद्‌गलपरावर्तन, ४, कार्मणपुद्‌गलपरावर्तन, ५, मनपुद्‌गलपरावर्तन, ६, वचनपुद्‌गलपरावर्तन, ७, आनप्राण (श्वासोच्छ्‌वास) पुद्‌गलपरावर्तन।

२ अर्थ (गुण) द्वार–अहो भगवन्! औदारिकपुद्‌गलपरावर्तन किसको कहते हैं? हे गौतम! सर्व लोक के पुद्‌गल औदारिक शरीरपने ग्रहण करके छोड़ दिये, उसको औदारिकपुद्‌गलपरावर्तन कहते हैं। इसी तरह वैक्रियपुद्‌गल–परावर्तन यावत् श्वासोच्छ्‌वासपुद्‌गलपरावर्तन तक का अर्थ कह देना चाहिए।

३ संख्याद्वार–एक एक नारकी के नैरयिक ने सात वर्गणापने पुद्‌गलपरावर्तन कितने किये? हे गौतम! अतीत अनन्ता, पुरेक्खडा (भविष्यत्‌काल में) कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि १–२–३ जाव संख्याता, असंख्याता, अनन्ता। इसी तरह २३ दण्डक और कह देना। २४×७=१६८ अतीतकाल की अपेक्षा और १६८ आगामीकाल की अपेक्षा कुल ३३६ आलापक हुए।

अहो भगवन्! बहुत नारकी के नैरयिकों ने सात वर्गणापने पुद्‌गलपरावर्तन कितने किये? हे गौतम! अतीत अनन्ता, पुरेक्खडा

आरा, तीन कोडाकोडी सागर का दूसरा आरा, दो कोडाकोडी सागर का तीसरा आरा, एक कोडाकोडी सागर में ४२ हजार वर्ष कम चौथा आरा, २१ हजार वर्ष का पांचवां आरा, २१ हजार वर्ष का छठा आरा होता है। दस कोडाकोडी सागर की एक अवसर्पिणी और दस कोडाकोडी सागर की एक उत्सर्पिणी होती है। एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी दोनों मिल कर एक कालचक्र होता है। ऐसे अनंत–कालचक्र एक पुद्गलपरावर्तन में पूरे हो जाते हैं।

६ पुद्गलपरावर्तन में पुद्गलपरावर्तनद्वार– (१) एक वैक्रियपुद्गलपरावर्तन में वचनपुद्गलपरावर्तन अनन्ता होते हैं।(२) एक वचनपुद्गलपरावर्तन में मनपुद्गलपरावर्तन अनन्ता होते हैं। (३) एक मनपुद्गलपरावर्तन में श्वासोच्छ्वासपुद्गलपरावर्तन अनन्ता होते हैं। (४) एक श्वासोच्छ्वासपुद्गलपरावर्तन में औदारिकपुद्गलपरावर्तन अनन्ता होते हैं। (५) एक औदारिकपुद्गलपरावर्तन में तैजस्पुद्गलपरावर्तन अनन्ता होते हैं। (६) एक तैजस्पुद्गलपरावर्तन में कार्मणपुद्गलपरावर्तन अनन्ता होते हैं।

७ पुद्गलपरावर्तन के काल की अल्पाबोधद्वार–सबसे थोड़ा कार्मणपुद्गलपरावर्तन का काल, उससे तैजस्पुद्गलपरावर्तन का काल अनन्तगुणा, उससे औदारिकपुद्गलपरावर्तन का काल अनन्तगुणा, उससे श्वासोच्छ्वासपुद्गलपरावर्तन का काल अनन्तगुणा, उससे मनपुद्गलपरावर्तन का काल अनन्तगुणा, उससे वचनपुद्गलपरावर्तन का काल अनन्तगुणा, उससे वैक्रियपुद्गलपरावर्तन का काल अनन्तगुणा।

८ अल्पाबोधद्वार–सबसे थोड़े वैक्रियपुद्गलपरावर्तन, उससे वचनपुद्गलपरावर्तन अनन्तगुणा, उससे मनपुद्गलपरावर्तन अनन्तगुणा, उससे श्वासोच्छ्वासपुद्गलपरावर्तन अनन्तगुणा, उससे

अनन्ता। इसीतरह २३ दण्डक और कह देना। २४×७=१६८। अतीतकाल की अपेक्षा १६८और आगामीकाल की अपेक्षा १६८, कुल ३३६ आलापक हुए। अहो भगवन्! एक एक नारकी के नैरयिक ने नारकी और १३ दंडक देवता, ये १४ दण्डकपने औदारिकपुद्गलपरावर्तन कितने किये? हे गौतम! अतीत नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि।

एक एक नारकी के नैरयिक ने दस दण्डक औदारिकपने औदारिकपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीत अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया*। एक-एक नारकी के नैरयिक ने १७ दण्डकपने वैक्रियपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीत अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक नारकी के नैरयिक ने ७ (३ विकलेन्द्रिय, ४ स्थावर) दण्डकपने वैक्रियपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि।

एक एक नारकी के नैरयिक ने २४ दण्डकपने तैजस्पुद्गलपरावर्तन, कार्मणपुद्गलपरावर्तन, श्वासोच्छ्वास-पुद्गलपरावर्तन कितने किये? हे गौतम! अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक नारकी के नैरयिक ने १६ दण्डकपने मनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक नारकी के नैरयिक ने ८ दण्डकपने मनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि। एक एक नारकी के नैरयिक ने १९ दण्डकपने वचनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ

*'एगोत्तरीया' शब्द का अर्थ एक दो तीन यावत् संख्याता असंख्याता अनन्ता है। अन्यत्र भी इसका यही अर्थ समझना चाहिये।

औदारिकपुद्गलपरावर्तन अनन्तगुणा, उससे तैजस्पुद्गलपरावर्तन अनन्तगुणा, उससे कार्मणपुद्गलपरावर्तन अनन्तगुणा।

१५, पुद्गलपरावर्तन का थोकड़ा

(छठा कर्मग्रन्थ)

पुद्गलपरावर्तन के चार भेद हैं---द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। ४ सूक्ष्म और ४ बादर, इस तरह ८ भेद होते हैं।

१–द्रव्य से बादरपुद्गलपरावर्तन---सम्पूर्ण लोक के पुद्गल सात ही वर्गणापने ग्रहण किये जायें, एक परमाणुमात्र भी बिना ग्रहण किया हुआ न रहे। उसको द्रव्यबादरपुद्गलपरावर्तन कहते हैं। जैसे एक गुड़ की भेली के ७ मकोड़े लगे हुए हों, इसतरह लोक का पुद्गल १ गुड़ की भेली समान और ७ वर्गणा समान ७ मकोड़े।

२–द्रव्य से सूक्ष्मपुद्गलपरावर्तन---सम्पूर्ण लोक के पुद्गल एक ,एक वर्गणापने क्रम से ग्रहण कियें जायें। इस तरह सात ही वर्गणापने ग्रहण किये जायें, उसको द्रव्य से सूक्ष्मपुद्गलपरावर्तन कहते हैं। इसमें अनन्ता काल लगता है। जैसे गुड़ की ७ भेली के एक मकोड़ा लगा हो।

३–क्षेत्र से बादरपुद्गलपरावर्तन–जैसे कोई एक जीव बार–बार मर–मर कर सम्पूर्ण लोक के आकाशप्रदेशों को सात ही वर्गणापने जन्म–मरण करके स्पर्शे, एक भी प्रदेश खाली न रहे। उसको क्षेत्र से बादरपुद्गलपरावर्तन कहते हैं।

४–क्षेत्र से सूक्ष्मपुद्गलपरावर्तन–इस जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के बीचोंबीच ८ रुचकप्रदेश हैं। कोई जीव पहली बार पहले रुचक प्रदेश पर मरे, फिर दूसरी बार उसके पास के प्रदेश पर मरे (आगे, पीछे मरे, वह गिनती में न लिया जाय) इस तरह सम्पूर्ण लोक के

अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक नारकी के नैरयिक ने ५ दंडकपने (पांच स्थावर) वचनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि।

जिसतरह नारकी का दंडक कहा, उसी तरह १३ दंडक देवता के कह देना चाहिये।

एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदंडक के जीवों ने नारकी, देवता के १४ दंडकपने औदारिकपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि। एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदंडक के जीवों ने १० दंडक औदारिकपने औदारिकपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदंडक के जीवों ने १७ दंडकपने वैक्रियपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदंडक के जीवों ने ७ दंडकपने वैक्रियपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि। एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदंडक के जीवों ने २४ दंडकपने तैजस्पुद्गलपरावर्तन, कार्मणपुद्गलपरावर्तन, श्वासोच्छ्वासपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदंडक के जीवों ने १६ दंडकपने मनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदण्डक के जीवों ने ८ दण्डकपने मनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि। एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदण्डक के जीवों ने १९

प्रदेशों को एक-एक वर्गणापने क्रम से पूरा करे, उसको क्षेत्र से सूक्ष्मपुद्गलपरावर्तन कहते हैं। इसमें अनंता काल लगता है।

५-काल से बादरपुद्गलपरावर्तन---जैसे बीस कोडाकोडी सागर का एक कालचक्र होता है। उसमें कोई जीव सातों ही वर्गणापने आगे, पीछे मर कर बीस कोडाकोडी सागर के समय को पूरा करे, कोई भी समय बाकी न रहे, उसको काल से बादरपुद्गलपरावर्तन कहते हैं।

६-काल से सूक्ष्मपुद्गलपरावर्तन---जैसे बीस कोडाकोडी सागर का एक कालचक्र होता है। उसमें कोई जीव पहली वार कालचक्र के पहले समय में मरे, फिर दूसरे कालचक्र में दूसरे समय में मरे, (आगे, पीछे मरे वह गिनती में न लिया जाये)। इस प्रकार क्रम से मरता हुआ वह जीव बीस कोडाकोडी सागर के समय को पूरा करे, एक भी समय बाकी न रहे, उसको काल से सूक्ष्मपुद्गलपरावर्तन कहते हैं। इसमें अनन्ता काल लगता है।

७-भाव से बादरपुद्गलपरावर्तन---एक समय के उत्पन्न हुए असंख्याता लोकाकाश जितने सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव, उससे सर्व तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणा, उससे तेजस्काय की कायस्थिति के समय असंख्यातगुणा, उससे संयम के स्थान असंख्यातगुणा, उससे रसबन्ध के हेतुभूत कषाय के अध्यवसायस्थान असंख्यातगुणा हैं। इसमें कोई जीव पहले अध्यवसाय में मरे, फिर आगे, पीछे करके सात ही वर्गणापने मर कर रसवन्ध के सब अध्यवसायों को स्पर्श करे, उसको भाव से बादरपुद्गलपरावर्तन कहते हैं।

८-भाव से सूक्ष्मपुद्गलपरावर्तन-जैसे कोई जीव रसवन्ध के अध्यवसायस्थानों में क्रमवार मरता हुआ सब स्थानों को पूरा

दण्डकपने वचनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगोत्तरीया। एक एक पृथ्वीकाय आदि १० औदारिकदण्डक के जीवों ने ५ दण्डकपने वचनपुद्लपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि।

२४ दण्डक पर सात–सात पुद्गलपरावर्तन गिनने से २४×७=१६८ आलापक एक एक दण्डक के हुए। इनको २४ दण्डक से गुणा करने से १६८×२४=४०३२ आलापक हुए। अतीतकाल संबंधी ४०३२ और आगामीकाल संबंधी ४०३२ आलापक हुए। ये कुल ८०६४ आलापक हुए।

अहो भगवन्! बहुत नारकी के नैरयिकों ने सात पुद्गलपरावर्तन कितने किये ? हे गौतम! बहुत नारकी के नैरयिकों ने नारकी, देवता १४ दण्डकपने औदारिकपुद्गलपरावर्तन अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि। बहुत नारकी के नैरयिकों ने दस दण्डक औदारिकपने औदारिकपुद्गलपरावर्तन कितने किये ? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा अनन्ता। बहुत नारकी के नैरयिकों ने १७ दण्डकपने वैक्रियपुद्गलपरावर्तन कितने किये ? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा अनन्ता। बहुत नारकी के नैरयिकों ने ७ दंडकपने वैक्रियपुद्गलपरावर्तन कितने किये ? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि। बहुत नारकी के नैरयिकों ने २४ दण्डकपने तैजस्, कार्मण और श्वासोच्छ्वासपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा अनन्ता। बहुत नारकी के नैरयिकों ने १६ दण्डकपने मनपुद्गलपरावर्तन और १९ दण्डकपने वचनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता अनन्ता, पुरेक्खडा अनन्ता। बहुत नारकी के नैरयिकों ने ८ दण्डकपने मनपुद्गलपरावर्तन, ५ दण्डकपने वचनपुद्गलपरावर्तन कितने किये? अतीता नत्थि, पुरेक्खडा नत्थि।

करे, कोई भी स्थान बाकी न रहे, उसको भाव से सूक्ष्मपुद्गलपरावर्तन कहते हैं। इसमें अनन्ता काल लगता है।

१६. कषाय के त्रेपन बोलों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बारहवां, उद्देशा पांचवां)

(१) क्रोध के परिणाम उत्पन्न करने वाले कर्म को क्रोध कहते हैं। क्रोध के १० नाम हैं—

१—क्रोध—क्रोध का सामान्य नाम है।

२—कोप—क्रोध का विशेष नाम है। क्रोध के उदय होने पर अपने स्वभाव से चलित होना।

३—रोष—क्रोध का अनुबन्ध, क्रोध की परम्परा।

४—दोष (द्वेष)—अपने आपको तथा दूसरों को दोष देना, वह दोष अथवा अप्रीतिमात्र वह द्वेष।

५—अक्षमा—दूसरे के अपराध को सहन न करना।

६—संज्वलन—क्रोध से बारम्बार जलते रहना।

७—कलह—जोर—जोर से शब्द करते हुए परस्पर अनुचित बोलना।

८—चांडिक्य—रौद्र रूप धारण करना।

९—भंडण—लकड़ी आदि से लड़ना।

१०—विवाद—परस्पर एक दूसरे के लिये आक्षेपजनक शब्द कहना।

ये क्रोध के १० नाम हैं। अथवा ये १० नाम क्रोध के एकार्थक (एक अर्थवाले) शब्द हैं।

(२) मान के परिणाम को उत्पन्न करने वाले कर्म को मान कहते हैं। मान के १२ नाम हैं—

१—मान—मान का सामान्य नाम।

२–मद–(हर्ष)–मान का विशेष नाम।

३–दर्प–मदमस्तपना, अहंकारभाव।

४–स्तभ–स्तम्भ की तरह अकड़ कर रहना। किसी को नमस्कार न करना।

५–गर्व–घमण्ड (अहंकार) करना।

६–अत्युत्क्रोश–अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ बताना।

७–परपरिवाद–दूसरों की निन्दा करना, दूसरों के अवगुणवाद बोलना।

८–उत्कर्ष–अभिमान से अपनी समृद्धि, अपना ऐश्वर्य प्रगट करना।

९–अपकर्ष–दूसरे को नीचा दिखाना, अपनी क्रिया को ऊंची बताना।

१०–उन्नत–पहिले जिन गुरुजनों को नमस्कार करता था, उन्हें भी नमस्कार करना छोड़ देना, अथवा अभिमान से शिष्टाचार एवं नीति का भी त्याग कर देना।

११–उन्नाम–जो अपने को नमस्कार करता है, उसको वापिस नमस्कार न करना, अथवा उसके नमस्कार का जवाब न देना।

१२–दुर्नाम–उचित रूप से नहीं नमना, अथवा मद से दुष्ट रूप से प्रवृत्ति करना।

स्तम्भ आदि मान के कार्य हैं। अथवा ये सब मान के एकार्थक नाम हैं।

(३) माया–जिससे माया कर्म का बन्ध हो, उसको माया कहते हैं। माया के १५ नाम हैं–

१–माया–माया का सामान्य नाम।

२–उपधि–दूसरों को ठगने के परिणाम रखना।

५–अल्पबहुत्वद्वार–१–सब से थोड़े चारित्र–आत्मा वाले, २–उससे ज्ञान–आत्मा वाले अनन्तगुणे, ३–उससे कषाय–आत्मा वाले अनन्तगुणे, ४– उससे योग–आत्मा वाले विशेषाधिक, ५– उससे वीर्य–आत्मा वाले विशेषाधिक। ६,७,८, उससे द्रव्य–आत्मा वाले, उपयोग–आत्मा वाले, दर्शन–आत्मा वाले परस्पर तुल्य (बराबर) विशेषाधिक हैं।

१८. उत्पन्न संख्या के उनतालीस बोलों का थोकड़ा*

(भगवतीसूत्र, शतक तेरहवां, उद्देशा पहला, दूसरा)

(१) समुच्चय कितने उपजते हैं? १ (२) सलेशी १ ।(३) शुक्लपक्षी, कृष्णपक्षी २ ।(४) संज्ञी, असंज्ञी २ ।(५) भवी, अभवी २ ।(६) मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी, विभंगज्ञानी ६ ।(७) चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी ३ ।(८) आहारसंज्ञी, भयसंज्ञी, मैथुनसंज्ञी, परिग्रहसंज्ञी ४ ।(९) स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी ३ ।(१०) क्रोधी, मानी, मायी, लोभी ४ ।(११) श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, नोइन्द्रिय ६ (१२) मनयोग, वचनयोग, काययोग ३। (१३) सागरोवउत्ता (साकार–उपयोग वाले), अणागारोवउता (अनाकार–उपयोग वाले) २ ।ये सब ३९ बोल हुए।

१–अहो भगवन्! रत्नप्रभानारकी के संख्याता योजन के नरकावासों में एक समय में क्या संख्याता नारक उपजते हैं या असंख्याता उपजते हैं? हे गौतम! संख्याता योजन के नरकावासों में जघन्य १–२–३, उत्कृष्ट संख्याता उपजते हैं। अहो भगवन्!

* इस थोकड़े में नारकी देवता का ही विवेचन है, दूसरे दण्डकों का नहीं।

३–निकृति–दूसरों को ठगने की बुद्धि से उनका आदर–सन्मान करना, अथवा एक माया (कपट) को छिपाने के लिए दूसरी माया करना।

४–वलय–वक्रपने से चेष्टा करना, अथवा वक्र (बांके) वचन बोलना।

५–गहन–दूसरों को ठगने एवं धोखा देने की दृष्टि से समझ न सके, ऐसा शब्दजाल रचना।

६–नूम–दूसरों को ठगने के लिये अधम–से–अधम बर्ताव करना।

७–कल्क–हिंसाकारी उपायों से दूसरे को ठगना।

८–कुरूप–मायाविशेष करके भण्ड कुचेष्टा करना। निन्दनीय बर्ताव करना।

९–जिह्मता–दूसरों को ठगने के लिए धीरे–धीरे कार्य करना।

१०–किल्बिष–माया से इसी भव में किल्बिषीदेव सरीखा होना।

११–आदरणता–माया, कपटाई कर किसी का आदर करना, वह आदरणता। अथवा आचरणता–दूसरों को ठगने के लिए नाना प्रकार की क्रिया करना, वह आचरणता।

१२–गूहनता–अपने स्वरूप को छिपाना।

१३–वंचनता (वंचकता)–दूसरों को ठगना।

१४–प्रतिकुंचनता–दूसरे के द्वारा सरलभाव से कहे हुए वचन का खंडन करना।

१५–सातियोग–उत्तम द्रव्य में हीन द्रव्य अथवा खोटा द्रव्य मिलाना।

उपधि आदि माया के कार्य हैं। अथवा ये सब माया के एकार्थक नाम हैं।

(४) लोभ–लोभ का बंध कराने वाले कर्म को लोभ कहते हैं। लोभ के १६ नाम हैं—

असंख्याता योजन के नरकावासों में एक समय में क्या संख्याता नारक उपजते हैं या असंख्याता नारक उपजते हैं? हे गौतम! असंख्याता योजन के नरकावासों में जघन्य १–२–३, उत्कृष्ट असंख्याता नारक उपजते हैं। इसी तरह बाकी छहों नरकों में कह देना चाहिए।

२–अहो भगवन्! पहली, दूसरी नारकी में कापोत–लेश्या वाले कितने उपजते हैं? हे गौतम! जघन्य १–२–३, उत्कृष्ट संख्याता योजन के नरकावासों में संख्यात और असंख्याता योजन के नरकावासों में असंख्यात उपजते हैं*।

३–अहो भगवन्! नारकी में + कृष्णपक्षी उपजते हैं या × शुक्लपक्षी उपजते हैं ? हे गौतम! कृष्णपक्षी भी उपजते हैं और शुक्लपक्षी भी उपजते हैं।

४–अहो भगवन्! नारकी में क्या संज्ञी उपजते हैं या असंज्ञी उपजते हैं? हे गौतम! पहली नारकी में संज्ञी भी उपजते हैं और असंज्ञी भी उपजते हैं और शेष छहों नरकों में संज्ञी ही उपजते हैं।

५–अहो भगवन्! नारकी में क्या भवी उपजते हैं या अभवी उपजते हैं? हे गौतम! भवी भी उपजते हैं और अभवी भी उपजते हैं।

६–अहो भगवन्! नारकी में क्या मतिज्ञानी उपजते हैं या

---

* इसी तरह तीसरी नारकी में कापोत, नील लेश्या वाले और चौथी नारकी में नीललेश्या वाले और पांचवीं नारकी में नील कृष्ण लेश्या वाले और छठी, सातवीं नारकी में कृष्णलेश्या वाले कह देना चाहिए।

+ जिन जीवों का संसारपरिभ्रमण अर्द्धपुद्‌गलपरावर्तन से ज्यादा बाकी है, उनको कृष्णपक्षी कहते हैं।

× जिन जीवों का संसारपरिभ्रमण अर्द्धपुद्‌गलपरावर्तन तक बाकी है, उनको शुक्लपक्षी कहते हैं।

१–लोभ–लोभ का सामान्य नाम।

२–इच्छा–अभिलाषा।

३–मूर्च्छा–जो वस्तु प्राप्त हो चुकी है, उसकी रक्षा करने की निरन्तर अभिलाषा।

४–कांक्षा–जो वस्तु प्राप्त नहीं हुई है, उसको प्राप्त करने की इच्छा करना।

५–गृद्धि–प्राप्त वस्तु में आसक्तिभाव।

६–तृष्णा–अतृप्ति अर्थात् अधिकाधिक वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा तथा प्राप्त वस्तु कभी नष्ट न हो, ऐसी इच्छा रखना।

७–भिध्या–विषयों का ध्यान रखना, एकाग्रता।

८–अभिध्या–अदृढ़ आग्रह अर्थात् चलायमान चित्त की स्थिति, अपने निश्चय से डिग जाना*।

९–आशंसना–अपनी इष्ट वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करना।

१०–प्रार्थना–दूसरे के लिए इष्ट वस्तु की मांगणी करना।

११–लालपनता–अपनी इष्ट वस्तु को मांगने के लिए दूसरों की खुशामद करना, चापलूसी करना, अत्यन्त बोल कर प्रार्थना करना।

१२–कामाशा–इष्ट रूप और शब्द की प्राप्ति की इच्छा करना।

१३–भोगाशा–इष्ट गन्धादि की प्राप्ति की इच्छा करना।

१४–जीविताशा–जीने की अभिलाषा करना।

१५–मरणाशा–विपत्ति के समय मरने की अभिलाषा करना।

---

* प्रतिज्ञा करके दृढ़ न रहना।

श्रुतज्ञानी उपजते हैं या अवधिज्ञानी उपजते हैं या मति–अज्ञानी उपजते हैं या श्रुत–अज्ञानी उपजते हैं या विभंगज्ञानी उपजते हैं? हे गौतम! पहली से छठी नारकी तक मतिज्ञानी आदि ३ ज्ञान वाले और मति–अज्ञान आदि ३ अज्ञान वाले उपजते हैं और सातवीं नारकी में सिर्फ ३ अज्ञान वाले ही उपजते हैं।

७–अहो भगवन्! नारकी में क्या चक्षुदर्शनी उपजते हैं या अचक्षुदर्शनी उपजते हैं या अवधिदर्शनी उपजते हैं? हे गौतम! *अचक्षुदर्शनी उपजते हैं, अवधिदर्शनी उपजते हैं किन्तु चक्षुदर्शनी नहीं उपजते।

८–अहो भगवन्! नारकी में क्या आहारसंज्ञी उपजते हैं या भयसंज्ञी उपजते हैं या मैथुनसंज्ञी उपजते हैं या परिग्रहसंज्ञी उपजते हैं? हे गौतम! चारों ही संज्ञा वाले उपजते हैं।

९–अहो भगवन्! नारकी में क्या स्त्रीवेदी उपजते हैं या पुरुषदेवी उपजते हैं या नपुंसकवेदी उपजते हैं? हे गौतम! नपुंसकवेदी उपजते हैं, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी नहीं उपजते।

१०–अहो भगवन्! नारकी में क्या क्रोधी उपजते हैं या मानी उपजते हैं या मायी उपजते हैं या लोभी उपजते हैं? हे गौतम! क्रोध आदि चारों ही कषाय वाले उपजते हैं।

११–अहो भगवन्! नारकी में क्या पांच इन्द्रिय सहित उपजते हैं या नोइन्द्रिय उपजते हैं? हे गौतम!×नोइन्द्रिय उपयोग

*इन्द्रिय और मन के सिवाय सामान्य उपयोग मात्र को भी अचक्षुदर्शन कहते हैं। उत्पत्ति के समय सामान्य उपयोग रूप अचक्षुदर्शन होता है। इसलिए उत्तर में कहा गया है कि अचक्षुदर्शनी उत्पन्न होते हैं।

× नोइन्द्रिय अर्थात् मन। यद्यपि अपर्याप्त अवस्था में मनपर्याप्ति का अभाव होने से द्रव्यमन नहीं होता तथापि चैतन्य रूप भावमन हमेशा होता है। इसलिये यहाँ उत्तर में कहा गया है कि नोइन्द्रिय उपयोग वाले उत्पन्न होते हैं।

१६–नन्दिराग–अपने पास रही हुई ऋद्धि पर राग करना।

इच्छा आदि सब लोभ के कार्य हैं। अथवा ये सब लोभ के एकार्थक नाम हैं। इन क्रोधादि ५३ ही बोलों में ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ४ स्पर्श हैं।

१७. आत्मा का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बारहवां, उद्देशा दसवां)

१.नामद्वार, २. अर्थद्वार, ३. परस्पर सम्बन्धद्वार, ४. भांगाद्वार, ५. अल्पबहुत्वद्वार।

१. नामद्वार–× आत्मा के आठ भेद हैं–१ द्रव्य–आत्मा २ कषाय–आत्मा ३ योग–आत्मा ४ उपयोग–आत्मा ५ ज्ञान–आत्मा ६ दर्शन–आत्मा ७ चारित्र–आत्मा ८ वीर्य–आत्मा।

२. अर्थद्वार–१ जो त्रिकालवर्ती आत्मद्रव्य है, उसको द्रव्यात्मा कहते हैं। यह आत्मा सब जीवों के होती है। २ क्रोध, मान आदि कषाय युक्त आत्मा को कषाय–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सकषायी जीवों के होती है। उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय जीवों के नहीं होती। ३–मन, वचन, काया के व्यापार वाले आत्मा को योग–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सयोगी जीवों के होती है। ४–साकार–उपयोग और अनाकार (निराकार)– उपयोग वाले आत्मा को उपयोग–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सिद्ध और संसारी सभी जीवों के होती है। ५–विशेष सम्यग्ज्ञानयुक्त आत्मा को ज्ञान–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा समदृष्टि जीवों के होती है। ६–सामान्य ज्ञानयुक्त

× उपयोग लक्षण आत्मा का सब जीवों में एक ही प्रकार का है, परन्तु कुछ विशेषताओं के कारण आत्मा के आठ भेद कहे गये हैं।

वाले उपजते हैं, किन्तु पांच द्रव्य इन्द्रियों सहित नहीं उपजते।

१२—अहो भगवन्! नारकी में क्या मनयोगी उपजते हैं या वचनयोगी उपजते हैं या काययोगी उपजते हैं? हे गौतम! काययोगी उपजते हैं, मनयोगी, वचनयोगी नहीं उपजते।

१३—अहो भगवन्! नारकी में क्या सागारोवउत्ता (साकार–उपयोग वाले) उपजते हैं या अणागारोवउत्ता (अनाकार– उपयोग वाले) उपजते हैं? हे गौतम! सागारोवउत्ता भी उपजते हैं और अणागारोवउत्ता भी उपजते हैं। उपरोक्त १३ ही द्वारों में जघन्य १–२–३, उत्कृष्ट संख्याता योजन के नरकावासों में संख्याता उपजते हैं और असंख्याता योजन के नरकावासों में असंख्याता उपजते हैं।

१४—इन ३९ बोलों में से उपजने संबंधी भजना——

पहली नारकी में २९ बोल की भजना, १० बोल नहीं उपजते (चक्षुदर्शनी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, पांच इन्द्रियों सहित, मनयोगी, वचनयोगी = १०)। दूसरी नारकी से छठी नारकी तक २८ बोल की भजना, ११ बोल नहीं उपजते (१० बोल तो पहली नारकीवत् और १ असन्नी)। सातवीं नारकी में २५ बोल की भजना, १४ बोल नहीं उपजते (११ बोल दूसरी नारकीवत् और ३ ज्ञान = १४)।

भवनपति और वाणव्यन्तर में ३० बोल की भजना, ९ बोल नहीं उपजते (चक्षुदर्शनी, नपुंसकवेदी, पांच इन्द्रियों सहित, मनयोगी, वचनयोगी = ९)।

ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक में २९ बोल की भजना, १० बोल नहीं उपजते (९ बोल भवनपतिवत् और १ असन्नी)। तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक २८ बोल की भजना, ११ बोल नहीं उपजते (१० बोल दूसरे देवलोकवत्, १

आत्मा को दर्शन–आत्मा कहते हैं, यह आत्मा सब जीवों के होती है। ७–विरति (चारित्र) युक्त आत्मा को चारित्र–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा चारित्रवान् जीवों के होती है। ८– +करणवीर्य युक्त आत्मा को वीर्य–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सब संसारी जीवों के होती है।

३. परस्परसम्बन्धद्वार–द्रव्य–आत्मा में कषाय–आत्मा की भजना,* कषाय–आत्मा में द्रव्य–आत्मा की नियमा × २–द्रव्य–आत्मा में योग–आत्मा की भजना, योग–आत्मा में द्रव्य– आत्मा की नियमा। ३–द्रव्य–आत्मा में उपयोग–आत्मा की नियमा, उपयोग–आत्मा में द्रव्य–आत्मा की नियमा। ४–द्रव्य–आत्मा में ज्ञान–आत्मा की भजना, ज्ञान–आत्म में द्रव्य–आत्मा की नियमा। ५–द्रव्य–आत्मा में दर्शन–आत्मा की नियमा, दर्शन–आत्मा में द्रव्य–आत्मा की नियमा, । ६–द्रव्य–आत्मा में चारित्र–आत्मा की भजना, चारित्र–आत्मा में द्रव्य–आत्मा की नियमा। ७–द्रव्य–आत्मा में वीर्य–आत्मा की भजना, वीर्य–आत्मा में द्रव्य–आत्मा की नियमा।

१–कषाय–आत्मा में योग–आत्मा की नियमा, योग–आत्मा में कषाय–आत्मा की भजना। २–कषाय–आत्मा में उपयोग–आत्मा की नियमा, उपयोग–आत्मा में कषाय–आत्मा की भजना। ३–कषाय–आत्मा में ज्ञान–आत्मा की भजना, ज्ञान–आत्मा में

+ वीर्य दो प्रकार का होता है—१ करणवीर्य और लब्धिवीर्य। वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम वाले आत्मा को जो वीर्य की लब्धि होती है यानी उसमें शक्तिरूप से जो वीर्य रहता है, उसे लब्धिवीर्य कहते हैं।
लब्धिवीर्य के कारण जो उत्थान, बल, पुरुषाकारपराक्रम होती है, उसे करणवीर्य कहते हैं।

* भजना का अर्थ है विकल्प अर्थात् हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है।

× नियमा का अर्थ निश्चित अर्थात् निश्चित रूप से होती ही है।

स्त्रीवेदी = ११) * नवमें देवलोक से नव ग्रैवेयक तक २८ बोल की भजना, ११ बोल नहीं उपजते (आठवें देवलोकवत्)। पांच अनुत्तर विमानों में २३ बोल की भजना, १६ बोल नहीं उपजते (११ बोल आठवें देवलोकवत् और कृष्णपक्षी, अभवी, मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी, विभंगज्ञानी = १६)।

१५–इन ३९ बोलों में से + उवटने (उद्वर्तन निकलना) और×चवने (च्यवन) आसरी भजना के बोल–

पहली नारकी से तीसरी नारकी तक उवटने में २९ बोलों की भजना, १० बोल नहीं उवटते (१ असंज्ञी, १ विभंगज्ञान, १ चक्षुदर्शन, ५ इन्द्रियां, १ मनयोग, १ वचनयोग), अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी संख्याता उवटते हैं। चौथी नारकी से छठी नारकी तक उवटने में २७ बोल की भजना, १२ बोल नहीं उवटते (१० बोल तीसरी नारकीवत् और अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी)। सातवीं नरक से उवटने में २५ बोल की भजना, १४ बोल नहीं उवटते (१२ बोल छठी नारकीवत् और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान)।

भवनपति, वाणव्यन्तर से उवटने में, ज्योतिषी से चवने में

---

* नवमें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक जघन्य १–२–३, उत्कृष्ट संख्याता उपजते हैं।

+ नारकी में से तथा भवनपति, वाणव्यन्तर देवों में से निकल कर मनुष्य और तिर्यंच गति में जाने को उवटना (उद्वर्तन) कहते हैं।

× ज्योतिषी और वैमानिक देवों में से निकल कर मनुष्य और तिर्यंच गति में जाने को च्यवन कहते हैं।

कोई भी जीव नारकी में से निकल वापिस नारकी में तथा देवों में उत्पन्न नहीं होता। इसी तरह कोई भी जीव देवों में से निकल कर वापिस देवों में तथा नारकी में उत्पन्न नहीं होता। नारकी और देवता में से निकले हुए जीव मनुष्य या तिर्यंच में ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य या तिर्यंच का भव करके फिर वापिस नारकी या देवता में जा सकते हैं।

१६–नन्दिराग–अपने पास रही हुई ऋद्धि पर राग करना।

इच्छा आदि सब लोभ के कार्य हैं। अथवा ये सब लोभ के एकार्थक नाम हैं। इन क्रोधादि ५३ ही बोलों में ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ४ स्पर्श हैं।

१७. आत्मा का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बारहवां, उद्देशा दसवां)

१.नामद्वार, २. अर्थद्वार, ३. परस्पर सम्बन्धद्वार, ४. भांगाद्वार, ५. अल्पबहुत्वद्वार।

१. नामद्वार–× आत्मा के आठ भेद हैं–१ द्रव्य–आत्मा २ कषाय–आत्मा ३ योग–आत्मा ४ उपयोग–आत्मा ५ ज्ञान–आत्मा ६ दर्शन–आत्मा ७ चारित्र–आत्मा ८ वीर्य–आत्मा।

२. अर्थद्वार–१ जो त्रिकालवर्ती आत्मद्रव्य है, उसको द्रव्यात्मा कहते हैं। यह आत्मा सब जीवों के होती है। २ क्रोध, मान आदि कषाय युक्त आत्मा को कषाय–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सकषायी जीवों के होती है। उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय जीवों के नहीं होती। ३–मन, वचन, काया के व्यापार वाले आत्मा को योग–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सयोगी जीवों के होती है। ४–साकार–उपयोग और अनाकार (निराकार)– उपयोग वाले आत्मा को उपयोग–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सिद्ध और संसारी सभी जीवों के होती है। ५–विशेष सम्यग्ज्ञानयुक्त आत्मा को ज्ञान–आत्मा कहते हैं। यह आत्मा समदृष्टि जीवों के होती है। ६–सामान्य ज्ञानयुक्त

× उपयोग लक्षण आत्मा का सब जीवों में एक ही प्रकार का है, परन्तु कुछ विशेषताओं के कारण आत्मा के आठ भेद कहे गये हैं।

२८ बोल की भजना, ११ बोल नहीं उवटते (अवधिज्ञान, विभंगज्ञान, अवधिदर्शन, चक्षुदर्शन, पांच इन्द्रियां, मनयोग, वचनयोग)।

पहले, दूसरे देवलोक से चवने में ३० बोल की भजना, ९ बोल नहीं चवते (विभंगज्ञान, चक्षुदर्शन, ५ इन्द्रियों सहित मनयोग, वचनयोग)। अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी संख्याता चवते हैं।

तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक चवने में २९ बोल की भजना, १० बोल नहीं चवते (तीसरी नारकीवत्), अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी संख्याता चवते हैं।

नवमें देवलोक से नव ग्रैवेयक तक चवने में २९ बोल की भजना, १० बोल नहीं चवते (आठवां देवलोकवत्) सब संख्याते चवते हैं।

पांच अनुत्तर विमान से चवने में २५ बोल की भजना, १४ बोल नहीं चवते (कृष्णपक्षी, असंज्ञी, अभवी, मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शन, पांच इन्द्रियों सहित मनयोग, वचनयोग = १४)।

१६–सत्ता (सदा पावे) के ४९ बोल—उत्पन्न होने के ३९ कहे, उनमें १० बोल बढ़ गये (*अनन्तरोपपन्नक, परम्परोपपन्नक, अनन्तरावगाढ़, परम्परावगाढ़, अनन्तराहारक, परम्पराहारक, अनन्तरपर्यासक, परम्परपर्यासक, चरम, अचरम= १०) ३९+१० = ४९।

---

* जिनको उत्पन्न हुए अभी एक समय ही हुआ है, उनको अनन्तरोपपन्नक कहते हैं। जिनको उत्पन्न हुए एक समय से अधिक हो गया है यानी दो तीन समय हो गये हैं, उनको परम्परोपपन्नक कहते हैं।

जो नारकी जीव विवक्षित क्षेत्र में प्रथम समय में रहते हैं, उनको अनन्तरावगाढ़ कहते हैं। विवक्षित क्षेत्र में रहते हुए जिनको दो, तीन समय हो गये हैं, उनको परम्परावगाढ़ कहते हैं।

स्वरूप-विद्यमान हो, उसको आत्मा कहते हैं।

नोआत्मा किसे कहते हैं? जो परपर्यायों की अपेक्षा सत्स्वरूप-अविद्यमान हो, उसको नोआत्मा कहते हैं।

अवक्तव्य किसको कहते हैं? जो स्वपर्यायों की अपेक्षा त्स्वरूप है और परपर्यायों की अपेक्षा असत्स्वरूप है, ऐसा मेश्ररूप जो शब्दों से कहा नहीं जा सके, उसे अवक्तव्य कहते हैं।

इन तीनों आत्माओं के भांगे चलते हैं, सो कहते है-कुल भांगा २३-असंयोगी ३, दोसंयोगी १२, तीनसंयोगी ८। असंयोगी ३ भांगे-

१. आत्मा, २. नोआत्मा, ३. अवक्तव्य

दोसंयोगी १२ भांगे-

१. आत्मा एक, नोआत्मा एक,
२. आत्मा एक, नोआत्मा बहुत,
३. आत्मा बहुत, नोआत्मा एक,
४. आत्मा बहुत, नोआत्मा बहुत,
५. आत्मा एक, अवक्तव्य एक,
६. आत्मा एक, अवक्तव्य बहुत,
७. आत्मा बहुत, अवक्तव्य एक,
८. आत्मा बहुत, अवक्तव्य बहुत,
९. नोआत्मा एक, अवक्तव्य एक,
१०. नोआत्मा एक, अवक्तव्य बहुत,
११. नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य एक,
१२. नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य बहुत।

तीनसंयोगी ८ भांगे--

१ आत्मा एक, नोआत्मा एक, अवक्तव्य एक,
२. आत्मा एक, नोआत्मा एक, अवक्तव्य बहुत,
३. आत्मा एक, नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य एक,
४. आत्मा एक, नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य बहुत,
५. आत्मा बहुत, नोआत्मा एक, अवक्तव्य एक,
६. आत्मा बहुत, नोआत्मा एक, अवक्तव्य बहुत,

पहली नारकी में सत्ता की अपेक्षा ३८ बोलों की नियमा, ९ बोलों की भजना (असंज्ञी, मान, माया, लोभ, नोइन्द्रिय, अनन्तरोपपन्न, अनन्तरावगाढ़, अनन्तराहारक, अनन्तरपर्याप्ता = ९)। २ बोल नहीं (स्त्रीवेद, पुरुषवेद)। सभी बोलों के नैरयिक *असंख्यात पाये जाते हैं।

दूसरी नारकी से सातवीं नारकी तक सत्ता की अपेक्षा ३८ बोलों की नियमा, ८ बोल की भजना (पहली नारकी में ९ कहे उनमें

नरक में उत्पन्न होकर जिन्होंने अभी प्रथम समय में आहार लिया है, उनको अनन्तराहारक कहते हैं। जिनको आहार लेते हुए दो तीन समय हो गये हैं, उनको परम्पराहारक कहते हैं।

नरक में उत्पन्न होकर जिनको पर्याप्त हुए पहला ही समय हुआ है, उनको अनन्तरपर्याप्तक कहते हैं। जिनको पर्याप्तक हुए दो, तीन समय हो गये उनको परम्परपर्याप्तक कहते हैं।

जिन जीवों का वही अन्तिम नरकभव है अर्थात् जो अब नरकभव से निकल कर फिर कभी नरक में नहीं जावेंगे, उनको चरम कहते हैं, अथवा जो नरकभव के अन्तिम समय में रहे हुए हैं अर्थात् जो एक समय बाद ही नरकभव से निकलने वाले हैं, उनको चरम कहते है। चरम से जो विपरीत हों याने नरक के ज्यादा भव करेंगे उनको अचरम कहते हैं। नारकी की तरह ही सब ठिकानों में कह देना।

* संख्यात योजन के नरकावासों में संख्यात नैरयिक पाये जाते हैं और असंख्यात योजन के नरकावासों में असंख्यात नैरयिक पाये जाते हैं।

+जब असंज्ञी की भवनपति, वाणव्यन्तर में भजना बताई गई है तो फिर नपुंसकवेद भी उनमें संभव है। फिर नपुंसकवेद का निषेध क्यों किया? यह शंका हो सकती है। किंतु चूँकि असंज्ञी अवस्था थोड़े समय की –अन्तर्मुहूर्त मात्र की होती है इसलिये नपुंसकवेद की विवक्षा नहीं की गई है। भगवतीसूत्र ३० वें शतक, पहले उद्देशे में भी समदृष्टि विकलेन्द्रिय में क्रियावादी, विनयवादी होने का निषेध किया है, क्योंकि उनमें विशिष्ट सम्यक्त्व का अभाव है।

कषाय–आत्मा की भजना। ४–कषाय–आत्मा में दर्शन–आत्मा की नियमा, दर्शन–आत्मा में कषाय–आत्मा की भजना। ५–कषाय–आत्मा में चारित्र–आत्मा की भजना,चारित्र–आत्मा में कषाय–आत्मा की भजना। ६–कषाय–आत्मा में वीर्य–आत्मा की नियमा, वीर्य–आत्मा में कषाय–आत्मा की भजना।

योग–आत्मा में उपयोग–आत्मा की नियमा, उपयोग–आत्मा में योग–आत्मा की भजना। २–योग–आत्मा में ज्ञान–आत्मा की नियमा, ज्ञान–आत्मा में योग–आत्मा की भजना। ३–योग–आत्मा में दर्शन–आत्मा की नियमा, दर्शन–आत्मा में योग–आत्मा की भजना। ४–योग–आत्मा में चारित्र–आत्मा की भजना, चारित्र–आत्मा में योग–आत्मा की भजना। ५–योग–आत्मा में वीर्य–आत्मा की नियमा, वीर्य–आत्मा में योग–आत्मा की भजना।

उपयोग–आत्मा में ज्ञान–आत्मा की भजना, ज्ञान–आत्मा में उपयोग–आत्मा की नियमा। २–उपयोग–आत्मा में दर्शन –आत्मा की नियमा, दर्शन–आत्मा में उपयोग–आत्मा की नियमा। ३–उपयोग–आत्मा में चारित्र–आत्मा की भजना, चारित्र–आत्मा में उपयोग–आत्मा की नियमा। ४–उपयोग–आत्मा में वीर्य–आत्मा की भजना, वीर्य–आत्मा में उपयोग–आत्मा की नियमा।

ज्ञान–आत्मा में दर्शन–आत्मा की नियमा, दर्शन–आत्मा में ज्ञान–आत्मा की भजना। २–ज्ञान–आत्मा में चारित्र–आत्मा की भजना, चारित्र–आत्मा में ज्ञान–आत्मा की नियमा। ३–ज्ञान–आत्मा में वीर्य–आत्मा की भजना, वीर्य–आत्मा में ज्ञान–आत्मा की भजना।

दर्शन–आत्मा में चारित्र–आत्मा की भजना, चारित्र–आत्मा में दर्शन–आत्मा की नियमा। २–दर्शन–आत्मा में वीर्य–आत्मा की भजना, वीर्य–आत्मा में दर्शन–आत्मा की नियमा।

चारित्र–आत्मा में वीर्य–आत्मा की नियमा, वीर्य–आत्मा में चारित्र–आत्मा की भजना।

४–भांगाद्वार––दूसरी तरह से आत्मा के ३ भेद कहे गये हैं–१ आत्मा, २ नोआत्मा, ३ अवक्तव्य।

आत्मा किसको कहते हैं? जो अपनी पर्यायों की अपेक्षा

से एक असंज्ञी को छोड़ देना)। तीन बोल नहीं (असंज्ञी, स्त्रीवेद, पुरुषवेद) सभी बोलों के नैरयिक असंख्याता पाये जाते हैं।

भवनपति, वाणव्यन्तर में सत्ता संबंधी ३९ बोल की नियमा, ९ बोल की भजना (असंज्ञी, क्रोध, मान, माया, नोइन्द्रिय, अनन्तरोपपन्न, अनन्तरावगाढ़, अनन्तराहारक, अनन्तरपर्याप्त = ९)। एक बोल नहीं + (नपुंसकवेद)। सभी बोलों के देवता असंख्याता पाये जाते हैं।

ज्योतिषी, पहले, दूसरे देवलोक में सत्ता की अपेक्षा ३९ बोलों की नियमा, ८ बोलों की भजना (क्रोध, मान, माया, नोइन्द्रिय, अनन्तरोपपन्न, अनन्तरावगाढ़, अनन्तराहारक, अनन्तरपर्याप्ता = ८)। २ बोल नहीं (असंज्ञी, नपुंसकवेद)। सभी बोलों के देवता असंख्याता पाये जाते हैं।

तीसरे देवलोक से नव ग्रैवेयक तक सत्ता की अपेक्षा ३८ बोल की नियमा, ८ बोल की भजना (दूसरे देवलोकवत्)। ३ बोल नहीं (असंज्ञी, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद) सभी बोलों के देवता असंख्याता पाये जाते हैं।

चार अनुत्तर विमान में सत्ता की अपेक्षा ३३ बोलों की नियमा, ८ बोलों की भजना, (दूसरे देवलोकवत्), ८ बोल नहीं (कृष्णपक्षी, असंज्ञी, अभवी, मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान, विभंगज्ञान, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद)। सभी बोलों के देवता असंख्याता पाये जाते हैं।

सर्वार्थसिद्ध में सत्ता की अपेक्षा ३२ बोल की नियमा, ८ बोल की भजना (दूसरे देवलोकवत्), ९ बोल नहीं (८ बोल चार अनुत्तर विमानवत् और एक अचरम = ९)। सभी बोलों के देवता संख्याता पाये जाते हैं।

नोट–नारकी से लेकर आठवें देवलोक तक उपजने उवटने और चवने में जघन्य १–२–३, उत्कृष्ट संख्याता योजन के

सत्स्वरूप–विद्यमान हो, उसको आत्मा कहते हैं।

नोआत्मा किसे कहते हैं? जो परपर्यायों की अपेक्षा असत्स्वरूप–अविद्यमान हो, उसको नोआत्मा कहते हैं।

अवक्तव्य किसको कहते हैं? जो स्वपर्यायों की अपेक्षा सत्स्वरूप है और परपर्यायों की अपेक्षा असत्स्वरूप है, ऐसा मिश्ररूप जो शब्दों से कहा नहीं जा सके, उसे अवक्तव्य कहते हैं।

इन तीनों आत्माओं के भांगे चलते हैं, सो कहते है–कुल भांगा २३–असंयोगी ३, दोसंयोगी १२, तीनसंयोगी ८। असंयोगी ३ भांगे–

१. आत्मा, २. नोआत्मा, ३. अवक्तव्य

दोसंयोगी १२ भांगे–

१. आत्मा एक, नोआत्मा एक,
२. आत्मा एक, नोआत्मा बहुत,
३. आत्मा बहुत, नोआत्मा एक,
४. आत्मा बहुत, नोआत्मा बहुत,
५. आत्मा एक, अवक्तव्य एक,
६. आत्मा एक, अवक्तव्य बहुत,
७. आत्मा बहुत, अवक्तव्य एक,
८. आत्मा बहुत, अवक्तव्य बहुत,
९. नोआत्मा एक, अवक्तव्य एक,
१०. नोआत्मा एक, अवक्तव्य बहुत,
११. नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य एक,
१२. नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य बहुत।

तीनसंयोगी ८ भांगे––

१ आत्मा एक, नोआत्मा एक, अवक्तव्य एक,
२. आत्मा एक, नोआत्मा एक, अवक्तव्य बहुत,
३. आत्मा एक, नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य एक,
४. आत्मा एक, नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य बहुत,
५. आत्मा बहुत, नोआत्मा एक, अवक्तव्य एक,
६. आत्मा बहुत, नोआत्मा एक, अवक्तव्य बहुत,

वासों में (रहने के ठिकानों में) संख्याता और असंख्याता योजन के वासों में (रहने के ठिकानों में) असंख्याता कहना चाहिए। सत्ता में १–२–३ नहीं कहना चाहिए (संख्याता योजन के वासों में संख्याता कहना चाहिए और असंख्याता योजन के वासों में असंख्याता कहना चाहिये)। नवमें देवलोक से पांच अनुत्तरविमान तक उपजने और चवने में जघन्य १–२–३, उत्कृष्ट संख्याता और असंख्याता योजन के वासों में संख्याता कहना चाहिए। सत्ता में संख्याता योजन के वासों में संख्याता* कहना चाहिए और असंख्याता योजन के वासों में असंख्याता कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि १ नोइन्द्रिय (मन के उपयोग वाले), २ अनन्तरोपपन्नक, ३ अनंतरावगाढ, ४ अनन्तराहारक, ५ अनन्तरपर्याप्तक? ये ५ बोल जघन्य १–२–३, उत्कृष्ट संख्यात उपजते हैं और संख्यात चवते हैं और सत्ता में +संख्यात रहते हैं।

पहली नारकी से छठी नारकी तक और भवनपति से बारहवें देवलोक तक समदृष्टि और मिथ्यादृष्टि, ये दो दृष्टि वाले ही उत्पन्न होते हैं और ये दो दृष्टि वाले ही उवटते अथवा चवते हैं।

---

* सर्वार्थसिद्ध विमान लाख योजन का लम्बा चौड़ा होने से संख्याता योजन विस्तार वाला होता है।

+ नोइन्द्रिय (मन के उपयोग वाले), अनन्तरोपपन्नक, अनन्तरावगाढ़, अनन्तराहारक, अनन्तरपर्याप्तक, ये बोल नवमें देवलोक से पांच अनुत्तर विमान तक सत्ता की उपेक्षा तत्काल उत्पन्न हुए होने से और स्थिति थोड़ी होने से संख्याता सम्भव हैं। बहुत भगवतीजी सूत्र देखे लेकिन सत्ता की उपेक्षा संख्याता सिर्फ एक दो हस्तलिखित भगवतीजी में ही मिला बाकी सब में असंख्याता मिलता है। संख्याता ही ठीक मालूम होता है क्योंकि नवमें देवलोक से अनुत्तर विमान तक सन्नी मनुष्य के सिवाय कोई उत्पन्न होता नहीं, इस कारण प्रथम समय में संख्याता ही होते हैं। दूसरे तीसरे समय आदि में परम्पर हो जाते हैं, इस कारण से वहां संख्याता ही सम्भव होता है, तत्त्व केवलीगम्य।

७. आत्मा बहुत, नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य एक,

८. आत्मा बहुत, नोआत्मा बहुत, अवक्तव्य बहुत।

परमाणुपुद्गल में भांगा मिलते हैं ३ असंयोगी। दोप्रदेशी स्कन्ध में भांगा मिलते हैं ६, असंयोगी ३, दोसंयोगी ३ (१, ५, ९) *। तीनप्रदेशी स्कन्ध में भांगा मिलते हैं १३, असंयोगी ३, दोसंयोगी ९ (४,८,१२, चौथा, आठवां, बारहवां, ये तीन भांगे छोड़ कर बाकी ९ भांगे), तीनसंयोगी १ (पहला) भांगा पाया जाता है ×।

चारप्रदेशी स्कन्ध में भांगा मिलते हैं १९, असंयोगी ३, दोसंयोगी १२, तीनसंयोगी ४ (१,२,३,५)। पांचप्रदेशी स्कन्ध में भांगा मिलते है २२, असंयोगी ३, दोसंयोगी १२, तीनसंयोगी ७ (आठवां भांगा छोड़ कर बाकी ७ भांगे)। छहप्रदेशी स्कन्ध में भांगा मिलते हैं २३। इसी तरह सातप्रदेशी स्कन्ध में, आठप्रदेशी स्कन्ध में यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक तेईस--तेईस भांगे पाये जाते हैं।

---

* दोप्रदेशी स्कन्ध में ६ भांगे होते हैं। इनमें पहले के तीन भांगे सकल (सव) स्कन्ध की अपेक्षा से होते हैं। बाकी के तीन भांगे देश की अपेक्षा से होते हैं। द्विप्रदेशी स्कन्ध होने से उसके एक देश की स्वपर्याय के द्वारा सत्‌रूप विवक्षा की जाये और दूसरे देश की परपर्याय के द्वारा असत्‌रूप विवक्षा की जाये तो द्विप्रदेशी स्कनध में चौथा भांगा यानी दो संयोगी का पहला भांगा (कथंचित् आत्मा रूप और कथंचित् नोआत्मा रूप) पाया जाता है। जव द्विप्रदेशी स्कन्ध के एक देश की स्वपर्याय के द्वारा सत्‌रूप विवक्षा की जाये और दूसरे देश की सत् और असत् उभय रूप से विवक्षा की जाये तब पांचवां भांगा यानी दो संयोगी का पांचवां भांगा (कथंचित् आत्मा और कथंचित् अवक्तव्य) पाया जाता है। जव द्विप्रदेशी स्कन्ध के एक देश परपर्याय के द्वारा असत्‌रूप विवक्षा की जाये और दूसरे देश की उभयरूप विवक्षा की जाये तव छट्ठा भांगा याने दोसंयोगी का नववां भांगा (नोआत्मा और अवक्तव्य) पाया जाता है।

× तीनप्रदेशी स्कन्ध में १३ भांगे पाये जाते हैं। उनमें असंयोगी तीन भांगे सकल स्कन्ध की अपेक्षा से होते हैं। दोसंयोगी नौ भांगे–१–२–३–५–६–७–९–१०–११ (समुच्चय दोसंयोगी के १२ भांगों में से चौथा, आठवां, वारहवां ये तीन भांगे छोड़ कर) तीनसंयोगी – आत्मा एक, नोआत्मा एक, अवक्तव्य एक, यह भांगा पाया जाता है।

मिश्रदृष्टि वाले उपजते भी नहीं और उवटते अथवा चवते भी नहीं। सत्ता में समदृष्टि और मिथ्यादृष्टि पाये जाते हैं, मिश्रदृष्टि की भजना (कभी पाये जाते हैं और कभी नहीं पाये जाते हैं)। इसी तरह नव ग्रैवेयक तक कह देना। इतनी विशेषता है कि सत्ता में भी *मिश्रदृष्टि नहीं है।

सातवीं नारकी में मिथ्यादृष्टि ही उत्पन्न होते हैं और मिथ्यादृष्टि ही उद्वर्तते हैं। सम्यग्दृष्टि और मिश्रदृष्टि उत्पन्न नहीं होते हैं और उद्वर्तते नहीं हैं। सत्ता में समदृष्टि और मिथ्यादृष्टि ये दो दृष्टि वाले पाये जाते हैं, मिश्रदृष्टि की भजना।

पांच अनुत्तर विमान में समदृष्टि ही उत्पन्न होते हैं, समदृष्टि ही च्यवन को प्राप्त होते हैं और समदृष्टि ही सत्ता में रहते हैं। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि, ये दो दृष्टि वाले न तो उत्पन्न होते हैं, न च्यवन को प्राप्त होते हैं और न सत्ता में पाये जाते हैं।

१९. स्थितिद्वार

(पन्नवणासूत्र, चौथा पद)

इस थोकड़े में अधोलोक, तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक के जीवों की स्थिति का वर्णन है। पहले सामान्य रूप से जीवों की स्थिति बताकर बाद में उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद कर स्थिति का वर्णन किया गया है।

---

* श्री भगवतीजी सूत्र के तेरहवें शतक के दूसरे उद्देशे में दृष्टि के लिए नव ग्रैवेयक में असुरकुमार की भोलावन दी है किन्तु असुरकुमारों में तो तीनों ही दृष्टि पाई जाती हैं और नव ग्रैवेयक में दो ही दृष्टि पाई जाती हैं ऐसा श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र में और श्री पन्नवणा सूत्र के उन्नीसवें पद में कहा गया है। इसलिये ऐसा मालूम होता है कि श्री भगवतीसूत्र लिखनेवालों ने भोलावन तो दे दी है किन्तु 'नवरं' करके जो विशेषता बतलानी चाहिए थी, वह नहीं बतलाई, ऐसा संभव होता है। तत्त्व केवलीगम्य।

समुच्चय नैरयिकों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की है। अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है। पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की है।

रत्नप्रभा नारकी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की है। अपर्याप्त रत्नप्रभा नारकी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है। पर्याप्त रत्नप्रभा नारकी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक सागरोपम की है। शेष छह नारकी के नैरयिकों की स्थिति इस प्रकार है—

नाम	जघन्यस्थिति	उत्कृष्टस्थिति
१. शर्कराप्रभा	१. सागरोपम	३. सागरोपम
२. बालुकाप्रभा	३. सागरोपम	७. सागरोपम
३. पंकप्रभा	७. सागरोपम	१०. सागरोपम
४. धूमप्रभा	१०. सागरोपम	१७. सागरोपम
५. तमःप्रभा	१७. सागरोपम	२२. सागरोपम
६. तमस्तमप्रभा	२२. सागरोपम	३३. सागरोपम

इन छहों नारकी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है और पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति ऊपर बताई गई जघन्य, उत्कृष्ट स्थिति से अन्तर्मुहूर्त कम है। ये ८×३ = २४ आलापक हुए।

समुच्चय देवता की स्थिति नैरयिकों के समान ही है। समुच्चय देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ५५ पल्योपम की। अपर्याप्त देवियों की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। पर्याप्त देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष

जैसे एक जीव की स्थिति एक हजार वर्ष की है और दूसरे की तीन पल्योपम की है। चूंकि असंख्यात वर्षों का एक पल्योपम होता है इसलिए एक हजार वर्ष से पल्योपम असंख्यातगुण–अधिक है। अतः पहले जीव की स्थिति असंख्यातगुणहीन है और दूसरे की स्थिति असंख्यातगुण–अधिक है। जिन जीवों की स्थिति असंख्यात वर्षों की होती है उनकी स्थिति चतुः–स्थानपतित समझनी चाहिए।

षट्स्थानपतित–आगे वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के बीस बोलों के पर्याय की तथा बारह उपयोग के पर्याय की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहेंगे। षट्स्थानपतित का आशय अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन, अनन्तगुणहीन और अनन्तभाग–अधिक, असंख्यातभाग–अधिक, संख्यातभाग–अधिक, संख्यातगुण–अधिक, असंख्यातगुण–अधिक, अनन्तगुण–अधिक से है। काले वर्ण की अनन्त पर्यायों को असद्भूत स्थापना से दस हजार माना जाय और सर्व जीवों की अनन्त संख्या को सौ मानकर उसमें भाग दिया जाय तो भागफल सौ आवेगा। एक जीव के काले वर्ण की पर्याय दस हजार हैं और दूसरे जीव के काले वर्ण की पर्याय सौ कम यानी ९९०० हैं। चूंकि सर्व जीवों की अनन्त संख्या से भाग देने से भागफल सौ आया है, अतः यह सौ अनन्तवां भाग है। अतः ९९०० काले वर्ण की पर्याय वाला दस हजार काले वर्ण की पर्याय वाले की अपेक्षा अनन्तभागहीन है और दस हजार काले वर्ण की पर्याय वाला अनन्तभाग–अधिक है। इसी तरह काले वर्ण की पर्यायों को दस हजार मानें और लोकाकाश प्रदेशप्रमाण असंख्यात संख्या को पचास मान लें। दस हजार में पचास का भाग देने पर भागफल २०० प्राप्त हुआ। यह दो सौ असंख्यातवां भाग है। एक जीव की काले वर्ण की पर्याय २०० कम ९८०० हैं और दूसरे जीव की दस

की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम ५५ पल्योपम की। समुच्चय भवनपति देवता तथा असुरकुमार देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम से कुछ अधिक। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की। नागकुमार आदि शेष नव जाति के भवनपति देवता की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट कुछ कम एक पल्योपम की। इन सभी के अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है और पर्याप्त की स्थिति ऊपर जो जघन्य, उत्कृष्ट स्थिति बताई है, उससे अन्तर्मुहूर्त कम है। समुच्चय देवता, समुच्चय भवनपति, दस असुरकुमार, ये बारह और इन बारह की देवियां, ये २४, इनमें प्रत्येक के ३-३ आलापक होने से २४×३ = ७२ हुए।

समुच्चय पृथ्वीकाय और बादर पृथ्वीकाय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बावीस हजार वर्ष की। सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्त और सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है। पृथ्वीकाय के ९ आलापक हुए।

समुच्चय अप्काय और बादर अप्काय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है। समुच्चय तेजस्काय और बादर तेजस्काय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३ अहोरात्रि की है। समुच्चय वायुकाय और बादर वायुकाय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है। समुच्चय वनस्पति और बादर वनस्पति की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट

हजार पर्याय हैं। पहले जीव की पर्याय दूसरे जीव की अपेक्षा असंख्यातभागहीन हैं और दूसरे की पहले की अपेक्षा असंख्यातभाग–अधिक हैं।

काले वर्ण की अनन्त पर्यायों को ऊपर लिखे अनुसार दस हजार मान लें और उत्कृष्ट संख्यात संख्या को दस मान लें। दस हजार में दस का भाग देने पर भागफल १००० प्राप्त हुआ। यह एक हजार संख्यातवां भाग है। एक जीव की काले वर्ण की पर्याय हजार कम ९००० हैं और दूसरे की दस हजार हैं। अत: पहले जीव की काले वर्ण की पर्याय दूसरे की अपेक्षा संख्यातभागहीन हैं और दूसरे की संख्यातभाग–अधिक हैं।

ऊपर काले वर्ण की अनन्त पर्यायों को दस हजार माना है और उसमें सर्वजीव की अनन्त संख्या को सौ मान कर, लोकाकाश प्रदेशप्रमाण असंख्यात संख्या को पचास मानकर, उत्कृष्ट संख्यात को दस मानकर भाग दिया है और भागफल क्रमश: सौ, दो सौ और हजार आया है और सौ को अनन्तवां भाग, दो सौ को असंख्यातवां भाग और हजार को संख्यातवां भाग माना है। कल्पना करो एक जीव की काले वर्ण की पर्याय एक हजार हैं, दूसरे की दस हजार हैं। हजार को दस से गुणा करने पर दस हजार आता है, इसलिए हजार पर्याय वाला संख्यातगुणहीन और दस हजार पर्याय वाला संख्यातगुण–अधिक है। इसीतरह एक जीव की काले वर्ण की पर्याय दो सौ हैं और दूसरे की दस हजार हैं। दो सौ को पचास से गुणा करने पर दस हजार होते हैं, अत: पहले जीव की पर्याय दूसरे की अपेक्षा असंख्यातगुणहीन हैं और दूसरे की असंख्यातगुण–अधिक हैं। इसी प्रकार एक जीव की काले वर्ण की पर्याय सौ और दूसरे की दस हजार हैं। सर्व जीवों की अनन्त संख्या को सौ माना है। सौ को सौ से गुणा करने पर दस हजार होते हैं।

दस हजार वर्ष की है। इन सभी के अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है और इनके पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अपनी–अपनी स्थिति से अन्तर्मुहूर्त कम है।

सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेजस्काय, सूक्ष्म वायुकाय, सूक्ष्म वनस्पतिकाय की, इनके पर्याप्त की और इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है। अप्काय, तेजस्काय वायुकाय और वनस्पतिकाय के भी ऊपर लिखे अनुसार ९ आलापक हुए। इस प्रकार ५ स्थावर के ५×९ = ४५ आलापक हुए।

द्वीन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट बारह वर्ष की है। त्रीन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ४९ दिन की है। चतुरिन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट छह महीने की है।

तीन विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है। पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अपनी–अपनी स्थिति से अन्तर्मुहूर्त कम है। विकलेन्द्रिय के ३×३ = ९ आलापक हुए।

समुच्चय तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ३ पल्योपम की। तिर्यंचपंचेन्द्रिय के अपर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की है।

सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट करोड़ पूर्व की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम करोड़ पूर्व की। गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तीनों स्थिति समुच्चय तिर्यंचपंचेन्द्रिय के समान हैं। समुच्चय जलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट करोड़ पूर्व

अतः सौ पर्याय वाला दस हजार पर्याय वाले की अपेक्षा अनन्तगुणहीन है और दस हजार पर्याय वाला अनन्तगुण-अधिक है।

पर्याय दो तरह की हैं--जीवपर्याय और अजीवपर्याय। जीवपर्याय असंख्यात न होकर अनन्त हैं। क्योंकि तेईस दंडक के जीव असंख्यात हैं, वनस्पति के जीव अनन्त हैं और सिद्ध भगवान् अनन्त हैं।

नारकी के नैरयिकों की पर्याय संख्यात और असंख्यात न होकर अनन्त हैं। नारकी का एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित (चउट्ठाणवडिया) है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के बीस बोल की पर्याय की अपेक्षा एवं नौ उपयोग (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित (छट्ठाणवडिया) है। नारकी की तरह देवता के तेरह दण्डक और तिर्यंचपंचेन्द्रिय का १ दण्डक-ये चौदह दण्डक कहना चाहिए, किन्तु ज्योतिषी और वैमानिक देवों में स्थिति त्रिस्थानपतित (तिट्ठाणवडिया) कहनी चाहिए।

पृथ्वीकाय की पर्याय अनन्त हैं। एक पृथ्वीकाय दूसरी पृथ्वीकाय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा तथा तीन उपयोग (दो अज्ञान, एक दर्शन) की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। पृथ्वीकाय की तरह शेष चार स्थावर कहना चाहिए।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, इन तीन विकलेन्द्रिय की पर्याय भी अनन्त हैं। द्वीन्द्रिय द्वीन्द्रिय से, त्रीन्द्रिय त्रीन्द्रिय से, चतुरिन्द्रिय चतुरिन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा

की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम करोड़ पूर्व की। समुच्चय जलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह ही सम्मूर्छिम जलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय और गर्भज जलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तीन–तीन स्थिति कह देनी चाहिये।

समुच्चय चतुष्पद स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की। सम्मूर्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम चौरासी हजार वर्ष की। गर्भज चतुष्पद स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की है।

समुच्चय उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय तथा गर्भज उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तीनों स्थितियां जलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह कह देनी चाहिए। सम्मूर्छिम उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट त्रेपन हजार वर्ष की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम त्रेपन हजार वर्ष की है।

समुच्चय भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय तथा गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तीनों स्थितियां जलचर

तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पांच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा और चतुरिन्द्रिय छह उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

मनुष्य की पर्याय अनन्त हैं। मनुष्य, मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा तथा दस उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है तथा केवलज्ञान, केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।

जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि के बीस बोल तथा नौ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों की भी अनन्त पर्याय हैं। उत्कृष्ट अवगाहना वाला नैरयिक उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य, प्रदेश तथा अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा द्विस्थानपतित (दुट्ठाणवडिया) है, वर्णादि के बीस बोल तथा ९ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना वाले नैरयिकों की भी अनन्त पर्याय हैं। मध्यम अवगाहना वाला नैरयिक मध्यम अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि के बीस बोल और ९ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह ही हैं। सम्मूर्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट बयालीस हजार वर्ष की है। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बयालीस हजार वर्ष की है।

समुच्चय खेचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय तथा गर्भज खेचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की। सम्मूर्छिम खेचर तिर्यंचपंचेन्द्रिय की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बहत्तर हजार वर्ष की। उक्त प्रकार से तिर्यंचपंचेन्द्रिय के ६×९ = ५४ आलापक हुए।

मनुष्य की तथा गर्भज मनुष्य की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की। सम्मूर्छिम मनुष्य की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। सम्मूर्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं। मनुष्य के इस प्रकार ७ आलापक हुए।

व्यन्तर देवता की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की। इनके अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की। व्यन्तर देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट आधा पल्योपम

जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य स्थिति वाला नैरयिक जघन्य स्थिति वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के बीस बोल तथा ९ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिक भी इसी तरह कहना। मध्यम स्थिति वाले नैरयिक भी इसी तरह कहना, किन्तु स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना।

जघन्य गुण काले वर्ण वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य गुण काले वर्ण वाला नैरयिक जघन्य गुण काले वर्ण वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, जघन्य गुण काले वर्ण की पर्याय की अपेक्षा तुल्य है, शेष १९ वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा ९ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले नैरयिक भी इसी तरह कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाले नैरयिक भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि इनमें वर्णादि बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। जिस तरह काले वर्ण वाले नैरयिकों बाबत कहा, उसी तरह शेष १९ वर्णादि के नैरयिकों का भी कहना।

जघन्य मतिज्ञान वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य मतिज्ञान वाला नैरयिक, जघन्य मतिज्ञान वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि बीस बोल की पर्यायों तथा पांच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। मतिज्ञान की पर्याय की अपेक्षा तुल्य है। उत्कृष्ट

जघन्य एक पल्योपम की, उत्कृष्ट सात पल्योपम की। अपरिग्रहीता देवी की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की, उत्कृष्ट पचास पल्योपम की। देवियों के अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की और पर्याप्त की जघन्य, उत्कृष्ट स्थिति अपनी-अपनी स्थिति से अंतर्मुहूर्त कम है। पहले देवलोक के ४×३ = १२ आलापक हुए।

दूसरे देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य एक पल्योपम से अधिक, उत्कृष्ट दो सागरोपम से अधिक। दूसरे देवलोक के देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम से अधिक, उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की। परिग्रहीता देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम से अधिक, उत्कृष्ट नौ पल्योपम की। अपरिग्रहीता देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम से अधिक, उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की। दूसरे देवलोक के देवता और देवियों के अपर्याप्त की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की और पर्याप्त की जघन्य, उत्कृष्ट स्थिति अपनी-अपनी स्थिति से अंतर्मुहूर्त कम है। दूसरे देवलोक के ४×३ = १ आलापक हुए।

शेष वैमानिक देवों की स्थिति

नाम		जघन्यस्थिति		उत्कृष्टस्थिति	
तीसरे देवलोक के					
देवता की		दो सागरोपम		सात सागरोपम	
चौथे	"	दो सागरो० से अधिक,		सात सागरोपम अधिक	
पांचवें	"	सात सागरोपम		दस सागरोपम	
छठे	"	दस	"	चौदह	"
सातवें	"	चौदह	"	सतरह	"
आठवें	"	सतरह	"	अठारह	"
नवें	"	अठारह	"	उन्नीस	"
दसवें	"	उन्नीस	"	वीस	"

मतिज्ञान वाले भी इसी तरह कहना। मध्यम मतिज्ञान वाले भी इसी तरह कहना, परन्तु इनमें छह उपयोग की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञान की तरह श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और तीन अज्ञान भी कहना। जिनके ज्ञान हैं, उनके अज्ञान नहीं होते और जिनके अज्ञान हैं, उनके ज्ञान नहीं होते।

जघन्य चक्षुदर्शन वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य चक्षुदर्शन वाला नैरयिक, जघन्य चक्षुदर्शन वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा ८ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, चक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। इसी तरह उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाले कहना। मध्यम चक्षुदर्शन वाले भी इसी तरह कहना। इनमें ९ ही उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। चक्षुदर्शन की तरह अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन भी कहना। इस तरह नारकी के अवगाहना, स्थिति, वर्णादि २० बोल तथा ९ उपयोग, इन ३१ के जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम की अपेक्षा ३१×३ = ९३ आलापक हुए।

नैरयिकों की तरह दस भवनपति देव की पर्याय भी अनन्त हैं। द्रव्य, प्रदेश तथा जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि २० बोल तथा ९ उपयोग, सभी नैरयिकों की तरह कह देना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि उत्कृष्ट अवगाहना में स्थिति द्विस्थानपतित न कह कर चतुःस्थानपतित कहनी चाहिए। इस प्रकार भवनपति देवों के ९३×१० = ९३० आलापक हुए।

पृथ्वीकाय की पर्याय भी अनन्त हैं। जघन्य अवगाहना वाला पृथ्वीकाय का जीव, जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकाय के जीव से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की

ग्यारहवें देवलोक		बीस	सागरोपम	इक्कीस	सागरोपम
बारहवें	"	इक्कीस	"	बाईस	"
पहले ग्रैवेयक के देवता की		बाईस	"	तेईस	"
दूसरे	"	तेईस	"	चौबीस	"
तीसरे	"	चौबीस	"	पच्चीस	"
चौथे	"	पच्चीस	"	छब्बीस	"
पांचवें	"	छब्बीस	"	सत्ताईस	"
छठे	"	सत्ताईस	"	अट्ठाईस	"
सातवें	"	अट्ठाईस	"	उनतीस	"
आठवें	"	उनतीस	"	तीस	"
नवें	"	तीस	"	इकतीस	"

चार अनुत्तर विमान के देवता की स्थिति जघन्य इकतीस सागरोपम की, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की। सर्वार्थसिद्ध के देवता की स्थिति अजघन्य–अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की। तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक के देवताओं के अपर्याप्त की स्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की और पर्याप्त की जघन्य, उत्कृष्ट स्थिति उपरोक्त अपनी–अपनी स्थिति से अन्तर्मुहूर्त कम है। तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक २१×३ = ६३ आलापक हुए।

इस प्रकार २४+७२+४५+९+५४+७+६+३६+६+१२+१२+६३ = ३४६ आलापक हुए।

*****

अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि बीस बोलों की पर्यायों की अपेक्षा तथा तीन उपयोग (दो अज्ञान, अचक्षुदर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले पृथ्वीकाय के जीवों का भी इसी प्रकार कहना। मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकाय के जीवों के लिए भी इसी तरह कहना, सिर्फ अवगाहना चतुःस्थानपतित कहना।

जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकाय के जीव, जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकाय के जीव से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य हैं, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य हैं, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित हैं, स्थिति की अपेक्षा तुल्य हैं, वर्णादि २० बोलों की पर्याय तथा तीन उपयोग की पर्याय की अपेक्षा षट्स्थानपतित हैं। उत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकाय के जीव भी इसी प्रकार कहना। मध्यम स्थिति वाले पृथ्वीकाय के जीव भी इसी प्रकार कहना, सिर्फ स्थिति त्रिस्थानपतित कहनी चाहिए।

जघन्य गुण काले वर्ण का पृथ्वीकाय का जीव जघन्य गुण काले वर्ण के पृथ्वीकाय के जीव से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्णादि १९ बोल तथा तीन उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले पृथ्वीकाय के जीव भी कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाले पृथ्वीकाय के जीवों में वर्णादि बीस की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना, शेष जघन्य गुण काले वर्ण की तरह कह देना चाहिए। काले वर्ण की तरह शेष १९ वर्णादि के बोल कहना चाहिए।

जघन्य मति-अज्ञान वाला पृथ्वीकाय का जीव, जघन्य मति-अज्ञान वाले पृथ्वीकाय के जीव से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है

जैन स्तोक मंजूषा

भाग–६

१. जीवपर्याय का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, पांचवां पद)

इस थोकड़े में जीव की पर्याय, अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा एकस्थानपतित (एगट्ठाणवडिया), द्विस्थानपतित (दुट्ठाणवडिया), त्रिस्थानपतित (तिट्ठाणवडिया) और चतुःस्थानपतित (चउट्ठाणवडिया) बतलाई जाएगी एवं पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श, इन बीस बोल की अपेक्षा तथा बारह उपयोग की अपेक्षा षट्स्थानपतित (छट्ठाणवडिया) कही जाएगी। थोकड़े के प्रारम्भ में इनका खुलासा कर देने से पाठकों को समझने में सरलता होगी।

एकस्थानपतित---एकस्थानपतित का आशय यहां असंख्यातभागहीन और असंख्यातभाग–अधिक है। जैसे एक युगलिक की स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की है और दूसरे की तीन पल्योपम की है। अन्तर्मुहूर्त पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है। अतः पहले की स्थिति असंख्यातभागहीन है और दूसरे की स्थिति असंख्यातभाग–अधिक है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य की स्थिति एकस्थानपतित बतलाई जाएगी।

द्विस्थानपतित---द्विस्थानपतित का आशय यहां असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन और असंख्यातभाग– अधिक, संख्यातभाग–अधिक है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों की स्थिति द्विस्थानपतित आगे कहेंगे। जैसे एक नैरयिक की स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की है और दूसरे की स्थिति पूरे

और स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि २० बोलों की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, मति–अज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुत–अज्ञान और अचक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट मति –अज्ञान वाले पृथ्वीकाय के जीव के लिए भी इसी तरह कहना। मध्यम मति–अज्ञान वाले पृथ्वीकाय के जीव के लिए भी इसी तरह कहना चाहिए। फर्क यह है कि इसमें तीनों उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मति–अज्ञान वाले पृथ्वीकाय के जीव की तरह ही श्रुत–अज्ञान और अचक्षुदर्शन वाले पृथ्वीकाय के जीवों के भी जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम भेद कर वर्णन करना।

पृथ्वीकाय के अवगाहना, स्थिति, वर्णादि २० बोल और ३ उपयोग, ये २५ बोल के जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम की अपेक्षा २५×३ = ७५ आलापक हुए। पृथ्वीकाय की तरह ही शेष चार स्थावर भी कहना चाहिए। इस तरह पांच स्थावर के ५×७५ = ३७५ आलापक हुए।

द्वीन्द्रिय की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य अवगाहना वाला द्वीन्द्रिय, जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा तथा पांच उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, इतना फर्क है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले में ३ उपयोग कहना। मध्यम अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर केवल इतना है कि इनमें अवगाहना चतुःस्थानपतित कहनी चाहिए।

जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय, जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय

तेतीस सागरोपम की है। अन्तर्मुहूर्त तेतीस सागरोपम का असंख्यातवां भाग है, अतः पहले नैरयिक की स्थिति असंख्यातभागहीन और दूसरे की असंख्यातभाग– अधिक है। इसी प्रकार एक नैरयिक की स्थिति पल्योपम कम तेतीस सागरोपम की है और दूसरे की पूरे तेतीस सागरोपम की है। चूंकि पल्योपम सागरोपम का संख्यातवां भाग है अतः पहले नैरयिक की स्थिति संख्यातभागहीन और दूसरे की संख्यातभाग–अधिक हुई।

त्रिस्थानपतित––त्रिस्थानपतित का आशय यहां असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन तथा असंख्यातभाग–अधिक, संख्यातभाग–अधिक, संख्यातगुण–अधिक से है। आगे अवगाहना और स्थिति त्रिस्थान–पतित कहेंगे। जैसे एक जीव की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांचसौ धनुष की है और दूसरे की पांचसौ धनुष की है। अंगुल का असंख्यातवां भाग पांचसौ धनुष का असंख्यातवां भाग है। इसलिए पहले जीव की अवगाहना असंख्यातभागहीन है और दूसरे जीव की अवगाहना पहले की अपेक्षा असंख्यातभाग–अधिक है। इसीतरह एक जीव की अवगाहना एक धनुष कम पांचसौ धनुष की है और दूसरे की अवगाहना पांचसौ धनुष की है। एक धनुष, पांचसौ धनुष का संख्यातवां भाग है अतः पहले जीव की अवगाहना संख्यातभागहीन है और दूसरे की पहले की अपेक्षा संख्यातभाग–अधिक है। इसी तरह एक जीव की अवगाहना १२५ धनुष की है और दूसरे जीव की अवगाहना पांचसौ धनुष की है। सवासौ को चार से गुणा करने पर पांचसौ होते हैं। अतः पहले की अवगाहना संख्यातगुणहीन है और उसकी अपेक्षा दूसरे की अवगाहना संख्यातगुण–अधिक है।

स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित इस तरह समझना चाहिए। जैसे एक पृथ्वीकाय के जीव की स्थिति मुहूर्त के असंख्यातवें

से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि २० बोल की पर्यायों तथा तीन उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय भी कहना, अन्तर इतना है कि इनमें ५ उपयोग कहना। मध्यम स्थिति वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर इतना है कि इनमें स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना तथा इनमें ५ उपयोग कहना।

जघन्य गुण काले वर्ण वाला द्वीन्द्रिय, जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष १९ वर्णादि की पर्यायों तथा ५ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर यह है कि इनमें वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना।

जघन्य मतिज्ञान वाला द्वीन्द्रिय, जघन्य मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, मतिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान और अचक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। जघन्य मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय भी कहना। मध्यम मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य मतिज्ञान वाले

भाग कम बावीस हजार वर्ष की है और दूसरे की बावीस हजार वर्ष की है। यहां पहले जीव की स्थिति असंख्यातभागहीन है और उसकी अपेक्षा दूसरे की स्थिति असंख्यातभाग–अधिक है। इसी तरह एक पृथ्वीकाय के जीव की स्थिति मुहूर्त कम बावीस हजार वर्ष की है और दूसरे पृथ्वीकाय के जीव की बावीस हजार वर्ष की है। एक मुहूर्त बावीस हजार वर्ष का संख्यातवां भाग है। अतः पहले जीव की स्थिति संख्यातभागहीन और उसकी अपेक्षा दूसरे जीव की स्थिति संख्यातभाग–अधिक है। इसी प्रकार एक पृथ्वीकाय के जीव की स्थिति एक हजार वर्ष की है और दूसरे पृथ्वीकाय के जीव की स्थिति बावीस हजार वर्ष की है। एक हजार से बावीस हजार बावीस गुणा यानी संख्यातगुण–अधिक है। अतः पहले जीव की स्थिति संख्यातगुणहीन है और दूसरे जीव की स्थिति संख्यातगुण–अधिक है।

चतुःस्थानपतित–चतुःस्थानपतित का आशय यहां असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, असंख्यातगुणहीन, संख्यातगुणहीन तथा असंख्यातभाग–अधिक, संख्यातभाग—अधिक, असंख्यातगुण–अधिक, संख्यातगुण–अधिक से है। ऊपर जो त्रिस्थानपतित बताया है उससे चतुःस्थानपतित में असंख्यातगुणहीन और असंख्यातगुण–अधिक बढ़ा है। अतः यहां अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा असंख्यातगुणहीन और असंख्यातगुण–अधिक का उदाहरण दिया जाता है। जैसे एक जीव की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की है और दूसरे की अवगाहना एक अंगुल की है। अंगुल के असंख्यातवें भाग से अंगुल असंख्यातगुणा है। अतः पहले जीव की अवगाहना असंख्यातगुणहीन है और दूसरे जीव की अवगाहना असंख्यातगुण–अधिक है। इसी तरह स्थिति भी असंख्यातगुणहीन और असंख्यातगुण–अधिक समझनी चाहिए।

द्वीन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर इतना है कि तीनों उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह श्रुतज्ञान वाले द्वीन्द्रिय भी कहना। मतिज्ञान वाले, श्रुतज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह मति-अज्ञान वाले, श्रुत-अज्ञान वाले द्वीन्द्रिय भी कहना, सिर्फ ज्ञान की जगह अज्ञान कहना। अचक्षुदर्शन वाले द्वीन्द्रिय भी मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना। अन्तर इतना है कि जघन्य और उत्कृष्ट अचक्षुदर्शन वाले द्वीन्द्रिय अचक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य हैं और दो ज्ञान, दो अज्ञान इन चार उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित हैं तथा मध्यम अचक्षुदर्शन वाले पांच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित हैं। द्वीन्द्रिय के अवगाहना, स्थिति, वर्णादि २० तथा उपयोग ५, कुल २७ बोल के जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम की अपेक्षा २७×३ = ८१ आलापक हुए। द्वीन्द्रिय की तरह त्रीन्द्रिय भी कहना। इनके भी ८१ आलापक कहना। चतुरिन्द्रिय में चक्षुदर्शन अधिक है, इसलिए २८ बोल हुए। जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम के भेद से २८×३ = ८४ आलापक (भंग) हुए। विकलेन्द्रिय के कुल ८१+८१+८४ = २४६ (भंग) हुए।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य अवगाहना वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा और छह उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय में उपयोग ९ होते हैं, इन ९ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, शेष जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय के समान कहना। मध्यम अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय उत्कृष्ट

अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह कहना, इतना अन्तर है कि अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना।

जघन्य स्थिति वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय जघन्य स्थिति वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा और चार उपयोग (दो अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी जघन्य स्थिति वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह कहना, फर्क यह है कि इनमें छह उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो दर्शन) कहना। मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी जघन्य स्थिति वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना तथा नव उपयोग कहना।

जघन्य गुण काले वर्ण वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय जघन्य गुण काले वर्ण वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्णादि उन्नीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा तथा ९ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी जघन्य गुण काले वर्ण वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह कहना। इसी तरह मध्यम गुण काले वर्ण वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी कहना, अन्तर इतना है कि इनमें बीस वर्णादि की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। काले वर्ण वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह शेष १९ वर्णादि वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय कहना।

जघन्य मतिज्ञान वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय जघन्य मतिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा

अपेक्षा चतुःस्थानपतित, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित और वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित होता है। अनन्तप्रदेशी स्कंध अनन्तप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित और वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित होता है।

एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गल एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है और वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी प्रकार द्वि–आकाशप्रदेशावगाढ़ यावत् दस–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल भी कहने चाहिए। संख्यात–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल संख्यात–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है और वर्णादि के १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। असंख्यात–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल असंख्यात–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

एक समय की स्थिति वाला पुद्गल एक समय की स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा

चतुःस्थानपतित है, वर्णादि २०बोलों की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, मतिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, तीन उपयोग (श्रुतज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। जघन्य मतिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय कहना, अन्तर इतना है कि उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना तथा उत्कृष्ट मतिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य और शेष ५ उपयोग (श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मध्यम मतिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी जघन्य मतिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह कहना, इतना अन्तर है कि इनमें छह उपयोग की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह ही श्रुतज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय कहना। मतिज्ञान की जगह श्रुतज्ञान कहना।

जघन्य अवधिज्ञान वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय, जघन्य अवधिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, पांच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। अवधिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। जघन्य अवधिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह उत्कृष्ट अवधिज्ञान वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय कहना। मध्यम अवधिज्ञान वाले भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि इनमें छह उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी की तरह मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी कहना। अवधिज्ञानी की तरह विभंगज्ञानी कहना।

जघन्य चक्षुदर्शन वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय जघन्य चक्षुदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा

अवगाहना वाला दस प्रदेशी स्कंध मध्यम अवगाहना वाले दस प्रदेशी स्कंध से अवगाहना की अपेक्षा जब हीन होता है तो एक प्रदेशहीन, दो प्रदेशहीन, यावत् सात प्रदेशहीन होता है और जब अधिक होता है तो एक प्रदेश अधिक , दो प्रदेश अधिक यावत् सात प्रदेश अधिक होता है। जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध, जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है और वर्णादि के १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कंध की तरह उत्कृष्ट अवगाहना वाला संख्यात-प्रदेशी स्कंध भी कहना। मध्यम अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना, पर इतना अन्तर है कि अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित कहना।जघन्य अवगाहना वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट अवगाहना वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध भी कहना।मध्यम अवगाहना वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कह देना चाहिए। पर फर्क इतना है कि अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना। जघन्य अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध, जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के १६ बोल के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, इसी तरह उत्कृष्ट अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध भी कह देना, किन्तु इतना अन्तर है कि स्थिति की अपेक्षा

तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा पांच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, चक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। जघन्य चक्षुदर्शन वाले की तरह उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी कहना, अन्तर इतना है कि उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय में आठ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मध्यम चक्षुदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी जघन्य चक्षुदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर इतना है कि इनमें ९ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। चक्षुदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह अचक्षुदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी कहना।

जघन्य अवधिदर्शन वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय जघन्य अवधिदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा और आठ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवधिदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। जघन्य अवधिदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह उत्कृष्ट अवधिदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी कहना। मध्यम अवधिदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी इसी तरह कहना, इतना अन्तर है कि मध्यम अवधिदर्शन वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय में नौ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। इस तरह अवगाहना, स्थिति, वर्णादि के बीस बोल और ९ उपयोग, इन ३१ बोल के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम के भेद से ३१×३ = ९३ भंग हुए।

मनुष्य की अनन्त पर्याय कही गई हैं। जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति

इतना है कि इसमें वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। काले वर्ण की तरह ही शेष १९ वर्णादि के बोल भी कहना।

जघन्य अवगाहना वाला द्विप्रदेशी स्कंध, जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाला द्विप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कह देना चाहिए। द्विप्रदेशी स्कंध की मध्यम अवगाहना नहीं होती, क्योंकि द्विप्रदेशी स्कंध की जघन्य अवगाहना एक आकाशप्रदेश की और उत्कृष्ट अवगाहना दो आकाशप्रदेश की होती है। इसकी बीच की कोई अवगाहना नहीं है। इसी तरह जघन्य अवगाहना वाला त्रिप्रदेशी स्कंध, उत्कृष्ट अवगाहना वाला त्रिप्रदेशी स्कंध तथा मध्यम अवगाहना वाला त्रिप्रदेशी स्कंध कह देना चाहिए। जघन्य अवगाहना वाला चतुःप्रदेशी स्कंध जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कंध की तरह कहना। उत्कृष्ट अवगाहना वाला चतुःप्रदेशी स्कंध उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कंध की तरह कहना। इसी तरह मध्यम अवगाहना वाला चतुःप्रदेशी स्कंध कहना। फर्क यह है कि इसमें अवगाहना की अपेक्षा कथंचित् हीन, कथंचित् तुल्य और कथंचित् अधिक कहना। जब हीन होता है तो एक प्रदेशहीन होता है और जब अधिक होता है तो एक प्रदेश अधिक होता है। इसी तरह जघन्य, उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंच प्रदेशी, छह प्रदेशी, सात प्रदेशी, आठ प्रदेशी, नौ प्रदेशी और दस प्रदेशी स्कंध कहना चाहिए। मध्यम अवगाहना वाले पंच प्रदेशी यावत् दस प्रदेशी स्कंध में अवगाहना की अपेक्षा एक-एक प्रदेश बढ़ने से क्रमशः दो, तीन, चार, पांच, छह और सात प्रदेश की हानि और वृद्धि कहनी चाहिए। जैसे-मध्यम

की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा आठ उपयोग (३ ज्ञान, २ अज्ञान और ३ दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा एकस्थानपतित कहना तथा ६ उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो दर्शन) कहना। मध्यम अवगाहना वाला मनुष्य, मध्यम अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा दस उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान, केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।

जघन्य स्थिति वाला मनुष्य जघन्य स्थिति वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, बीस वर्णादि की पर्यायों तथा चार उपयोग (दो अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाला मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर यह है कि छह उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मध्यम स्थिति वाला मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना तथा दस उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना और केवलज्ञान, केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य कहना।

जघन्य गुण काले वर्ण वाला मनुष्य जघन्य गुण काले वर्ण वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष १९

अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के सोलह बोल की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध भी कहना। मध्यम स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना चाहिए, पर इसमें स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना चाहिए। जघन्य स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध, जघन्य स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है और वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना। मध्यम स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना चाहिए। किन्तु इसमें स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना चाहिए। जघन्य स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध, जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना। मध्यम स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना चाहिए, पर इसमें स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना चाहिए।

जघन्य गुण काले वर्ण के परमाणुपुद्गल की अनन्त पर्याय हैं, क्योंकि जघन्य गुण काले वर्ण वाला पुद्गल जघन्य गुण काले वर्ण वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्याय की अपेक्षा तुल्य है, दो गंध, पांच रस और दो स्पर्श इन नौ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा दस उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान, केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। जघन्य गुण काले वर्ण वाले मनुष्य की तरह उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाला मनुष्य भी कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाला मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। काले वर्ण की तरह शेष १९ वर्णादि कहना।

जघन्य मतिज्ञान वाला मनुष्य जघन्य मतिज्ञान वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है। बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, मतिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, तीन उपयोग (श्रुतज्ञान और दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। जघन्य मतिज्ञान वाले मनुष्य की तरह उत्कृष्ट मतिज्ञान वाला मनुष्य कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना, तीन ज्ञान और तीन दर्शन, इन छह उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मध्यम अवधिज्ञान वाला मनुष्य भी उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले मनुष्य की तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना, सात उपयोग (चार ज्ञान, तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञान की तरह श्रुतज्ञान कह देना।

जघन्य अवधिज्ञान वाला मनुष्य जघन्य अवधिज्ञान वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, ६ उपयोग (तीन ज्ञान, तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा

तुल्य है। मध्यम अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि के २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

जघन्य स्थिति वाला परमाणुपुद्गल, जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट स्थिति वाले परमाणुपुद्गल भी कहना। मध्यम स्थिति वाले परमाणुपुद्गल भी इसी तरह कहना, किन्तु अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना। जघन्य स्थिति वाला द्विप्रदेशी स्कंध जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कंध से द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा कथंचित् हीन, कथंचित् तुल्य और कथंचित् अधिक है। जब हीन होता है तब एक प्रदेश हीन होता है और अधिक होता है तब एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के १६ बोल की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाला द्विप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना। मध्यम स्थिति वाला द्विप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना, पर इसमें स्थिति चतुःस्थानपतित कहना। इसी तरह त्रिप्रदेशी यावत् दसप्रदेशी स्कंध के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट तीन-तीन आलापक कह देने चाहिए। अन्तर इतना है कि अवगाहना में क्रमशः एक-एक प्रदेश बढ़ाना चाहिए यावत् दस- प्रदेशी में नौ प्रदेश अधिक, नौ प्रदेश हीन कहना चाहिए। जघन्य स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध, जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा द्विस्थानपतित है,

षट्स्थानपतित है। अवधिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। उत्कृष्ट अवधिज्ञान वाला मनुष्य भी जघन्य अवधिज्ञान वाले मनुष्य की तरह कहना। मध्यम अवधिज्ञान वाला मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर यह है कि अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना और ७ उपयोग (४ ज्ञान, ३ दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। अवधिज्ञान की तरह मनःपर्ययज्ञान भी कहना, अन्तर इतना है कि मध्यम मनःपर्ययज्ञान वाले मनुष्य में अवगाहना त्रिस्थानपतित कहना।

केवलज्ञानी मनुष्य केवलज्ञानी मनुष्य की अपेक्षा द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान, केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। मतिज्ञान की तरह मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान कहना। अवधिज्ञान की तरह विभंगज्ञान कहना, किन्तु मध्यम अवगाहना में त्रिस्थानपतित कहना।

जघन्य चक्षुदर्शन वाला मनुष्य जघन्य चक्षुदर्शन वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा पांच उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, अचक्षुदर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। चक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। इसी तरह उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाला मनुष्य कह देना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना और ९ उपयोग (चार ज्ञान, तीन अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना और चक्षुदर्शन की अपेक्षा तुल्य कहना। मध्यम चक्षुदर्शन वाला मनुष्य भी उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाले मनुष्य की तरह कहना, अन्तर

अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के सोलह बोल की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध भी कहना। मध्यम स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना चाहिए, पर इसमें स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना चाहिए। जघन्य स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध, जघन्य स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है और वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना। मध्यम स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना चाहिए। किन्तु इसमें स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना चाहिए। जघन्य स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध, जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना। मध्यम स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना चाहिए, पर इसमें स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना चाहिए।

जघन्य गुण काले वर्ण के परमाणुपुद्गल की अनन्त पर्याय हैं, क्योंकि जघन्य गुण काले वर्ण वाला पुद्गल जघन्य गुण काले वर्ण वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्याय की अपेक्षा तुल्य है, दो गंध, पांच रस और दो स्पर्श इन नौ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित और दस उपयोग (चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। चक्षुदर्शन की तरह ही अचक्षुदर्शन कहना।

जघन्य अवधिदर्शन वाला मनुष्य, जघन्य अवधिदर्शन वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा ९ उपयोग (चार ज्ञान, तीन अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है तथा अवधिदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। इसी तरह उत्कृष्ट अवधिदर्शन वाला मनुष्य कहना, मध्यम अवधिदर्शन वाला मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि इसमें स्थिति चतुःस्थानपतित कहना और दस उपयोग (४ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। केवलदर्शन केवलज्ञान की तरह कहना। इस प्रकार मनुष्य के अवगाहना, स्थिति, बीस वर्णादि और दस उपयोग, इन ३२ बोल के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम के भेद से ३२×३ = ९६ तथा केवलज्ञान, केवलदर्शन के दो कुल ९८ भंग हुए।

व्यंतर, असुरकुमार की तरह कहना चाहिए। ज्योतिषी और वैमानिक असुरकुमार की तरह कहना चाहिए, अन्तर यह है कि इनमें स्थिति त्रिस्थानपतित कहनी चाहिए। नैरयिक की तरह व्यंतर के ९३, ज्योतिषी के ९३ और वैमानिक के ९३ भंग होते हैं।

समुच्चय के २४, नरक के ९३, देवता के तेरह दण्डक के ९३×१३ = १२०९, तिर्यंचपंचेन्द्रिय के ९३, पांच स्थावर के ३७५, विकलेन्द्रिय के २४६ और मनुष्य के ९८, कुल २४+९३+१२०९+९३+३७५+२४६+९८=२१३८ आलापक (भंग) हुए।

उत्कृष्ट गुण काले वर्ण का परमाणुपुद्गल भी इसी तरह कहना। मध्यम गुण काले वर्ण का पुद्गल भी जघन्य गुण काले वर्ण वाले पुद्गल की तरह कहना, किन्तु इसमें काले वर्ण की पर्याय की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित कहना चाहिए। जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्विप्रदेशी स्कंध की भी अनन्त पर्याय हैं। क्योंकि जघन्य गुण काले वर्ण वाला द्विप्रदेशी स्कंध, जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्विप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा कथंचित् हीन, कथंचित् तुल्य और कथंचित् अधिक है। जब हीन होता है तो एक प्रदेश से हीन होता है और अधिक होता है तो एक प्रदेश से अधिक होता है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्याय की अपेक्षा तुल्य है और शेष वर्णादि १५ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाला द्विप्रदेशी स्कंध भी कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाला द्विप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना चाहिए, पर इसमें वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना चाहिए। इसी तरह जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम गुण काले वर्ण वाले त्रिप्रदेशी यावत् दसप्रदेशी स्कंध तक कहना चाहिए। इसमें अवगाहना में प्रदेशवृद्धि ऊपर बताए अनुसार कहनी चाहिए। यावत् दसप्रदेशी स्कंध में नौ प्रदेश हीन तथा नौ प्रदेश अधिक कहना चाहिए। जघन्य गुण काले वर्ण वाले संख्यातप्रदेशी स्कंध की अनन्त पर्याय हैं, क्योंकि जघन्य गुण काले वर्ण वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध, जघन्य गुण काले वर्ण वाले संख्यातप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्याय की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्णादि १५ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाला

२. अजीवपर्याय का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, पांचवां पद)

अजीव की पर्याय दो प्रकार की हैं--रूपी अजीव की पर्याय और अरूपी अजीव की पर्याय। अरूपी अजीव की पर्याय के दस भेद हैं--धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय का देश, धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय का देश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय, आकाशास्तिकाय का देश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश और अद्धासमय यानी काल। रूपी अजीव की पर्याय के चार भेद--स्कंध, स्कंध का देश, स्कंध का प्रदेश और परमाणुपुद्गल। यहां पर्याय और पर्यायी के अभेद की विवक्षा की गई है।

रूपी अजीव की पर्याय संख्यात, असंख्यात न होकर अनन्त कही गई हैं। क्योंकि अनन्त परमाणुपुद्गल हैं, अनन्त द्विप्रदेशी यावत् दसप्रदेशी स्कंध हैं, अनन्त संख्यातप्रदेशी स्कंध हैं, अनन्त असंख्यातप्रेदशी स्कंध हैं और अनन्त अनन्तप्रदेशी स्कंध हैं।

परमाणुपुद्गल की अनन्त पर्याय हैं। एक परमाणुपुद्गल दूसरे परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुः स्थानपतित है। पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, चार स्पर्श (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष) इन सोलह बोलों की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। एक द्विप्रदेशी स्कंध दूसरे द्विप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा कथंचित् हीन, कथंचित् तुल्य और कथंचित् अधिक होता है। द्विप्रदेशी स्कंध एक प्रदेशावगाढ़ और द्विप्रदेशावगाढ़ होते हैं। जब दोनों द्विप्रदेशी स्कंध द्विप्रदेशावगाढ़ अथवा एक प्रदेशावगाढ़ होते हैं तब अवगाहना में तुल्य होते हैं, किन्तु जब एक द्विप्रदेशी स्कंध एक प्रदेशावगाढ़

संख्यातप्रदेशी स्कंध कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाला संख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना चाहिए, किन्तु इसमें वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना चाहिए। जघन्य गुण काले वर्ण वाले असंख्यातप्रदेशी स्कंध की भी अनन्त पर्याय हैं, क्योंकि जघन्य गुण काले वर्ण वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध, जघन्य गुण काले वर्ण वाले असंख्यातप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्याय की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्णादि १५ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाला असंख्यातप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना, फर्क इतना है कि इसमें वर्णादि १६ बोल की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना चाहिए। जघन्य गुण काले वर्ण वाले अनन्तप्रदेशी स्कंध की अनन्त पर्याय हैं, क्योंकि जघन्य गुण काले वर्ण वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध, जघन्य गुण काले वर्ण वाले अनन्त प्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुः-स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्णादि १९ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाला अनन्तप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना, किन्तु इसमें वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना।

जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम गुण काले वर्ण वाले परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशी यावत् दसप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कंध की तरह जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम गुण नीले, लाल, पीले, सफेद वर्ण वाले, दुरभिगंध, सुरभिगंध वाले, तीखे, कड़वे, कषैले, खट्टे, मीठे रस वाले तथा चार

अपेक्षा चतुःस्थानपतित, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित और वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित होता है। अनन्तप्रदेशी स्कंध अनन्तप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित और वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित होता है।

एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गल एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है और वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी प्रकार द्वि–आकाशप्रदेशावगाढ़ यावत् दस–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल भी कहने चाहिए। संख्यात–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल संख्यात–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है और वर्णादि के १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। असंख्यात–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल असंख्यात–आकाशप्रदेशावगाढ़ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

एक समय की स्थिति वाला पुद्गल एक समय की स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य [illegible] की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा [illegible] है, [illegible] की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के बीस बो[illegible]

स्पर्श–शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श वाले परमाणुपुद्गल यावत् अनन्तप्रदेशी स्कंध कह देना चाहिए, अन्तर इतना है कि नीले, लाल, पीले और श्वेत वर्ण वाले परमाणुपुद्गल में अपने वर्ण के सिवा अन्य वर्ण नहीं कहना। सुरभिगंध वाले परमाणुपुद्गल में दुरभिगंध नहीं कहना, दुरभिगंध वाले परमाणुपुद्गल में सुरभिगंध नहीं कहना। इसी तरह तीखे, कड़वे आदि रस वाले परमाणुपुद्गल में अपने रस के सिवा अन्य रस नहीं कहना चाहिए। चार स्पर्श में से परमाणुपुद्गल में दो स्पर्श कहना।

जघन्य गुण कर्कश अनन्तप्रदेशी स्कंधों की अनन्त पर्याय हैं, क्योंकि जघन्य गुण कर्कश अनन्तप्रदेशी स्कंध, जघन्य गुण कर्कश अनन्त प्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि १९ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है एवं कर्कश स्पर्श की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। इसी तरह उत्कृष्ट गुण कर्कश अनन्तप्रदेशी स्कंध भी कहना। मध्यम गुण कर्कश अनन्तप्रदेशी स्कंध भी इसी तरह कहना, किन्तु इसमें वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मृदु, गुरु , लघु स्पर्श वाले अनन्तप्रदेशी स्कंध भी जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम के भेद से इसी तरह कह देना।

जघन्यप्रदेशी स्कंध (द्विप्रदेशी स्कंध) की अनन्त पर्याय हैं। क्योंकि जघन्यप्रदेशी स्कंध, जघन्यप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा कथंचित् हीन, कथंचित् तुल्य और कथंचित् अधिक है। जब हीन होता है तब एक प्रदेश हीन होता है और जब अधिक होता है तब एक प्रदेश अधिक होता है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि १६ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह

होता है और दूसरा द्विप्रदेशावगाढ़ होता है तब पहला अवगाहना में एकप्रदेशहीन होता है और दूसरा एकप्रदेश–अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है और वर्णादि सोलह बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह त्रिप्रदेशी स्कंध से लेकर दसप्रदेशी स्कंध तक कहना। केवल अवगाहना में अन्तर है। त्रिप्रदेशी स्कंध तीन आकाशप्रदेश में, दो आकाशप्रदेश में और एक आकाशप्रदेश में रह सकता है और क्रमशः त्रिप्रदेशावगाढ़, द्विप्रदेशावगाढ़ और एकप्रदेशावगाढ़ कहलाता है। जब दोनों त्रिप्रदेशी स्कंध त्रिप्रदेशावगाढ़, द्विप्रदेशावगाढ़ अथवा एकप्रदेशावगाढ़ होते हैं, तब अवगाहना में तुल्य होते हैं। जब एक त्रिप्रदेशी स्कंध त्रिप्रदेशावगाढ़ और दूसरा द्विप्रदेशावगाढ़ होता है अथवा एक द्विप्रदेशावगाढ़ होता है और दूसरा एकप्रदेशावगाढ़ होता है, तो पहला दूसरे की अपेक्षा एकप्रदेश–अधिक होता है और दूसरा पहले की अपेक्षा एकप्रदेशहीन होता है। जब एक त्रिप्रदेशी स्कंध त्रिप्रदेशावगाढ़ होता है और दूसरा एकप्रदेशावगाढ़ होता है, तब पहला दूसरे की अपेक्षा दो प्रदेश अधिक और दूसरा पहले की अपेक्षा दो प्रदेश हीन होता है। इसी तरह चतुःप्रदेशी स्कंध से लेकर दसप्रदेशी स्कंध तक तुल्य, हीन और अधिक कहने चाहिए। दसप्रदेशी स्कंध यदि हीन होता है तो एकप्रदेशहीन, दोप्रदेशहीन यावत् नौप्रदेशहीन होता है और यदि अधिक होता है तो एकप्रदेश–अधिक, दोप्रदेश–अधिक यावत् नौप्रदेश–अधिक होता है। संख्यातप्रदेशी स्कंध संख्यातप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य, प्रदेश की अपेक्षा द्विस्थानपतित, अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित और १६ वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित होता है। असंख्यातप्रदेशी स्कंध असंख्यातप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य, प्रदेश की

वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के १९ बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाला पुद्गल कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाला पुद्गल भी इसी तरह कहना, किन्तु इसमें वर्णादि २० बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना चाहिए। जिस तरह काले वर्ण का कहा, उसी तरह शेष वर्णादि १९ बोल कहना।

द्रव्य के १३, क्षेत्र के १२, काल के १२, भाव के २६०, अवगाहना के ३५, स्थिति के ३९, भाव के ६३६, द्रव्य के तीन, क्षेत्र के तीन, काल के तीन, भाव के साठ, कुल १०७६ आलापक हुए।

३. भाषा का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ११ वां पद)

यहां अठारह द्वारों से भाषा का वर्णन किया जाता है। अठारह द्वार---१. आदिद्वार, २. उत्पत्तिद्वार, ३. संस्थानद्वार, ४. पर्यवसित (पज्जवसिया) द्वार, ५. द्रव्यद्वार, ६. क्षेत्रद्वार, ७. कालद्वार, ८. भावद्वार, ९. दिशाद्वार, १०. स्थितिद्वार, ११. अन्तरद्वार, १२. ग्रहणद्वार, १३. निस्सरणद्वार, १४. ग्रहण-निस्सरणद्वार, १५. नामद्वार, १६. कारणद्वार, १७. पर्याप्तद्वार, १८. अल्पबहुत्वद्वार।

(१) आदिद्वार–भाषा की आदि जीव से है अर्थात् भाषा का मूल कारण जीव है। जीव के प्रयत्नविशेष के बिना बोध उत्पन्न करने वाली भाषा का होना संभव नहीं है।

(२) उत्पत्तिद्वार---भाषा की उत्पत्ति औदारिक, वैक्रिय

और आहारक शरीर से होती है।

(३) संस्थानद्वार—भाषा का संस्थान वज्र के आकार का है। लोक वज्र के संस्थान (आकार) वाला है। भाषा के द्रव्य भी सारे लोक में व्याप्त हैं। अतः भाषा भी वज्र के संस्थान वाली है।

(४) पर्यवसितद्वार—पर्यवसितद्वार का अर्थ है—भाषा का अवसान (अन्त) कहां होता है अर्थात् भाषा के पुद्गल कहां तक जाते हैं? भाषा के पुद्गल लोकान्त तक जाते हैं। आगे गति का आधारभूत धर्मास्तिकाय नहीं है, अतः भाषा के पुद्गलों का आगे जाना संभव नहीं है। विशिष्ट शक्तिसंपन्न पुरुष द्वारा बोले हुए भाषा के पुद्गल लोकान्त पर्यन्त जाते हैं, नहीं तो संख्यात, असंख्यात योजन तक जाकर नष्ट हो जाते हैं।

(५) द्रव्यद्वार—जीव भाषा रूप में अनन्त प्रदेशी पुद्गलस्कन्धों को ग्रहण करता है।

(६) क्षेत्रद्वार—क्षेत्र की अपेक्षा जीव असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ–रहे हुए पुद्गलस्कन्धों को ग्रहण करता है।

(७) कालद्वार—काल की अपेक्षा एक समय, दो समय यावत् दस समय, संख्यात समय, असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल भाषा रूप में ग्रहण किये जाते हैं।

(८) भावद्वार—भाव की अपेक्षा वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले पुद्गल भाषा रूप में ग्रहण किये जाते हैं। इस पर प्रश्न होता है कि यदि वर्ण वाले पुद्गल भाषा रूप में ग्रहण किये जाते हैं तो क्या एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले यावत् पांच वर्ण वाले पुद्गल भाषा रूप में ग्रहण किये जाते है? ग्रहणयोग्य द्रव्यों की अपेक्षा एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले यावत् पांच वर्ण वाले पुद्गल भी ग्रहण किये जाते हैं और ग्रहण किये हुए सभी द्रव्यों की अपेक्षा नियम पूर्वक पांचों वर्ण के—काले, नीले, लाल, पीले और सफेद वर्ण के पुद्गल ग्रहण

मत करो। १०. संशयकरणी—जो भाषा अनेक अर्थ वाली होने से श्रोता के मन में संशय उत्पन्न करती है, जैसे सेंधव लाओ। सेंधव शब्द लवण, वस्त्र, पुरुष और घोड़े के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस कारण श्रोता के मन में संशय उत्पन्न होता है कि इन चार वस्तुओं में से क्या लाने को कहा जा रहा है। ११. व्याकृत (वोगडा)—प्रकट, स्पष्ट अर्थ वाली भाषा। १२. अव्याकृता (अव्वोगडा)—जो भाषा गंभीर शब्द अर्थ वाली होने से स्पष्ट न हो।

समुच्चयभाषा के २० आलापक (भंग)—समुच्चय जीव और १९ दंडक। व्यवहारभाषा के २० आलापक—समुच्चय जीव और १९ दंडक। सत्यभाषा, असत्यभाषा और मिश्रभाषा, प्रत्येक के १७-१७ आलापक—समुच्चय जीव और १६ दंडक में पाये जाते। तीनों भाषा के १७×३ = ५१ आलापक हुए। एक जीव की अपेक्षा २०+२०+५१ = ९१ आलापक हुए और अनेक जीव की अपेक्षा १८२ आलापक हुए। दो सौ चालीस बोल भाषा रूप में ग्रहण करते हैं। इस तरह १८२×२४० = ४३६८० आलापक हुए।

(१६) कारणद्वार—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम, मोहनीयकर्म के उदय और वचनयोग से असत्यभाषा और मिश्रभाषा बोलते हैं। ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम और वचनयोग से सत्य और व्यवहार भाषा बोलते हैं। काययोग से भाषावर्गणा के पुद्गल ग्रहण कर वचनयोग से निकालते हैं।

(१७) पर्याप्तद्वार—भाषा दो तरह की होती है—पर्याप्त और अपर्याप्त। प्रतिनियत रूप से जिसका निश्चय हो सके, वह पर्याप्तभाषा है। सत्यभाषा और मृषाभाषा पर्याप्त है। जिसका प्रतिनियत रूप से निश्चय न हो सके, वह अपर्याप्तभाषा है। मिश्रभाषा और व्यवहारभाषा अपर्याप्तभाषा है।

किये जाते हैं। काले वर्ण वाले जो पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं, वे एक गुण काले यावत् अनन्त गुण काले होते हैं। इसी तरह नीले, लाल, पीले और सफेद वर्ण वाले पुद्गल भी एक गुण यावत् अनंत गुण नीले, लाल, पीले और सफेद होते हैं। इसी तरह दो गंध– सुरभिगंध व दुरभिगंध और पांच रस–तीखे, कड़वे, कषैले, खट्टे व मीठे रस वाले पुद्गलों के लिए भी कहना।

स्पर्श की अपेक्षा एक स्पर्श वाले पुद्गल भाषा रूप में ग्रहण नहीं किये जाते, किन्तु दो, तीन, चार, स्पर्श (उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष) वाले पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं। शेष चार स्पर्श वाले पुद्गल भाषा रूप में ग्रहण नहीं किये जाते। शीतस्पर्श वाले जो पुद्गल ग्रहण *किये जाते हैं, वे एक गुण शीत, दो गुण शीत यावत् अनंत गुण शीत* होते हैं। इसी तरह उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गल भी कह देना।

उक्त पुद्गलों में भी जो पुद्गल आत्मा से स्पृष्ट (स्पर्श किये हुए) होते हैं, उन्हें ग्रहण करते हैं, अस्पृष्ट को ग्रहण नहीं करते। स्पृष्ट पुद्गलों में भी जो आत्मप्रदेशों के साथ एक क्षेत्र में रहे हुए हैं, उन अवगाढ़ पुद्गलों को ग्रहण किया जाता है, अनवगाढ़ पुद्गलों को ग्रहण नहीं किया जाता। अवगाढ़ पुद्गलों में भी अनंतरावगाढ़ अव्यवहित (आंतरारहित) पुद्गलों को ग्रहण किया जाता है किन्तु परम्परावगाढ़ पुद्गल ग्रहण नहीं किये जाते। अनंतरावगाढ़ अणु (थोड़े प्रदेश वाले) और बादर (बहुत प्रदेश वाले) दोनों तरह के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं। ये अणु बादर पुद्गल ऊपर के, नीचे के और तिरछे के ग्रहण किये जाते हैं। ये द्रव्य अन्तर्मुहूर्त तक ग्रहणयोग्य होते हैं। इन्हें प्रथम, द्वितीय आदि समयों में तथा अन्त समय में भी ग्रहण किया जाता है। ये पुद्गल स्वविषय यानी श्रोत्रेन्द्रिय के विषय होने पर ग्रहण किये जाते हैं तथा आनुपूर्वी से यानी क्रम

(१८) अल्पबहुत्वद्वार—१. सबसे थोड़े सत्यभाषा बोलने वाले, २. मिश्रभाषा बोलने वाले असंख्यातगुणा, ३. असत्यभाषा बोलने वाले असंख्यातगुणा, ४. व्यवहारभाषा बोलने वाले असंख्यातगुणा, ५. अभाषक अनन्तगुणा।

४. लेश्या के १२४२ भंगों का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १७ वां पद, उद्देशा १)

आहार सम सरीरा, उस्सासे कम्म वन्न लेसासु।
सम वेयण सम किरिया, समाउया चेव बोद्धव्वा॥

यहां सम पद सबके साथ जोड़ना चाहिए, जैसे १. समआहार २. समशरीर, ३. समश्वासोच्छ्वास, ४. समकर्म ५. समवर्ण ६. समलेश्या, ७. समवेदना, ८. समक्रिया, ९. सम–आयुष्य। चौबीस दंडक में ये नौ द्वार बताये जाते हैं।

१.२.३—क्या नारकी के सभी नैरयिक सम–आहार वाले, समशरीर वाले और समश्वासोच्छ्वास वाले हैं? उत्तर—नारकी के नैरयिक सम–आहार वाले, समशरीर वाले समश्वासोच्छ्वास वाले नहीं हैं। नारकी के नैरयिक दो तरह के हैं—महाशरीर वाले और अल्पशरीर वाले। महाशरीर वाले नैरयिक बहुत पुद्गलों का आहार लेते हैं, बहुत पुद्गलों को पचाते हैं, बहुत पुद्गलों को श्वास रूप में लेते हैं और बहुत पुद्गलों को निःश्वास रूप में निकालते हैं। वे बार–बार आहार लेते हैं, बार–बार पचाते हैं, बार–बार श्वास लेते हैं और बार–बार निःश्वास निकालते हैं। अल्पशरीर वाले नैरयिक अल्प पुद्गलों का आहार लेते हैं, अल्प पुद्गल पचाते हैं, अल्प पुद्गलों को श्वास रूप में ग्रहण करते हैं और अल्प पुद्गल का निःश्वास रूप से छोड़ते हैं। वे कभी आहार लेते हैं, कभी आहार पचाते हैं, कभी श्वास लेते हैं और कभी निःश्वास छोड़ते हैं।

से ग्रहण किये जाते हैं, अर्थात् जो समीप होते हैं, उन्हें पहले व उनसे आगे के पुद्गलों को बाद में ग्रहण किया जाता है तथा नियम पूर्वक छहों दिशाओं से आये हुए पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं।

जीव जिन द्रव्यों को भाषा रूप में ग्रहण करता है, उन्हें सान्तर भी ग्रहण करता है और निरन्तर भी ग्रहण करता है। यह अन्तर जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट असंख्यात समय का होता है। जब निरन्तर ग्रहण करता है तो जघन्य दो समय, उत्कृष्ट असंख्यात समय तक प्रति समय बिना व्यवधान (अंतर) के लगातार ग्रहण करता है। भाषा रूप में ग्रहण किये हुए द्रव्यों को जीव सांतर निकालता है, निरन्तर नहीं निकालता। सान्तर भाषा पुद्गलों को निकालने वाला जीव पहले समय में ग्रहण करता है, दूसरे समय में निकालता है। इस तरह जघन्य दो समय के अन्तर से, उत्कृष्ट असंख्यात समय यानी अन्तर्मुहूर्त के अन्तर से निकालता है। भाषा रूप से ग्रहण किये हुए पुद्गल जीव भिन्न भी निकालता है व अभिन्न भी निकालता है। जो भिन्न निकालता है वे अनन्तगुणवृद्धि से बढ़ते हुए लोकान्त का स्पर्श करते हैं। जो अभिन्न निकालता है वे असंख्यात अवगाहनावर्गणा* तक जाकर भिन्न होते हैं और वे भिन्न हुए पुद्गल संख्यात योजन जाकर नष्ट होते हैं।

इस तरह द्रव्य का एक, क्षेत्र का एक, काल के बारह, वर्णादि के १६×१३ =२०८ और स्पृष्ट आदि अठारह (स्पृष्ट, अवगाढ़, अनन्तरावगाढ़, अणु, बादर, ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्दिशा के, आदि,मध्य, अन्त, आनुपूर्वी, नियम पूर्वक छह दिशा के, सान्तर ग्रहण, निरन्तर ग्रहण, सान्तर निकालना, भिन्न निकालना, अभिन्न

---

* एक–एक भाषाद्रव्य का असंख्य प्रदेशात्मक क्षेत्रविभाग अवगाहना कहलता है। अवगाहना का समुदाय अवगाहनावर्गणा है।

४.५.६–क्या सभी नैरयिकों के समान कर्म हैं, समान वर्ण है और समान लेश्या है? इसका उत्तर भी निषेध रूप है। नैरयिक दो तरह के होते हैं–पूर्वोत्पन्न (पहले उत्पन्न हुए) और पश्चादुत्पन्न (बाद में उत्पन्न हुए), पूर्वोत्पन्न नैरयिक अल्प कर्म वाले होते हैं, क्योंकि वे बहुत कर्म भोग चुके हैं। पश्चादुत्पन्न नैरयिक महाकर्म वाले होते हैं, क्योंकि उन्हें बहुत कर्म भोगने बाकी हैं। पूर्वोत्पन्न नैरयिक विशुद्ध वर्ण वाले हैं और पश्चादुत्पन्न नैरयिक अविशुद्ध वर्ण वाले हैं। इसी तरह पूर्वोत्पन्न नैरयिक विशुद्ध लेश्या वाले हैं और पश्चादुत्पन्न नैरयिक अविशुद्ध लेश्या वाले हैं।

७. क्या नैरयिक समवेदना वाले हैं? इस प्रश्न का उत्तर भी निषेध रूप है। नैरयिक संज्ञी और असंज्ञी के भेद से दो प्रकार के हैं। जो संज्ञी नैरयिक हैं वे महावेदना वाले हैं और जो असंज्ञी हैं वे अल्पवेदना वाले हैं।

८. क्या नैरयिक समक्रिया वाले हैं? उत्तर–नैरयिक समक्रिया वाले नहीं हैं। नैरयिक समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि के भेद से तीन प्रकार के हैं। समदृष्टि नैरयिक के चार क्रियाएं होती हैं–आरम्भिकी (आरम्भिया), परिग्रहिकी (परिग्गहिया), मायाप्रत्यया (मायावत्तिया), अप्रत्याख्यान (अपच्चक्खाण) क्रिया। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि नैरयिक के पांच क्रियाएं होती हैं–उक्त चार और मिथ्यादर्शनप्रत्यया (मिच्छादंसणवत्तिया)।

९. क्या नैरयिक सम–आयु वाले हैं? नहीं। नैरयिक चार प्रकार के हैं–१. समान आयु वाले साथ में उत्पन्न हुए, २. समान आयु वाले विषम (आगे–पीछे) उत्पन्न हुए, ३. विषम आयु वाले साथ में उत्पन्न हुए, ४. विषम आयु वाले विषम उत्पन्न हुए।

देवता के तेरह दंडक नारकी के नैरयिक की तरह कहना, किन्तु इनमें कर्म, वर्ण और लेश्या नैरयिकों से उलटी कहना। जैसे

निकालना) कुल २४० बोल हुए।

(९) दिशाद्वार–नियम पूर्वक छह दिशाओं से आए हुए पुद्गल भाषा रूप में ग्रहण किये जाते हैं।

(१०) स्थितिद्वार–भाषा की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है।

(११) अन्तरद्वार–भाषा का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

(१२) ग्रहणद्वार–जीव काययोग से भाषा के पुद्गल ग्रहण करता है।

(१३) निस्सरणद्वार–जीव वचनयोग से भाषा के पुद्गल निकालता है।

(१४) ग्रहण–निस्सरणद्वार–पहले समय में ग्रहण करता है, दूसरे और आगे के समयों में ग्रहण भी करता है, निकालता भी है और अन्त समय में सिर्फ निकालता ही है। इस प्रकार जघन्य दो समय, उत्कृष्ट असंख्यात समय प्रमाण अन्तर्मुहूर्त तक ग्रहण–निस्सरण करता है।

भाषा रूप से ग्रहण किये हुए पुद्गलों का भिन्न और अभिन्न निकालना कहा है।इनका भेद पांच प्रकार का होता है– १. खंडभेद, २. प्रतरभेद, ३. चूर्णिकाभेद, ४. अनुतटिकाभेद, ५. उत्करिकाभेद। १. खंडभेद–लोहा, तांबा, सीसा, चांदी, सोना आदि का खंड रूप से जो भेद होता है, वह खंडभेद है। २. प्रतरभेद–बांस, बेंत, बरू. केला और अभ्रक का प्रतर की तरह जो भेद होता है, वह प्रतरभेद है। ३. चूर्णिकाभेद–तिल, मूँग, उड़द, पीपल, मिर्च, सूँठ आदि का चूर्ण रूप से जो भेद होता है, वह चूर्णिकाभेद है। ४. अनुतटिकाभेद–कूप, नदी, तालाब, द्रह, बावड़ी, पुष्करिणी, सरोवर, सरोवरपंक्ति का अनुतटिका रूप से जो भेद होता है, वह

पूर्वोत्पन्न देवता महाकर्म वाले हैं, उन्होंने शुभकर्म भोग लिए हैं और उनके बहुत अशुभकर्म शेष रहे हैं और थोड़े समय में देवायु पूरी करके पृथ्वी आदि में उत्पन्न होने वाले हैं। पश्चादुत्पन्न अल्पकर्म वाले हैं। इसी तरह पूर्वोत्पन्न देवता अविशुद्धवर्ण वाले हैं और पश्चादुत्पन्न देवता विशुद्धवर्ण वाले हैं। पूर्वोत्पन्न देवता अविशुद्धलेश्या वाले हैं और पश्चादुत्पन्न देवता विशुद्धलेश्या वाले हैं। ज्योतिषी, वैमानिक में वेदनाद्वार इस तरह कहना–ज्योतिषी, वैमानिक के मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसम्यग्दृष्टि के भेद से दो–दो भेद हैं। मायीमिथ्यादृष्टि ज्योतिषी, वैमानिक के सातावेदनीय की अपेक्षा अल्पवेदना है और अमायीसम्यग्दृष्टि के सातावेदनीय की अपेक्षा महावेदना है।

पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय भी नैरयिक की तरह कहना। वेदना की अपेक्षा सरीखी वेदना वाले हैं, असंज्ञीभूत हैं, अव्यक्त वेदना वेदते हैं। क्रिया की अपेक्षा सभी मिथ्यादृष्टि हैं, इसलिए नियमपूर्वक पांच क्रिया वाले हैं।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय भी नैरयिक की तरह कहना। किन्तु क्रिया की अपेक्षा तिर्यंचपंचेन्द्रिय के तीन भेद हैं–सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि। सम्यग्दृष्टि के दो भेद–संयतासंयत और असंयत। संयतासंयत के तीन क्रियाएं होती हैं–आरम्भिकी, परिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। असंयत के मिथ्यादर्शनप्रत्यया के सिवाय चार क्रियाएं होती हैं। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि के पांच क्रियाएं होती हैं।

मनुष्य भी नैरयिक की तरह कहना, किन्तु आहार और क्रिया की अपेक्षा अन्तर है। आहार की अपेक्षा मनुष्य के दो भेद–महाशरीर और अल्पशरीर। जो महाशरीर हैं वे बहुत पुद्गलों का आहार लेते हैं, बहुत पुद्गल पचाते हैं, बहुत पुद्गल श्वास रूप में ग्रहण करते हैं और बहुत पुद्गल निःश्वास रूप से छोड़ते हैं। ये कभी आहार लेते हैं, कभी पचाते हैं, कभी श्वास रूप से पुद्गल ग्रहण

अनुतटिकाभेद है। ५. उत्करिकाभेद—मसूर, मूँग, उड़द, तिल की फली और एरण्डबीज—ये सूखने पर फट कर इनमें से दाने उछल कर बाहर निकलते हैं, यह उत्करिकाभेद है।

उक्त पांच प्रकार के भेद से भिन्न (अलग—अलग) हुए द्रव्यों का अल्पबहुत्व—(१) सब से थोड़े उत्करिकाभेद से भिन्न हुए द्रव्य, (२) अनुतटिकाभेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्तगुणा, (३) चूर्णिकाभेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्तगुणा, (४) प्रतरभेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्तगुणा, (५) खंडभेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्तगुणा।

(१५) नामद्वार—भाषा के चार भेद—१.सत्यभाषा, २. असत्यभाषा, ३. मिश्र (सत्यामृषा) भाषा, ४. व्यवहार (असत्यामृषा) भाषा।

सत्यभाषा के दस भेद—

जणवय सम्मत ठवणा, नामे रूवे पडुच्च सच्चे य।
ववहार भाव जोगे, दसमे ओवम्म सच्चे य॥

१. जनपदसत्य, २. सम्मतसत्य, ३. स्थापनासत्य, ४. नामसत्य, ५. रूपसत्य, ६. प्रतीत्यसत्य, ७. व्यवहारसत्य, ८. भावसत्य, ९. योगसत्य, १०. उपमासत्य।

१. जनपदसत्य—देशविशेष की अपेक्षा इष्ट अर्थ का ज्ञान कराने वाली, व्यवहार की हेतु रूप जो भाषा है, वह जनपदसत्य है। जैसे कोंकणदेश में पानी को 'पिच्च' कहते हैं।

२. सम्मतसत्य—सभी लोगों को सम्मत होने से जो सत्य रूप से प्रसिद्ध है, वह सम्मतसत्य है। जैसे पंकज शब्द का अर्थ कीचड़ से उत्पन्न होने वाला होता है। कीचड़ से कमल, कुमुद, शेवाल, मेंढक आदि उत्पन्न होते हैं, किन्तु कमल को ही पंकज कहते हैं, अन्य को नहीं।

३. स्थापनासत्य—सदृश अथवा विसदृश आकार वाली

करते हैं और कभी निःश्वास रूप से छोड़ते हैं। जो अल्प शरीर हैं, वे थोड़े पुद्गलों का आहार लेते हैं, थोड़े पुद्गल पचाते हैं, थोड़े पुद्गल श्वास रूप में ग्रहण करते हैं और थोड़े पुद्गल निःश्वास रूप से छोड़ते हैं। वे बार—बार आहार करते हैं, बार—बार पचाते हैं, बार—वार श्वास लेते हैं और बार—बार निःश्वास छोड़ते हैं। क्रिया की अपेक्षा मनुष्य के तीन भेद—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि। सम्यग्दृष्टि के तीन भेद—संयत, संयतासंयत और असंयत। संयत के दो भेद—सरागसंयत और वीतरागसंयत। वीतरागसंयत के पांचों क्रियाएं नहीं होतीं। सरागसंयत के दो भेद—प्रमादी, अप्रमादी। अप्रमादी के एक मायाप्रत्यया क्रिया होती है। प्रमादी के दो क्रियाएं—आरम्भिकी और मायाप्रत्यया होती हैं। संयतासंयत के तीन क्रियाएं होती है—आरम्भिकी, परिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। असंयत के मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया के सिवाय चार क्रियाएं होती हैं। मिश्रदृष्टि और मिथ्यादृष्टि के पांच क्रियाएं होती हैं। २४×९ = २१६। समुच्चय चौवीस दंडक के २१६ आलापक कहे, उसी तरह चौवीस दंडक में प्रत्येक के साथ 'सलेश्य' पद जोड़ कर २१६ आलापक कहना चाहिये।

कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या के २२ दंडक के २२×३×९ = ५९४ आलापक नैरयिक की तरह कहना। इतना अन्तर है कि नारकी में कृष्णलेश्या, नीललेश्या में वेदना की अपेक्षा संज्ञी, असंज्ञी भेद नहीं कर, अमायीसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि, ये दो भेद करना। मनुष्य में क्रिया की अपेक्षा तीन भेद कहना—संयत, संयतासंयत और असंयत। संयत के दो क्रियाएं होती हैं—आरम्भिकी और मायाप्रत्यया। संयतासंयत के तीन क्रियाएं होती हैं—आरम्भिकी, परिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। असंयत के मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया के सिवाय चार क्रियाएं होती हैं।

वस्तु में वस्तुविशेष की स्थापना करके उसे उस नाम से कहना स्थापनासत्य है। जैसे शतरंज के मोहरों को हाथी, घोड़ा, ऊँट आदि कहना। विशेष प्रकार से अङ्क लिखकर उसमें संख्याविशेष का आरोप करना भी स्थापनासत्य है। जैसे एक अङ्क के आगे दो शून्य रखने पर सौ की संख्या मानना, तीन शून्य रखने पर हजार की संख्या मानना। स्थापनासत्य के सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना के भेद से दो भेद हैं। जिसकी स्थापना करनी है, उसकी आकृति बना उसमें उसकी स्थापना करना सद्भावस्थापना है, जैसे चारभुजा की मूर्ति में चार भुजा की स्थापना कर उसे चारभुजा कहना। आकार आदि की अपेक्षा न कर जिस किसी वस्तु में वस्तुविशेष की स्थापना करना, असद्भावस्थापना है। जैसे पांच पचेटा (कंकर) रखकर आखा चढ़ाकर उसे शीतला कहना।

४. नामसत्य—गुण की अपेक्षा न कर किसी का नाम विशेष रख देना नामसत्य है। जैसे कुल की वृद्धि न करने वाले व्यक्ति का नाम कुलवर्धन रखना।

५. रूपसत्य—रूप—वेश देखकर वेश के गुणों से रहित व्यक्ति को भी उस रूप से कहना, रूपसत्य है। जैसे कपट से साधु का वेश पहनने वाले व्यक्ति को साधु कहना।

६. प्रतीत्यसत्य—दूसरी वस्तु की अपेक्षा जो सत्य है, वह प्रतीतसत्य है। जैसे कनिष्ठ (छोटी) अंगुली की अपेक्षा अनामिका अंगुली बड़ी है और मध्यांगुली की अपेक्षा अनामिका अंगुली छोटी है। जैसे एक ही व्यक्ति अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है और पुत्र की अपेक्षा पिता है।

७. व्यवहारसत्य—व्यवहार लोकविवक्षा की अपेक्षा जो सत्य है, वह व्यवहारसत्य है। जैसे पहाड़ जलता है, घड़ा झरता है

तेजोलेश्या के अठारह दंडक समुच्चय की तरह कहना, किन्तु वेदना की अपेक्षा पन्द्रह दंडक में मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसम्यग्दृष्टि, ये दो भेद कहना। पृथ्वी, पानी, वनस्पति में असंज्ञी की अपेक्षा अल्पवेदना और क्रिया की अपेक्षा पांच क्रिया कहनी। मनुष्य में क्रिया की अपेक्षा सराग, वीतराग भेद नहीं करना। ये १८×९ = १६२ आलापक हुए।

पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के तीन–तीन दंडक–तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य और वैमानिक, तेजोलेश्या की तरह कहना। ये ३×२×९ = ५४ आलापक हुए।

कुल २१६+२१६+५९४+१६२+५४ = १२४२ आलापक हुए।

५. लेश्या के ४६ अल्पबहुत्व (अल्पाबोध) का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १७ वां पद, उ.२)

१. लेश्या कितनी................६
२. नारकी में लेश्या..............३
३. तिर्यंच में लेश्या................६
४. एकेन्द्रिय में लेश्या............४
५. पृथ्वीकाय में लेश्या...........४
६. अप्काय में लेश्या.............४
७. तेजस्काय में लेश्या...........३
८. वायुकाय में लेश्या............३
९. वनस्पतिकाय में लेश्या.......४
१०. द्वीन्द्रिय में लेश्या..............३
११. त्रीन्द्रिय में लेश्या..............३

आदि। सच तो यह है कि पहाड़ नहीं जलता है, पर पहाड़ में रहे तृणा काष्ठादि जलते हैं। इसी तरह घड़ा नहीं झरता है किन्तु घड़े में रहा हुआ पानी झरता है। किन्तु लोकव्यवहार से 'पहाड़ जलता है,घड़ा झरता है' जो कहा जाता है, वह व्यवहारसत्य है।

८. भावसत्य—वर्णादि भाव की अपेक्षा जो सत्य है यानी जिसमें जिस वर्णविशेष की अधिकता है उसे उस वर्णविशेष वाला कहना भावसत्य है। जैसे कोयल काली है, तोता हरा है, बगुला सफेद है। यद्यपि इनमें निश्चय से पांचों ही वर्ण पाये जाते हैं, किन्तु काले, हरे और सफेद वर्ण की अधिकता की अपेक्षा इन्हें काला, हरा और सफेद कहा जाता है।

९. योगसत्य—योग का अर्थ सम्बन्ध है। सम्बन्ध की अपेक्षा जो सत्य है, वह योगसत्य है। जैसे छत्र के सम्बन्ध से पुरुष को छत्री और दंड के सम्बन्ध से दंडी कहना।

१०. उपमासत्य—उपमा की अपेक्षा सत्य उपमासत्य है। उपमा चार तरह की है—(१) सत् को सत् की उपमा, जैसे पद्मनाभ तीर्थंकर भगवान् महावीरं जैसे होंगे। (२) सत् को असत् की उपमा, जैसे नारकी, देवता का पल्योपम, सागरोपम का आयुष्य सत् है, किन्तु पल्य और सागर की उपमा असत् है। (३) असत् को सत् की उपमा जैसे पत्र और वृक्ष की बातचीत—

पान झरन्तो इम कहे, सुन तरुवर वनराय।
अबके बिछुड़े कब मिलें, दूर पडेंगे जाय।।
तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र इक बात।
इस घर याही रीत है, इक आवत इक जात॥
पान झरन्तो देखके, हँसी कूँपलियां।
मो बीती तोय बीतसी, धीरी रह बावरियां॥

१२. चतुरिन्द्रिय में लेश्या..........३
१३. समुच्चय तिर्यंचपंचेन्द्रिय में लेश्या..........६
१४. असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में लेश्या............३
१५. गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय में लेश्या..............६
१६. गर्भज तिर्यंचस्त्री में लेश्या....................६
१७. समुच्चय मनुष्य में लेश्या.......................६
१८. सम्मूर्छिम मनुष्य में लेश्या......................३
१९. गर्भज मनुष्य में लेश्या...........................६
२०. गर्भज स्त्री में लेश्या.............................६
२१. समुच्चय देवता में लेश्या.......................६
२२. समुच्चय देवी में लेश्या..........................४
२३. भवनपतिदेव में लेश्या...........................४
२४. भवनपतिदेवी में लेश्या...........................४
२५. व्यन्तरदेव में लेश्या..............................४
२६. व्यन्तरदेवी में लेश्या.............................४
२७. ज्योतिषीदेव में लेश्या.............................१
२८. ज्योतिषीदेवी में लेश्या............................१
२९. वैमानिकदेव में विशुद्ध लेश्या....................३
३०. वैमानिकदेवी में लेश्या.............................१

(१) समुच्चय सलेश्य (लेश्या वाले) जीवों के अल्पबहुत्व के आठ बोल—१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले ,२. पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणा, ३. तेजोलेश्या वाले* संख्यातगुणा, ४. अलेश्य (अलेशी) अनन्तगुणा, ५. कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणा, ६. नीललेश्या वाले विशेषाधिक, ७. कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक, ८.

---

* कई आचार्य असंख्यातगुणा भी कहते हैं।

कबै पान मुख बोलियो, कब तरुवर दियो जवाब।
वीर वखाणी ऊपमा, अनुयोगद्वार मंझार।।

(४) असत् को असत् की उपमा—जैसे घोड़े का सींग गधे के सींग सरीखा है और गधे का सींग घोड़े के सींग जैसा है।

असत्यभाषा के दस भेद—

कोहे माणे माया लोभे पिज्जे तहेव दोसे य।
हास भय अक्खाइय, उवघाइय णिस्सिया दसमा।।

१. क्रोधनिःसृत, २. माननिःसृत, ३. मायानिःसृत, ४. लोभनिःसृत, ५. प्रेमनिःसृत, ६. द्वेषनिःसृत, ७. हास्यनिःसृत, ८. भयनिःसृत, ९. आख्यायिकानिःसृत, १०. उपघातनिःसृत।

क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम (राग), द्वेष, हास्य और भय के वश वोली हुई भाषा सत्य या असत्य होने पर भी असत्य होती है। कथाओं में असंभव वातोंका वर्णन आख्यायिकानिःसृत असत्य है। जीवों की हिंसा हो, ऐसी भाषा बोलना, 'तू चोर है', इस प्रकार झूठा दोष देना उपघातनिःसृत असत्य है।

मिश्रभाषा के दस भेद—१. उत्पन्नमिश्रिता, २. विगतमिश्रिता, ३. उत्पन्न—विगतमिश्रिता, ४. जीवमिश्रिता, ५. अजीवमिश्रिता, ६. जीव—अजीवमिश्रिता, ७. अनन्तमिश्रिता, ८. प्रत्येकमिश्रिता, ९. अद्धामिश्रिता, १०. अद्धद्धामिश्रिता।

१. उत्पन्नमिश्रिता (उप्पण्णमिस्सिया)—किसी गांव या नगर की जन्मसंख्या निश्चित रूप से ज्ञात न होने पर भी यह कहना कि 'आज दस वालक जन्मे', उत्पन्नमिश्रिता भापा है, क्योंकि दस से कम या अधिक वालक भी जन्म सकते हैं। २. विगतमिश्रिता (विगतमिस्सिया)—गांव या नगर विशेष की निश्चित मृत्युसंख्या ज्ञात न होने पर भी यह कहना कि 'आज यहां दस मरे', विगतमिश्रिता

सलेश्य (सलेशी) विशेषाधिक।

(२) नारकी के तीन बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े कृष्णलेश्या वाले, २. नीललेश्या वाले असंख्यातगुणा, ३. कापोतलेश्या वाले असंख्यातगुणा।

(३) तिर्यंच के छह बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले, २. पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणा, ३. तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणा, ४. कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणा, ५. नीललेश्या वाले विशेषाधिक, ६. कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक।

(४) एकेन्द्रिय के चार बोलों का अल्पबहुत्व—१ सवसे थोड़े तेजोलेश्या वाले, २. कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणा, ३. नीललेश्या वाले विशेषाधिक, ४. कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक।

(५) पृथ्वीकाय के चार बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े तेजोलेश्या वाले,२. कापोतलेश्या वाले असंख्यातगुणा, ३. नीललेश्या वाले विशेषाधिक, ४ कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक।

(६) अप्काय के चार बोलों का अल्पबहुत्व पृथ्वीकाय की तरह कहना।

(७) तेजस्काय के तीन बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े कापोतलेश्या वाले, २ नीललेश्या वाले विशेषाधिक, ३ कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक।

(८) वायुकाय के तीन बोलों का अल्पबहुत्व तेजस्काय की तरह कहना।

(९) वनस्पतिकाय के चार बोलों का अल्पबहुत्व एकेन्द्रिय के अल्पबहुत्व की तरह कहना।

(१०–११–१२) तीन विकलेन्द्रिय—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय—के तीन वोलों का अल्पवहुत्व तेजस्काय की तरह कहना।

भाषा है। दस से कम या ज्यादा भी मर सकते हैं। ३. उत्पन्न–विगतमिश्रिता (उप्पण्ण–विगतमिस्सिया)–गांव या नगर विशेष की निश्चित जन्म, मृत्यु संख्या ज्ञात न होने पर भी 'दस जन्मे, दस मरे', इस प्रकार निश्चित जन्म, मृत्युसंख्या कहना, उत्पन्न–विगतमिश्रिता भाषा है। जन्म, मृत्यु संख्या ज्यादा कम भी हो सकती है। ४. जीवमिश्रिता (जीवमिस्सिया)–कोई व्यक्ति धान लाया, जिसमें धनेरिया आदि जीव हैं और कंकर भी हैं, उसे देखकर कहना कि जीव ही उठा लाया। यह भाषा जीवित प्राणियों की अपेक्षा सत्य है और कंकर आदि की अपेक्षा असत्य है, अतः मिश्रित है। ५. अजीवमिश्रिता (अजीवमिस्सिया)–कोई धान लाया, जिसमें कंकर भी हैं। उसके लिए कहना कि कंकर ही कंकर उठा लाया। यह भाषा कंकर की अपेक्षा सत्य और धान की अपेक्षा असत्य होने से मिश्रित है। ६. जीवाजीवमिश्रिता (जीवाजीवमिस्सिया)–उक्त कंकर मिश्रित धान्य राशि के लिए यह कहना कि अर्ध परिमाण में धान और कंकर उठा लाया, जीवाजीवमिश्रिता भाषा है, क्योंकि धान और कंकर का परिमाण न्यूनाधिक संभव है। ७. अनन्तमिश्रिता (अणंतमिस्सिया)–पत्ते अथवा अन्य प्रत्येकवनस्पतिकाय से मिश्रित मूले आदि के लिए 'यह अनन्तकाय है' कहना, अनन्तमिश्रिता भाषा है। ८. प्रत्येकमिश्रिता (परित्तमिस्सिया)–प्रत्येकवनस्पति के समूह को अनन्तकाय के साथ मिला हुआ देखकर 'यह वनस्पति है' कहना प्रत्येकमिश्रिता भाषा है। ९. अद्धामिश्रिता (अद्धामिस्सिया)–अद्धा का अर्थ काल है। यहां दिन–रात समझना। जैसे दिन रहते किसी को कहना–उठ, रात्रि बीत गई, अथवा रात्रि रहते किसी को कहना–चलो, सूर्योदय हो गया। यह अद्धामिश्रिता भाषा है। १०. अद्धद्धामिश्रिता (अद्धद्धामिस्सिया)–दिन या रात्रि का एक देश

(१३) समुच्चय तिर्यंचपंचेन्द्रिय के छह बोलों का अल्प–बहुत्व–१ सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले, २ पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणा, ३ तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणा, ४ कापोतलेश्या वाले असंख्यातगुणा, ५ नीललेश्या वाले विशेषाधिक, ६ कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक।

(१४) सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय के तीन बोलों का अल्प–बहुत्व तेजस्काय की तरह कहना।

(१५) गर्भज तिर्यचपंचेन्द्रिय के छह बोलों का अल्पबहुत्व १ सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले, २ पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणा, ३ तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणा, ४ कापोतलेश्या वाले संख्यातगुणा, ५ नीललेश्या वाले विशेषाधिक, ६ कृष्णलेश्या वाले विशेपाधिक।

(१६) तिर्यचस्त्री के छह बोलों का अल्पवहुत्व उपर्युक्त गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय के अल्पबहुत्व की तरह कहना।

(१७) गर्भज तिर्यचपंचेन्द्रिय और तिर्यंचस्त्री के वारह वोलों का शामिल अल्पबहुत्व–१. सवसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले तिर्यचपंचेन्द्रिय, २. शुक्ललेश्या वाली तिर्यचस्त्री संख्यातगुणी, ३. पद्मलेश्या वाले तिर्यचपंचेन्द्रिय संख्यातगुणा, ४. पद्मलेश्या वाली तिर्यचस्त्री संख्यातगुणी, ५. तेजोलेश्या वाले तिर्यचपंचेन्द्रिय संख्यातगुणा, ६.तेजोलेश्या वाली तिर्यचस्त्री संख्यातगुणी, ७. कापोतलेश्या वाले तिर्यचपंचेन्द्रिय संख्यातगुणा, ८. नीललेश्या वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय विशेषाधिक, ९. कृष्णलेश्या वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय विशेषाधिक, १०. कापोतलेश्या वाली तिर्यचस्त्री संख्यातगुणी, ११. नीललेश्या वाली तिर्यंचस्त्री विशेपाधिक, १२. कृष्णलेश्या वाली तिर्यचस्त्री विशेपाधिक।

(१८) गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय और सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय के नौ वोलों का अल्पबहुत्व–गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय के पन्द्रहवें

अद्धद्ध कहा जाता है। जैसे पहले पौरुषी (पोरसी) के समय ही किसी को 'उठो, चलो दोपहर हो गया' कहना, अद्धद्धामिश्रिता भाषा है।

व्यवहारभाषा के बारह भेद–

आमंतणी आणमणी, जायणी तह पुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी भासा, भासा इच्छाणुलोमा य ॥१॥
अणभिग्गहिया भासा, भासा य अभिग्गहम्मि बोद्धव्वा।
संसयकरणी भासा, वोगड अव्वोगडा चेव ॥२॥

१. आमंत्रणी, २. आज्ञापनी, ३. याचनी, ४. पृच्छनी, ५. प्रज्ञापनी, ६. प्रत्याख्यानी, ७. इच्छानुलोमा, ८. अनभिगृहीता (अणभिग्गहिया), ९ अभिगृहीता, १०. संशयकरणी, ११. व्याकृता, (वोगडा), १२. अव्याकृता (अव्वोगडा)।

१. *आमंत्रणी*–'*हे देवदत्त*'–*इस प्रकार संबोधन रूप* भाषा। २. आज्ञापनी–आज्ञा रूप भाषा, जैसे–यह करो, उठो, बैठो। ३. याचनी–अमुक वस्तु दो, इस प्रकार याचना रूप भाषा। ४. पृच्छनी–अज्ञात अथवा संदिग्ध वस्तु का ज्ञान करने के लिए उस विषय के ज्ञाता से पूछना। ५. प्रज्ञापनी–विनेयजन (शिष्यों) को उपदेश देना, जिससे वे प्राणिवध से निवृत्त हों और दूसरे भव में दीर्घायु और निरोग हों। ६. प्रत्याख्यानी–प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) करना। ७. इच्छानुलोमा–कोई व्यक्ति किसी कार्य को शुरू करते हुए पूछे, उस पर यह कहना कि जैसी तुम्हारी इच्छा। ८. अनभिगृहीता (अणभिग्गहिया)–जिस भाषा से नियत का अर्थ निश्चय न हो। जैसे बहुत कार्य होने पर कोई किसी से पूछे कि अब क्या करूँ? इस पर यह कहना कि जो देखो सो करो। ९. अभिगृहीता (अभिग्गहिया)–जिस भाषा से नियत अर्थ का निश्चय हो। जैसे उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में यह कहना कि अभी यह कार्य करो, यह

अल्पबहुत्व के समान १ से ६ बोल कहना। ७ कापोतलेश्या वाले सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय असंख्यातगुणा, ८. नीललेश्या वाले सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय विशेषाधिक, ९. कृष्णलेश्या वाले सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय विशेषाधिक।

(१९) तिर्यंचस्त्री और सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय के नव बोलों का अल्पबहुत्व उपर्युक्त अठारहवें अल्पबहुत्व की तरह कहना। किन्तु पहले छह बोल में गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय की जगह तिर्यंचस्त्री कहना।

(२०) गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय, गर्भज तिर्यंचस्त्री और सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय के पन्द्रह बोलों का अल्पबहुत्व गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय और तिर्यंचस्त्री के सत्रहवें अल्पबहुत्व के अनुसार १ से १२ बोल तक कहना। १३ कापोतलेश्या वाले सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय असंख्यातगुणा, १४ नीललेश्या वाले सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय विशेषाधिक, १५. कृष्णलेश्या वाले सम्मूर्छिम तिर्यंचपंचेन्द्रिय विशेषाधिक।

(२१) समुच्चय तिर्यंचपंचेन्द्रिय और तिर्यंचस्त्री के बारह बोलों का अल्पबहुत्व–१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय, २. शुक्ललेश्या वाली तिर्यंचस्त्री संख्यातगुणी, ३. पद्मलेश्या वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय संख्यातगुणा, ४. पद्मलेश्या वाली तिर्यंचस्त्री संख्यातगुणी, ५. तेजोलेश्या वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय संख्यातगुणा, ६. तेजोलेश्या वाली तिर्यंचस्त्री संख्यातगुणी, ७. कापोतलेश्या वाली तिर्यंचस्त्री संख्यातगुणी, ८. नीललेश्या वाली तिर्यंचस्त्री विशेषाधिक, ९. कृष्णलेश्या वाली तिर्यंचस्त्री विशेषाधिक, १०. कापोतलेश्या वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय असंख्यातगुणा, ११. नीललेश्या वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय विशेषाधिक, १२. कृष्णलेश्या वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय विशेषाधिक।

(२२) समुच्चय तिर्यंच और तिर्यंचस्त्री के बारह बोलों का अल्पबहुत्व इक्कीसवें अल्पबहुत्व की तरह कहना किन्तु दसवें बोल में कापोतलेश्या वाले तिर्यंच अनन्तगुणा कहना।

(२३) समुच्चय मनुष्य के छह बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले मनुष्य, २. पद्मलेश्या वाले मनुष्य संख्यातगुणा, ३. तेजोलेश्या वाले मनुष्य संख्यातगुणा, ४. कापोतलेश्या वाले मनुष्य असंख्यातगुणा, ५. नीललेश्या वाले मनुष्य विशेषाधिक, ६. कृष्णलेश्या वाले मनुष्य विशेषाधिक।

(२४) सम्मूर्छिम मनुष्यों के तीन बोलों का अल्प-बहुत्व—१. सबसे थोड़े कापोतलेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य, २. नीललेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य विशेषाधिक, ३. कृष्णलेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य विशेषाधिक।

(२५) गर्भज मनुष्य के छह बोलों का अल्पवहुत्व समुच्चय मनुष्य के छह वोल के तेईसवें अल्पबहुत्व के समान छह बोल कहना, किन्तु चौथे वोल में संख्यातगुणा कहना और सभी बोलों में गर्भज मनुष्य कहना।

(२६) गर्भज मनुष्यस्त्री के छह वोलों के अल्पबहुत्व उपर्युक्त गर्भज मनुष्य के २५ वें अल्पवहुत्व की तरह कहना। गर्भज मनुष्य की जगह गर्भज मनुष्यस्त्री कहना।

(२७) गर्भज मनुष्य और गर्भज स्त्री के बारह वोलों का अल्पवहुत्व—१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले गर्भज मनुष्य, २. शुक्ललेश्या वाली मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी, ३. पद्मलेश्या वाले गर्भज मनुष्य संख्यातगुणा, ४. पद्मलेश्या वाली मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी, ५. तेजोलेश्या वाले गर्भज मनुष्य संख्यातगुणा, ६. तेजोलेश्या वाली मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी, ७. कापोतलेश्या वाले गर्भज मनुष्य संख्यातगुणा, ८. नीललेश्या वाले गर्भज मनुष्य विशेषाधिक, ९.

(५) शुद्धद्वार, (६) अप्रशस्तद्वार, (७) संक्लिष्टद्वार, (८) उष्णद्वार, (९)गतिद्वार,(१०)परिणामद्वार,(११)प्रदेशद्वार,(१२)अवगाढद्वार, (१३) वर्गणाद्वार, (१४) स्थानद्वार, (१५) अल्पबहुत्व।

(१) परिणामद्वार–क्या कृष्णलेश्या नीललेश्या को पाकर नीललेश्या रूप एवं नीललेश्या के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रूप में बार–बार परिणत होती है? हाँ, कृष्णलेश्या नीललेश्या रूप में एवं नीललेश्या के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रूप में बार–बार परिणत होती है।जैसे दूध छाछ के संयोग से अपना मीठा स्वाद छोड कर खट्टा हो जाता है, अथवा श्वेत वस्त्र मंजीठादि के रंगने से मंजीठादि के वर्ण का हो जाता है। इसी तरह नीललेश्या कापोतलेश्या रूप में, कापोतलेश्या तेजोलेश्या रूप में, तेजोलेश्या पद्मलेश्या रूप में और पद्मलेश्या शुक्ललेश्या रूप में बार–बार परिणत होती है।

इसी तरह कृष्णलेश्या–नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या को पाकर नीललेश्या यावत् शुक्ललेश्या रूप में एवं उन–उन लेश्याओं के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रूप में बार–बार परिणत होती है। जैसे वैडूर्यमणि कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत वर्ण के सूत्र (धागे) का संयोग पाकर कृष्ण,नील, रक्त, पीत और श्वेत वर्ण की हो जाती है। कृष्णलेश्या की तरह शेष लेश्याएं भी अपने से भिन्न पांच लेश्याओं को पाकर उन उन लेश्याओं के रूप में एवं उनके वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप में बार–बार परिणत हो जाती हैं।

(२) वर्णद्वार–कृष्णलेश्या का वर्ण काला है। बादल, अंजन, खंजन, महिषशृङ्ग, कज्जल, कोयल, भ्रमर, भ्रमरपंक्ति, हाथी का बच्चा, कृष्ण बकुल, कृष्ण अशोक, कृष्ण कणेर, कृष्ण बंधुजीवक प्रमुख काले वर्ण के पदार्थों से भी कृष्णलेश्या का वर्ण

कृष्णलेश्या वाले गर्भज मनुष्य विशेषाधिक, १०. कापोतलेश्या वाली मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी, ११. नीललेश्या वाली मनुष्यस्त्री विशेषाधिक, १२. कृष्णलेश्या वाली मनुष्यस्त्री विशेषाधिक।

(२८) गर्भज मनुष्य और सम्मूर्छिम मनुष्य के नौ बोलों का शामिल अल्पबहुत्व गर्भज मनुष्य के छह बोलों के पच्चीसवें अल्पबहुत्व के समान १ से ६ बोल तक कहना। ७. कापोतलेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य संख्यातगुणा, ८. नीललेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य विशेषाधिक, ९. कृष्णलेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य विशेषाधिक।

(२९) गर्भज मनुष्यस्त्री और सम्मूर्छिम मनुष्य के नौ बोलों का अल्पबहुत्व गर्भज मनुष्यस्त्री के छह बोलों के छब्बीसवें अल्पबहुत्व के समान १ से ६ बोल तक कहना। ७. कापोतलेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य असंख्यातगुणा, ८. नीललेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य विशेषाधिक, ९. कृष्णलेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य विशेषाधिक।

(३०) गर्भज मनुष्य, मनुष्यस्त्री और सम्मूर्छिम मनुष्य के पन्द्रह बोलों का शामिल अल्पबहुत्व गर्भज मनुष्य और मनुष्यस्त्री के बारह बोलों के २७ वें अल्पबहुत्व के समान १ से १२ बोल तक कहना। १३. कापोतलेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य असंख्यातगुणा, १४. नीललेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य विशेषाधिक, १५. कृष्णलेश्या वाले सम्मूर्छिम मनुष्य विशेषाधिक।

(३१) समुच्चय मनुष्य और मनुष्यस्त्री के बारह बोलों का शामिल अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले मनुष्य, २. शुक्ललेश्या वाली मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी, ३. पद्मलेश्या वाले मनुष्य संख्यातगुणा, ४. पद्मलेश्या वाली मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी, ५. तेजोलेश्या वाले मनुष्य संख्यातगुणा, ६. तेजोलेश्या वाली मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी, ७. कापोतलेश्या वाली मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी, ८. नीललेश्या वाली मनुष्यस्त्री विशेषाधिक, ९. कृष्णलेश्या वाली

अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोज्ञतर है। नीललेश्या का वर्ण नीला है। भृंगपक्षी, चाषपक्षी, तोता, इनके पंख, प्रियंगुलता, वनराजि (वन की पंक्ति), कबूतर और मोर की ग्रीवा, बलदेव का नीलवस्त्र, नील कमल, नील अशोक, नील कणेर, नील बंधुजीवक प्रमुख नील वर्ण के पदार्थों से भी नील लेश्या का वर्ण अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोज्ञतर है। कापोतश्या का वर्ण बैंगनी (लाल और काला रंग मिला हुआ) है। खैरसार, करीरसार, धमाससार, तांबा, तांबे के बरतन, बैंगन का फूल, जवासाकुसुम प्रमुख बैंगनी वर्ण के पदार्थों से भी कापोतलेश्या का वर्ण अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोज्ञतर है। तेजोलेश्या का वर्ण लाल रंग का है। खरगोश, सूअर, सांवर, बकरे और मनुष्य का रक्त, इन्द्रगोप, बाल सूर्य, संध्या की लालिमा, गुंजा का आधा लाल भाग, जातिवन्त हिंगुल, प्रवालांकुर, लाक्षरस, लोहिताक्षमणि, किरमची रंग की कम्बल, हाथी का तालवा, पारिजातपुष्प, जवाकुसुम, किंशुक (ढाक) का फूल, रक्तकमल, रक्तअशोक, रक्त कणेर, रक्त बन्धुजीवक प्रमुख लाल वर्ण के पदार्थों की अपेक्षा तेजोलेश्या का वर्ण अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोज्ञतर है। पद्मलेश्या का वर्ण पीला है। चम्पक, चम्पक की छाल, चम्पक का टुकड़ा, हल्दी, हल्दी की गुटिका, हल्दी का टुकड़ा, हरिताल, हरिताल की गुटिका, हरिताल का टुकड़ा, स्वर्ण का चीप, कसौटी पर कसे हुए सोने का कष, वासुदेव का पीत (पीला) वस्त्र, स्वर्णचम्पा का पुष्प, कूष्माण्ड (कोला) का पुष्प, स्वर्णजूही, कोरन्टपुष्पों की माला, पीत अशोक, पीत कणेर, पीत बन्धुजीवक प्रमुख पीले वर्ण के पदार्थों की अपेक्षा पद्मलेश्या का वर्ण अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोज्ञतर है। शुक्ललेश्या का वर्ण श्वेत है। अङ्करत्न, शंख, चन्द्र, कुन्दपुष्प (मोगरा), जल, दूध, दही,

मनुष्यस्त्री विशेषाधिक, १०. कापोतलेश्या वाले मनुष्य असंख्यातगुणा, ११. नीललेश्या वाले मनुष्य विशेषाधिक, १२. कृष्णलेश्या वाले मनुष्य विशेषाधिक।

(३२) समुच्चय देवता के छह बोलों का अल्पबहुत्व– १. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले देवता, २. पद्मलेश्या वाले देवता असंख्यातगुणा, ३. कापोतलेश्या वाले देवता असंख्यातगुणा, ४. नीललेश्या वाले देवता विशेषाधिक, ५. कृष्णलेश्या वाले देवता विशेषाधिक, ६. तेजोलेश्या वाले देवता संख्यातगुणा।

(३३) समुच्चय देवी के चार बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़ी कापोतलेश्या वाली देवियां, २. नीललेश्या वाली देवियां विशेषाधिक, ३. कृष्णलेश्या वाली देवियां विशेषाधिक, ४. तेजोलेश्या वाली देवियां संख्यातगुणी।

(३४) देवता और देवी के दस बोलों का शामिल अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले देवता, २. पद्मलेश्या वाले देवता असंख्यातगुणा, ३. कापोतलेश्या वाले देवता संख्यातगुणा, ४. नीललेश्या वाले देवता विशेषाधिक, ५. कृष्णलेश्या वाले देवता विशेषाधिक, ६. कापोतलेश्या वाली देवियां संख्यातगुणी, ७. नीललेश्या वाली देवियां विशेषाधिक, ८. कृष्णलेश्या वाली देवियां विशेषाधिक, ९. तेजोलेश्या वाले देवता संख्यातगुणा, १०. तेजोलेश्या वाली देवियां संख्यातगुणी।

(३५) भवनपति देवता के चार बोलों का अल्पबहुत्व– १. सबसे थोड़े तेजोलेश्या वाले भवनपति देवता, २. कापोतलेश्या वाले भवनपति देवता असंख्यातगुणा, ३. नीललेश्या वाले भवनपति देवता विशेषाधिक, ४. कृष्णलेश्या वाले भवनपति देवता विशेषाधिक।

(३६) भवनपति देवियों के चार बोलों का अल्पबहुत्व उपर्युक्त भवनपति देवता के पैंतीसवें अल्पबहुत्व की तरह कहना।

बल्लादि की सूखी हुई फली, अग्नि में तपा हुआ और राख से मंजा हुआ रजतपट्ट, शरदऋतु के बादल, कुमुद और पुण्डरीक की पंखुड़ी, चावल का आटा, श्वेत अशोक, श्वेत कणेर,श्वेत बंधुजीवक प्रमुख श्वेत पदार्थों की अपेक्षा शुक्ललेश्या का वर्ण अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोज्ञतर है।

प्रश्न—छह लेश्याएं किस—किस वर्ण की हैं? छह लेश्याएं पांच वर्ण वाली हैं। कृष्णलेश्या का वर्ण काला है, नीललेश्या का वर्ण नीला है, कापोतलेश्या का वर्ण काला और लाल यानी बैंगनी है, तेजोलेश्या का वर्ण लाल है, पद्मलेश्या का वर्ण पीला और शुक्ललेश्या का वर्ण श्वेत है।

(३) रसद्वार—कृष्णलेश्या का रस स्वाद में कटु है। नीम, नीम का सार, नीम की छाल, नीम का काढ़ा, कुटुक, कुटुक की छाल, कुटुक का काढ़ा कडवी तुम्बी, कड़वी तुम्बी का फल, कड़वी तोरई, वज्रकन्द प्रमुख कटु (कड़वे) पदार्थों से भी कृष्णलेश्या स्वाद में अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं विशेष अमनोज्ञ है। नीललेश्या का रस स्वाद में तीखा (तीक्ष्ण) होता है। भृङ्गी, भृङ्गीरज, पाठा, (ग्वारपाठा), चित्रमूल, पीपर, पीपर का मूल, पीपर का चूर्ण,मिर्च, मिर्च का चूर्ण, सोंठ, सोंठ का चूर्ण, प्रमुख तीक्ष्ण पदार्थों से भी नीललेश्या का रस अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं विशेष अमनोज्ञ होता है। कापोतलेश्या का रस स्वाद में खट्टा होता है। कच्चे आम (केरी),अम्बाड़ा, कच्चा बिल्व (बील), बिजौरा, कच्चा कपित्थ (कबीठ), कच्ची दाड़िम, कच्चा अखरोट, कच्चा बेर, तिन्दुक (टीमरू) प्रमुख फलों से भी कापोतलेश्या का रस अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय अमनोज्ञ और विशेष अमनोज्ञ होता है। तेजोलेश्या का स्वाद कुछ खट्टापन लिए हुए मीठा होता है। पके हुए आम आदि फलों के स्वाद से भी तेजोलेश्या का रस अधिक इष्ट,

भवनपति देवता की जगह भवनपति देवियां कहना।

(३७) भवनपति देवता और भवनपति देवियों के आठ बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े तेजोलेश्या वाले भवनपति देवता, २. तेजोलेश्या वाली भवनपति देवियां संख्यातगुणी, ३. कापोतलेश्या वाले भवनपति देवता असंख्यातगुणा, ४. नीललेश्या वाले भवनपति देवता विशेषाधिक, ५. कृष्णालेश्या वाले भवनपति देवता विशेषाधिक, ६. कापोतलेश्या वाली भवनपति देवियां संख्यातगुणी, ७. नीललेश्या वाली भवनपति देवियां विशेषाधिक, ८. कृष्णलेश्या वाली भवनपति देवियां विशेषाधिक।

(३८) व्यन्तर देवता के चार बोलों का अल्पबहुत्व भवनपति देवता के पैंतीसवें अल्पबहुत्व की तरह कहना। भवनपति देवता की जगह व्यन्तर देवता कहना।

(३९) व्यन्तर देवियों के चार बोलों का अल्पबहुत्व भवनपति देवियों के छत्तीसवें अल्पबहुत्व को तरह कहना। भवनपति देवियों की जगह व्यन्तर देवियां कहना।

(४०) व्यन्तर देवता और व्यन्तर देवियों के आठ बोलों का शामिल अल्पबहुत्व भवनपति देवता और भवनपति देवियों के सैंतीसवें अल्पबहुत्व की तरह कहना। भवनपति की जगह व्यन्तर कहना।

(४१) ज्योतिषी देवता और ज्योतिषी देवियां के दो बोल का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े तेजोलेश्या वाले ज्योतिषी देवता, २. तेजोलेश्या वाली ज्योतिषी देवियां संख्यातगुणी।

(४२) वैमानिक देवता के तीन बोलों का अल्पबहुत्व— १. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देवता, २. पद्मलेश्या वाले वैमानिक देवता असंख्यातगुणा, ३. तेजोलेश्या वाले वैमानिक देवता असंख्यातगुणा।

कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और विशेष मनोज्ञ होता है। पद्मलेश्या का रस स्वाद में मीठा होता है। चन्द्रप्रभा, मणिशीला, सीधु, वर वारुणी, पत्रासव, पुष्पासव, फलासव, खजूरसार, द्राक्षासार, पके हुए गन्नों का इक्षुरस प्रमुख पदार्थ जो स्वादिष्ट हैं, विशेष स्वादिष्ट हैं, जो शरीर को पुष्ट करने वाले, जठराग्नि को दीप्त करने वाले, दर्प और मद उत्पन्न करने वाले हैं तथा शरीर और मन को आनन्दित करने वाले हैं, इनकी अपेक्षा भी पद्मलेश्या का रस स्वाद में अधिक इष्ट, कान्त, मनोज्ञ एवं विशेष मनोज्ञ है। शुक्ललेश्या का रस स्वाद में विशेष मीठा होता है। गुड़, खांड, शक्कर, मिश्री, आदर्शिका, मिठाई प्रमुख पदार्थों से भी शुक्ललेश्या का रस स्वाद में विशेष इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोज्ञतर है।

(४) गन्धद्वार—छह लेश्याओं में पहली तीन अप्रशस्त लेश्याएं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या—दुरभिगंध वाली हैं। गाय, गज और सर्प के मृत कलेवर की दुर्गन्ध से भी ये लेश्याएं अनन्तगुणी दुर्गंध वाली हैं। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या, ये तीन प्रशस्त लेश्याएं सुरभिगंध वाली हैं। सुगंधित पुष्पों एवं पीसे हुए गन्ध द्रव्यों की सुगन्ध से भी ये लेश्याएं अनन्त गुणी सुगन्ध वाली हैं।

(५) शुद्धद्वार—पहली तीन लेश्याएं अप्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस वाली हैं, अतः ये अविशुद्ध हैं। अन्तिम तीन लेश्याएं प्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस वाली हैं, अतः ये विशुद्ध हैं।

(६) अप्रशस्तद्वार—पहली तीन लेश्याएं अप्रशस्त द्रव्य रूप हैं और अप्रशस्त अध्यवसाय उत्पन्न करने वाली हैं, अतः ये अप्रशस्त हैं। पिछली तीन लेश्याएं प्रशस्त द्रव्य रूप हैं तथा प्रशस्त अध्यवसाय उत्पन्न करने वाली हैं, अतः ये प्रशस्त हैं।

(७) संक्लिष्टद्वार—पहली तीन लेश्याएं आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान

(४३) वैमानिक देवता और वैमानिक देवियों के चार बोलों का शामिल अल्पबहुत्व—१.सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देवता, २. पद्मलेश्या वाले वैमानिक देवता असंख्यातगुणा, ३. तेजोलेश्या वाले वैमानिक देवता असंख्यातगुणा, ४. तेजोलेश्या वाली वैमानिक देवियां संख्यातगुणी।

(४४) समुच्चय देवता के बारह बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देवता, २. पद्मलेश्या वाले वैमानिक देवता असंख्यातगुणा, ३. तेजोलेश्या वैमानिक देवता असंख्यातगुणा, ४.तेजोलेश्या वाले भवनपति देवता असंख्यातगुणा, ५.कापोतलेश्या वाले भवनपति देवता असंख्यातगुणा, ६.नीललेश्या वाले भवनपति देवता विशेषाधिक, ७. कृष्णलेश्या वाले भवनपति देवता विशेषाधिक, ८.तेजोलेश्या वाले व्यन्तर देवता असंख्यातगुणा, ९.कापोतलेश्या वाले व्यन्तर देवता असंख्यातगुणा, १०.नीललेश्या वाले व्यन्तर देवता विशेषाधिक, ११.कृष्णलेश्या वाले व्यन्तर देवता विशेषाधिक, १२. तेजोलेश्या वाले ज्योतिषी देवता संख्यातगुणा।

(४५) समुच्चय देवियों के दस बोलों का अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़ी तेजोलेश्या वाली वैमानिक देवियां, २.तेजोलेश्या वाली भवनपति देवियां असंख्यातगुणी, ३. कापोतलेश्या वाली भवनपति देवियां असंख्यातगुणी, ४. नीललेश्या वाली भवनपति देवियां विशेषाधिक, ५. कृष्णलेश्या वाली भवनपति देवियां विशेषाधिक, ६. तेजोलेश्या वाली व्यन्तर देवियां असंख्यातगुणी, ७. कापोतलेश्या वाली व्यन्तर देवियां असंख्यातगुणी, ८. नीललेश्या वाली व्यन्तर देवियां विशेषाधिक, ९.कृष्णलेश्या वाली व्यन्तर देवियां विशेषाधिक, १०.तेजोलेश्या वाली ज्योतिषी देवियां संख्यातगुणी।

(४६) देवता और देवियों के बाईस बोलों का शामिल अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देवता, २.

के संक्लिष्ट अध्यवसायस्थान पैदा करने वाली होने से संक्लिष्ट हैं। पिछली तीन लेश्याएं धर्मध्यान, शुक्लध्यान के असंक्लिष्टस्थानों की जनक होने से असंक्लिष्ट हैं।

(८) उष्णद्वार–पहली तीन लेश्याएं शीत और रूक्ष स्पर्श वाली हैं और पिछली तीनलेश्याएं उष्ण और स्निग्ध स्पर्श वाली हैं।

(९) गतिद्वार–पहली तीन लेश्याएं संक्लिष्ट अध्यवसायों की जनक होने से दुर्गति में ले जाने वाली हैं। अंतिम तीन लेश्याएं प्रशस्त अध्यवसायों को उत्पन्न करने वाली होने से सुगति में ले जाने वाली हैं।

(१०) परिणामद्वार–कृष्णलेश्या तीन प्रकार के परिणाम वाली होती हैं–जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट। इनके प्रत्येक के जघन्य मध्यम, उत्कृष्ट के भेद करने पर कृष्णलेश्या नौ प्रकार के परिणाम वाली होती है–जघन्य–जघन्य, मध्यम–जघन्य, उत्कृष्ट–जघन्य, जघन्य–मध्यम, मध्यम–मध्यम, उत्कृष्ट–मध्यम, जघन्य–उत्कृष्ट, मध्यम–उत्कृष्ट, उत्कृष्ट–उत्कृष्ट। इन नौ को फिर तीन से गुणा करने पर सत्ताईस, सत्ताईस को तीन से गुणा करने पर इक्यासी और इक्यासी को तीन से गुणा करने पर २४३ भेद होते हैं। इस तरह कृष्णलेश्या बहुविध परिणाम वाली होती है। इसी तरह नीललेश्या आदि लेश्याओं के परिणाम भी कहना चाहिए।

(११) प्रदेशद्वार–कृष्णलेश्या आदि छहों लेश्याएं अनन्त प्रदेशी हैं।

(१२) अवगाढ़द्वार–कृष्णलेश्या आदि छहों लेश्याओं में से प्रत्येक लेश्या असंख्यात आकाशप्रदेशों में रही हुई है।

(१३) वर्गणाद्वार–कृष्णलेश्या योग्य द्रव्य परमाणुओं की अनन्त वर्गणाएं हैं। इसी तरह शेष लेश्याओं के योग्य द्रव्य परमाणुओं की भी अनन्त, अनन्त वर्गणाएं हैं।

पद्मलेश्या वाले वैमानिक देवता असंख्यातगुणा, ३. तेजोलेश्या वाले वैमानिक देवता असंख्यातगुणा, ४. तेजोलेश्या वाली वैमानिक देवियां संख्यातगुणी, ५. तेजोलेश्या वाले भवनपति देवता असंख्यातगुणा, ६. तेजोलेश्या वाली भवनपति देवियां संख्यातगुणी, ७. कापोतलेश्या वाले भवनपति देवता असंख्यातगुणा, ८. नीललेश्या वाले भवनपति देवता विशेषाधिक, ९. कृष्णलेश्या वाले भवनपति देवता विशेषाधिक, १०. कापोतलेश्या वाली भवनपति देवियां संख्यातगुणी, ११. नीललेश्या वाली भवनपति देवियां विशेषाधिक, १२. कृष्णलेश्या वाली भवनपति देवियां विशेषाधिक, १३. तेजोलेश्या वाले व्यन्तर देवता असंख्यातगुणा, १४. तेजोलेश्या वाली व्यन्तर देवियां संख्यातगुणी, १५. कापोतलेश्या वाले व्यन्तर देवता असंख्यातगुणा, १६. नीललेश्या वाले व्यन्तर देवता विशेषाधिक, १७. कृष्णलेश्या वाले व्यन्तर देवता विशेषाधिक, १८. कापोतलेश्या वाली व्यन्तर देवियां संख्यातगुणी, १९. नीललेश्या वाली व्यन्तर देवियां विशेषाधिक, २०. कृष्णलेश्या वाली व्यन्तर देवियां विशेषाधिक, २१. तेजोलेश्या वाले ज्योतिषी देवता संख्यातगुणा, २२. तेजोलेश्या वाली ज्योतिषी देवियां विशेषाधिक।

प्रश्न—इन छह लेश्या वाले जीवों में कौन अल्पऋद्धि वाले और कौन महाऋद्धि वाले होते हैं? उत्तर—कृष्णलेश्या वाले अल्पऋद्धि वाले होते हैं, उनसे नीललेश्या वाले महाऋद्धि वाले, उनसे कापोतलेश्या वाले महाऋद्धि वाले, उनसे तेजोलेश्या वाले महाऋद्धि वाले, उनसे पद्मलेश्या वाले महाऋद्धि वाले और पद्मलेश्या वालों से शुक्ललेश्या वाले महाऋद्धि वाले होते हैं। कृष्णलेश्या वाले सभी जीव अल्पऋद्धि वाले और शेष पांच लेश्या वाले महाऋद्धि वाले होते हैं। यह अल्पऋद्धि वाले और महाऋद्धि वाले समुच्चय जीवों का अल्पबहुत्व हुआ। जहां कृष्णलेश्या वाले आवें वहां अल्पऋद्धि वाले

(१४) स्थानद्वार—विशुद्धि और अविशुद्धि के प्रकर्ष (अधिकता) और अपकर्ष की अपेक्षा लेश्या के जो भेद होते हैं, वे ही लेश्या के स्थान हैं। भावलेश्या की अपेक्षा प्रत्येक लेश्या के असंख्यात स्थान होते हैं। असंख्यात का स्पष्टीकरण काल और क्षेत्र की अपेक्षा इस प्रकार है— काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के समय परिमाण हैं और क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश परिमाण हैं। अशुभ लेश्याओं के स्थान संक्लेश रूप होते हैं और शुभ लेश्याओं के स्थान विशुद्ध होते हैं।

इन भावलेश्याओं के स्थानों के कारणभूत कृष्णादि द्रव्यों के समूह भी स्थान कहे जाते हैं। ये स्थान भी प्रत्येक लेश्या के असंख्यात, असंख्यात हैं। जघन्य, उत्कृष्ट के भेद से ये स्थान दो तरह के हैं। जघन्य लेश्यास्थान के परिणाम के कारण जघन्य और उत्कृष्ट लेश्यास्थान के परिणाम के कारण उत्कृष्ट होते हैं। ये जघन्य, उत्कृष्ट स्थान परिणाम और गुणों के भद से असंख्यात होते हैं। जैसे स्फटिकमणि जघन्य रक्त अलक्तक (आलता के रंग) से जघन्य रक्त होती है और एक, दो, तीन यावत् असंख्यात गुण अधिक रक्त अलक्तक से एक, दो, तीन यावत् असंख्यात गुण अधिक रक्त हो जाती है। इसी तरह जघन्य एक, दो, तीन यावत् असंख्यात गुण अधिक लेश्या द्रव्यों के योग से लेश्या के असंख्यात परिणाम होते हैं। इसी तरह उत्कृष्ट स्थान भी असंख्यात हैं। परिणामों की धारा के चढ़ने, उतरने के साथ ही लेश्याओं के स्थान बदलते रहते हैं।

(१५) अल्पबहुत्वद्वार—यहां छह लेश्याओं के जघन्य, उत्कृष्ट तथा जघन्य-उत्कृष्ट (संयुक्त) स्थानों की द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश (संयुक्त) की अपेक्षा अल्पबहुत्व बताते हैं—

द्रव्य की अपेक्षा छह लेश्याओं के जघन्य स्थानों का अल्पबहुत्व—१.सबसे थोड़े कापोतलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की

और जहां दूसरी लेश्या वाले आवें वहां महाऋद्धि वाले विशेषण लेश्या के पहले लगा कर अल्पऋद्धिवाले और महाऋद्धि वाले का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

कृष्णलेश्या वाले यावत् कापोतलेश्या वाले नैरयिकों में अल्पर्द्धिक (अल्पऋद्धि वाले) और महर्द्धिक (महाऋद्धि वाले) का अल्पबहुत्व–१. सबसे थोड़े अल्पर्द्धिक कृष्णलेश्या वाले, २. उनसे नीललेश्या वाले नैरयिक महर्द्धिक, ३. उनसे कापोतलेश्या वाले नैरयिक महर्द्धिक। इसी तरह अल्पर्द्धिक महर्द्धिक की ४६ अल्पबहुत्व कह देना चाहिए।

चौबीस दंडक में लेश्या के ३० आलापक, लेश्या के ४६ अल्पबहुत्व के ४६ आलापक और अल्पर्द्धिक महर्द्धिक के ४६ अल्पबहुत्व के ४६ आलापक (३०+४६+४६) कुल १२२ आलापक हुए।

६. लेश्या का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १७ वां पद, उ. ३)

(१) हे भगवन्! नारकी में नैरयिक उत्पन्न होता है या अनैरयिक उत्पन्न होता है? हे गौतम! नारकी में नैरयिक उत्पन्न होता है। अनैरयिक नारकी में उत्पन्न नहीं होता। इसी तरह चौबीस दंडक कहना।

(२) हे भगवन्! नारकी में से नैरयिक का उद्वर्तन होता (निकलता) है या अनैरयिक का उद्वर्तन होता है? हे गौतम! नारकी में से अनैरयिक का उद्वर्तन होता है, नैरयिक का उद्वर्तन नहीं होता। इसी तरह चौबीस दंडक कहना। किन्तु ज्योतिषी, वैमानिक में उद्ववर्तन के स्थान पर च्यवन कहना।

अपेक्षा, २. नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ३. कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ४. तेजोलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यात गुणा, ५. पद्मलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ६. शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा।

प्रदेश की अपेक्षा छह लेश्याओं के जघन्य स्थानों का अल्पबहुत्व भी उपर्युक्त अल्पबहुत्व के अनुसार कहना चाहिए।

छह लेश्याओं के जघन्य स्थान का द्रव्य–प्रदेश संयुक्त की अपेक्षा अल्पबहुत्व–१ सबसे थोड़े कापोतलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा, २ नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ३ कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ४ तेजोलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ५ पद्मलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ६ शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ७ कापोतलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ८ नीललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ९ कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १० तेजोलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ११ पद्मलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १२ शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा।

छह लेश्याओं के उत्कृष्ट स्थानों की द्रव्य, प्रदेश तथा द्रव्य और प्रदेश संयुक्त की अपेक्षा तीनों अल्पबहुत्व भी इसी तरह कह देना चाहिए, किन्तु इनमें जघन्य स्थान की जगह उत्कृष्ट स्थान कहना चाहिए।

(३) हे भगवन्! कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कृष्णलेश्या वाले नैरयिक के रूप में उत्पन्न होता है तो क्या वह कृष्णलेश्या वाला होकर ही उद्वर्तता है अर्थात् जिस लेश्या के साथ उत्पन्न होता है क्या उसी लेश्या के साथ वहां से निकलता है? हां गौतम! जिस लेश्या के साथ उत्पन्न होता है, उसी लेश्या के साथ निकलता है। कृष्णलेश्या लेकर उत्पन्न हुआ नैरयिक कृष्णलेश्या के साथ ही उद्वर्तता है। इसी तरह नीललेश्या, कापोतलेश्या कह देना। नारकी की तरह देवता के तेरह दंडक कह देना। भवनपति, व्यन्तर में पहली चार लेश्याएं कहना, ज्योतिषी में तेजोलेश्या कहना और वैमानिक में ऊपर की तीन विशुद्ध लेश्याएं कहना। ज्योतिषी, वैमानिक में उद्वर्तन की जगह च्यवन कहना। औदारिक के दस दंडक के जीव जिस लेश्या के साथ उत्पन्न होते हैं वे उस लेश्या के साथ तथा दूसरी लेश्या के साथ भी उद्वर्तते हैं। किन्तु पृथ्वी, पानी, वनस्पति के जीव, जो तेजोलेश्या के साथ उत्पन्न होते हैं, वे तेजोलेश्या के साथ नहीं निकलते।

(४) हे भगवन्! + दो कृष्णलेश्या वाले नैरयिक क्या अवधिज्ञान से समान जानते हैं, समान देखते हैं? हे गौतम! समान जानते हैं और समान देखते हैं और विषम भी जानते तथा विषम भी देखते हैं। एक पुरुष समतल पृथ्वी पर खड़ा होकर देखता है और

+ सातवीं नारकी का नैरयिक जघन्य आधा कोश, उत्कृष्ट एक कोश, छठी नारकी का नैरयिक जघन्य एक कोश, उत्कृष्ट डेढ़ कोश, पांचवीं नारकी का नैरयिक जघन्य डेढ़ कोश, उत्कृष्ट दो कोश, चौथी नारकी का नैरयिक जघन्य दो कोश, उत्कृष्ट ढाई कोश, तीसरी नारकी का नैरयिक जघन्य ढाई कोश, उत्कृष्ट तीन कोश, दूसरी नारकी का नैरयिक जघन्य तीन कोश, उत्कृष्ट साढ़े तीन कोश, पहली नारकी का नैरयिक जघन्य साढ़े तीन कोश उत्कृष्ट चार कोश प्रमाण क्षेत्र जानता–देखता है।

छह लेश्या के जघन्य–उत्कृष्ट (संयुक्त)स्थानों का द्रव्य की अपेक्षा अल्पबहुत्व—१. सबसे थोड़े कापोतलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा, २ नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ३ कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ४ तेजोलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ५ पद्मलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ६ शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ७ कापोतलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ८ नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रन्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ९ कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १० तेजोलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ११ पद्मलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १२ शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा।

छह लेश्या के जघन्य–उत्कृष्टस्थानों का प्रदेश की अपेक्षा अल्पबहुत्व भी इसी तरह कहना चाहिए। इसमें 'द्रव्य की अपेक्षा' की जगह 'प्रदेश की अपेक्षा' कहना।

छह लेश्या के जघन्य उत्कृष्ट स्थानों का द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा संयुक्त अल्पबहुत्व—१ सबसे थोड़े कापोतलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा, २ नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ३ कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ४ तेजोलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ५ पद्मलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ६ शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ७ कापोतलेश्या के नत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, ८ नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की

एक पुरुष नीची जमीन पर खड़ा होकर देखता है। इन दोनों के देखने में जिस तरह अन्तर पड़ता है, उसी तरह दो कृष्णलेश्या वाले में भी आपस में अवधिज्ञान से जानने–देखने में अन्तर पड़ता है। विशुद्धलेश्या वालों की अपेक्षा अविशुद्धलेश्या वाला कम जानता–देखता है और अविशुद्धलेश्या वाले की अपेक्षा विशुद्ध लेश्या वाला अधिक जानता–देखता है। हे भगवन्! क्या नीललेश्या वाला नैरयिक कृष्णलेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा अधिक जानता–देखता है? हे गौतम! जैसे एक पुरुष पहाड़ पर खड़ा होकर देखता है और एक पृथ्वी पर खड़ा होकर देखता। इन दोनों में पहाड़ पर खड़ा होकर देखने वाला अधिक क्षेत्र देखता है और अधिक स्पष्ट देखता है। इसी तरह कृष्णलेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा नीललेश्या वाला नैरयिक अधिक एवं विशुद्धतर जानता–देखता है। हे भगवन्! क्या नील लेश्या वाले दो नैरयिक अवधिज्ञान से समान जानते हैं, समान देखते हैं? हे गौतम! समान जानते हैं समान देखते हैं और विषम भी जानते हैं और विषम भी देखते हैं। जैसे एक पुरुष पर्वत पर खड़ा होकर देखता है और एक पुरुष पर्वत पर पैर ऊंचे करके देखता है। इन दोनों के देखने में जिस तरह अन्तर पड़ता है, इसी तरह नीललेश्या वाले दो नैरयिकों में भी आपस में अवधिज्ञान से जानने–देखने में अन्तर पड़ता है। विशुद्धलेश्या वाले की अपेक्षा अविशुद्धलेश्या वाला कम जानता–देखता है और अविशुद्धलेश्या वाले की अपेक्षा विशुद्धलेश्या वाला अधिक जानता–देखता है। इसी तरह कापोतलेश्या वाला नैरयिक नीललेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा अवधिज्ञान से अधिक एवं विशुद्धतर जानता–देखता है। जैसे एक पुरुष पर्वत पर खड़ा होकर देखता है और एक पुरुष पर्वतस्थ वृक्ष पर खड़ा होकर देखता है। इन दोनों में पर्वतस्थ वृक्ष पर खड़ा होकर देखने वाला पुरुष दूसरे की अपेक्षा अधिक और स्पष्ट देखता है। इसी तरह

अपेक्षा असंख्यातगुणा,९ कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १० तेजोलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा,११ पद्मलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १२ शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १३ कापोतलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १४ नीललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १५ कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १६ तेजोलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १७ पद्मलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १८ शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, १९ कापोतलेश्या के उत्कृष्ट स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, २० नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा,२१ कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, २२ तेजोलेश्या के उत्कृष्ट स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा,२३ पद्मलेश्या के उत्कृष्ट स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, २४ शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा।

८. लेश्यापरिणाम का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १७ वां पद, उ.५)

इस थोकड़े से पहले का थोकड़ा भी लेश्यापरिणाम का थोकड़ा है। उसमें पहले परिणामद्वार में वैडूर्यमणि का दृष्टांत है, वहां तक परिणामद्वार यहां भी कहना। यह अधिकार तिर्यंच और मनुष्य की अपेक्षा है, क्योंकि उनमें द्रव्यलेश्या, भावलेश्या बदलती रहती है। अब नारकी और देवता की अपेक्षा लेश्या का परिणाम बताया जाता है।

कापोतलेश्या वाला नैरयिक भी नीललेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा विशेष एवं विशुद्धतर जानता–देखता है।

(५) लेश्याओं में ज्ञान–समुच्चय लेश्या में दो ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान), तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अथवा मनःपर्यवज्ञान), चार ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान) अथवा एक ज्ञान (केवलज्ञान) हो सकते हैं। कृष्णलेश्या में दो, तीन, चार ज्ञान पाये जाते हैं। नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या में भी दो, तीन, चार ज्ञान पाये जाते हैं। शुक्ललेश्या में दो, तीन, चार और एक ज्ञान पाये जाते हैं।

पहले प्रश्न के २४ आलापक (उत्पन्न होने के), दूसरे प्रश्न के २४ आलापक (उद्वर्तन, च्यवन के), तीसरे प्रश्न के + ९० आलापक, चौथे प्रश्न के तीन आलापक (तीन लेश्या की अपेक्षा), पांचवें प्रश्न के ३० आलापक (छह लेश्या में पांच ज्ञान की अपेक्षा), कुल २४+२४+९०+३+३० = १७१ आलापक हुए।

७. लेश्यापरिणाम का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १७ वां पद, उद्देशा ४)

परिणाम वण्ण रस गंध, सुद्ध अप्पसत्थ संकिलिट्ठुण्हा।
गइ परिणाम पएसोगाढ वग्गण ठाणाणमप्पवहु॥

(१) परिणामद्वार, (२) वर्णद्वार, (३) रसद्वार, (४) गंधद्वार,

+ तीसरे प्रश्न में नारकी के तीन, दस भवनपति के चालीस, व्यन्तर के चार, ज्योतिषी का एक, वैमानिक के तीन, पृथ्वी के चार, पानी के चार, वनस्पति के चार, तेजस्काय के तीन, वायुकाय के तीन, विकलेन्द्रिय के नौ, तिर्यंचपंचेन्द्रिय के छह, मनुष्य के छह, कुल ९० आलापक हुए।

क्या कृष्णलेश्या नीललेश्या को पाकर उस (नीललेश्या) रूप में एवं उसके वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप में बार-बार परिणत नहीं होती ? हां, कृष्णलेश्या, नीललेश्या को पाकर नीललेश्या रूप में एवं नीललेश्या के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप में बार-बार परिणत नहीं होती। वहां कृष्णलेश्या में नीललेश्या का आकारमात्र अर्थात् छाया रहती है, प्रतिबिम्ब रहता है, किन्तु कृष्णलेश्या अपना स्वरूप छोड़ कर नीललेश्या रूप में परिणत नहीं होती। इसी तरह नीललेश्या कापोतलेश्या को पाकर कापोतलेश्या रूप में एवं उसके वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप में परिणत नहीं होती। इसी तरह कापोत, तेजो और पद्म लेश्या भी अपने आगे की तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या को पाकर उस उस लेश्या के रूप में और उस-उस लेश्या के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप में परिणत नहीं होती। इसी प्रकार शुक्ललेश्या पद्मलेश्या को पाकर पद्मलेश्या रूप में एवं पद्मलेश्या के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रूप में परिणत नहीं होती। पद्मलेश्या तेजोलेश्या को पाकर, तेजोलेश्या कापोतलेश्या को पाकर, कापोतलेश्या नीललेश्या को पाकर और नीललेश्या कृष्णलेश्या को पाकर उस-उस लेश्या रूप में एवं उस-उस लेश्या के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप में परिणत नहीं होती। चूंकि नारकी और देवता में द्रव्यलेश्या और भावलेश्या नहीं बदलती + है, इस अपेक्षा से एक लेश्या का अन्य लेश्या रूप में परिणत होने का निषेध किया गया है।

+ मनुष्य, तिर्यंच में द्रव्यलेश्या और भावलेश्या दोनों बदलती हैं। नारकी और देवता में द्रव्यलेश्या और भावलेश्या नहीं बदलतीं, किन्तु अवस्थित रहती हैं। फिर भी दूसरी लेश्या के द्रव्य के संपर्क होने पर उनकी लेश्याएं तदाकार बन जाती हैं और इस प्रकार भावपरावर्तन के योग से छहों लेश्याएं घटित होती हैं। अतः सातवीं नरक में सम्यक्त्व प्राप्त होने में कोई बाधा नहीं है।

९. लेश्या का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १७ वां पद, उद्देशा ६)

समुच्चय जीव में छह लेश्याएं पायी जाती हैं। मनुष्य में, मनुष्यस्त्री में, कर्मभूमि के मनुष्य और कर्मभूमि की मनुष्यस्त्री में छह–छह लेश्याएं पायी जाती हैं। भरत ऐरवत क्षेत्र के मनुष्य में, भरत ऐरवत क्षेत्र की मनुष्यस्त्री में तथा पूर्व पश्चिम महाविदेह के मनुष्य में और पूर्व पश्चिम महाविदेह की मनुष्यस्त्री में छह–छह लेश्याएं पायी जाती हैं। अकर्मभूमि मनुष्य और अकर्मभूमि मनुष्यस्त्री में तथा छप्पन अन्तरद्वीप के मनुष्य और छप्पन अन्तरद्वीप की मनुष्यस्त्री में चार–चार लेश्याएं पायी जाती हैं। हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष, देवकुरु , उत्तरकुरु के मनुष्य और मनुष्यस्त्री में चार–चार लेश्याएं पायी जाती हैं। पूर्व धातकीखण्ड, पश्चिम धातकीखंडऔर पुष्करार्धद्वीप के क्षेत्रों के मनुष्य और मनुष्यस्त्री में ऊपर लिखे अनुसार लेश्याएं कहनी चाहिए। ये १९+३८+३८ = ९५ आलापक हुए।

कृष्णलेश्या वाला मनुष्य क्या कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है? हां, कृष्णलेश्या वाला मनुष्य कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है। इसी तरह कृष्णलेश्या वाला नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है। इसी तरह नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले मनुष्य भी छहों लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करते हैं। ये ६×६ = ३६आलापक हुए। मनुष्य की तरह मनुष्यस्त्री के भी ३६ आलापक होते हैं। मनुष्य और मनुष्यस्त्री शामिल के भी ३६ आलापक कहना। ये १०८ आलापक हुए। इसी तरह कर्मभूमि मनुष्य और कर्मभूमि मनुष्यस्त्री शामिल के भी

की, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग की बांधते हैं और जघन्य अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये दस प्रकृतियां जघन्य अंत:कोटि-कोटि सागरोपम की, उत्कृष्ट दस कोटि-कोटि सागरोपम की,१२ ।। कोटि-कोटि सागरोपम की, १५ कोटि-कोटि सागरोपम की,१७ ॥ कोटि-कोटि सागरोपम की और बीस कोटि-कोटि सागरोपम की बांधता है। अबाधाकाल क्रमश: हजार वर्षों का, १२५० वर्षों का, १५०० वर्षों का, १७५० वर्षों का और दो हजार वर्षों का है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय की दस प्रकृतियों की उपरोक्त स्थिति भी पश्चानुपूर्वी से समझनी चाहिये।

छह संहनन और छह संस्थान ये बारह प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग, छह भाग, सात भाग, आठ भाग, नौ भाग और दस भाग यानी ५/३५, ६/३५, ७/३५, ८/३५,९/३५,१०/३५ सागरोपम की,उत्कृष्ट १०, १२, १४, १६, १८ और २० कोटि-कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल १०००, १२००, १४००, १६००, १८०० और २००० वर्षों का है। ये बारह प्रकृतियां एकेन्द्रिय उत्कृष्ट सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग, छह भाग, सात भाग, आठ भाग, नौ भाग और दस भाग की, द्वीन्द्रिय पच्चीस सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग यावत् दस भाग, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग यावत् दस भाग की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग यावत् दस भाग की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के पैंतीसिया पांच भाग

३६—३६ आलापक के हिसाब से १०८ आलापक होते हैं।

अकर्मभूमि मनुष्य के ४×४ = १६, अकर्मभूमि मनुष्यस्त्री के ४×४ = १६ तथा अकर्मभूमि मनुष्य और मनुष्यस्त्री के शामिल के ४×४ = १६ आलापक होते हैं। इस तरह अकर्मभूमि के ४८ आलापक हुए। अकर्मभूमि की तरह छप्पन अन्तरद्वीप के भी ४८ आलापक कहना।

जम्बूद्वीप के १९, धातकीखंड के ३८, पुष्करार्धद्वीप के ३८, समुच्चयमनुष्य के १०८, कर्मभूमिमनुष्य के १०८, अकर्मभूमिमनुष्य के ४८, छप्पन अन्तरद्वीप के मनुष्य के ४८ कुल १९+३८+३८+ १०८+१०८+ ४८+४८ = ४०७ * आलापक हुए।

१०. कर्मप्रकृतियों के अबाधाकाल का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २३ वां पद, उद्देशा २)

(१—२०) समुच्चय जीव ५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय और पांच अन्तराय—ये चौदह प्रकृतियां जघन्य अन्तर्मुहूर्त की

* कई थोकड़ों के जानकर ६०६० आलापक भी कहते है—समुच्चयमनुष्य मनुष्य और मनुष्यस्त्री के १०८, समुच्चय कर्मभूमि, कर्मभूमि मनुष्य, कर्मभूमि मनुष्यस्त्री के १०८, पांच भरत, पांच ऐरवत, पांच महाविदेह के समुच्चय मनुष्य और मनुष्यस्त्री के १५×१०८ = १६२०, समुच्चय अकर्मभूमि अकर्मभूमि मनुष्य और अकर्मभूमि मनुष्यस्त्री के ४८, तीस अकर्मभूमि के समुच्चय मनुष्य, मनुष्य और मनुष्यस्त्री के ३०×४८ = १४४०, समुच्चय अन्तरद्वीप, अन्तरद्वीप के मनुष्य, अन्तरद्वीप की मनुष्यस्त्री के ४८, छप्पन अन्तरद्वीप के समुच्चय मनुष्य, मनुष्य और मनुष्यस्त्री के ५६×४८ = २६८८ कुल मिलाकर १०८+१०८ +१६२० +४८+१४४० +४८+ २६८८ = ६०६० आलापक हुए।

यावत् दस भाग की बांधते हैं। जघन्य सब में अपनी–अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की है। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये बारह प्रकृतियां जघन्य अंतःकोटि–कोटि सागरोपम की, उत्कृष्ट दस, बारह, चौदह, सोलह, अठारह और बीस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल १०००, १२००, १४००, १६००, १८०० और २००० वर्षों का है।

सूक्ष्मत्रिक (सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त) के सिवाय स्थावरदशक की सात प्रकृतियां (स्थावर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति) जिन नाम के सिवाय सात प्रत्येक प्रकृतियां (पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात), त्रसदशक में से चार प्रकृतियां (त्रसनाम, बादरनाम, प्रत्येकनाम, पर्याप्तनाम), नीचगोत्र और अशुभविहायोगति, ये बीस प्रकृतियां तिर्यंचगति की तरह सागरोपम के सातिया दो भाग, उत्कृष्ट २०कोटि–कोटि सागरोपम से कहना।

त्रसदशक की छह प्रकृतियां (स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्ति), उच्चगोत्र और शुभविहायोगति, इन आठ प्रकृतियों में से यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, ये दो प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य आठ मुहूर्त की और शेष छह प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया एक भाग की यानी १/७ सागरोपम की बांधता है, उत्कृष्ट आठों प्रकृतियां दश कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल एक हजार वर्षों का है। ये आठों प्रकृतियां एकेन्द्रिय सागरोपम के सातिया एक भाग की यानी १/७ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय २५ सागरोपम के सातिया एक भाग की यानी २५/७ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय ५० सागरोपम के सातिया एक भाग यानी ५०/७ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय १०० सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १००/७

बांधता है तथा पांच निद्रा और असातावेदनीय ये छह प्रकृतियां जघन्य एक सागरोपम के सातिया तीन भाग अर्थात् ३/७ सागरोपम पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधता है। ये २० प्रकृतियां उत्कृष्ट तीस कोटि–कोटि (कोड़ाकोड़ी) सागरोपम की बांधता है, आबाधाकाल×तीन हजार वर्ष का है। एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक ये प्रकृतियां अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय एक सागरोपम के सातिया तीन भाग यानी ३/७ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय २५ सागरोपम के सातिया तीन भाग यानी ७५/७ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय ५० सागरोपम के सातिया तीन भाग यानी १५०/७ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय १०० सागरोपम के सातिया तीन भाग यानी ३००/७ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय १००० सागरोपम के सातिया तीन भाग यानी ३०००/७ सागरोपम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय १४ प्रकृतियां जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और छह प्रकृतियां जघन्य अन्तःकोटि–कोटि सागरोपम (एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम से कुछ कम) की बांधता है और उत्कृष्ट तीस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है। अबाधा काल तीन हजार वर्ष का है।

(२१) सातावेदनीय के दो भेद– साम्परायिक और ईर्यापथिक। ईर्यापथिक सातावेदनीय की स्थिति दो समय की है। साम्परायिक सातावेदनीय की समुच्चय जीव की अपेक्षा जघन्य

× जिस कर्म की जितने कोटि–कोटि सागरोपम की स्थिति होती है, उसका उतने ही सौ वर्ष का अवाधाकाल होता है। जिस कर्म की स्थिति कोटि–कोटि सागरोपम के अन्दर है, उसका अवाधाकाल अन्तर्मुहूर्त का होता है। आयुकर्म का अवाधाकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट करोड़ पूर्व के तीसरे भाग है। (प्रज्ञापना (पन्नवणा) सूत्र, टीका पृष्ठ ४७८,४७९)

सागरोपम की, असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १०००/७ सागरोपम की बांधते हैं, जघन्य उक्त उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय यश:कीर्ति और उच्चगोत्र जघन्य आठ मुहूर्त की और शेष छह प्रकृतियां जघन्य अन्त:कोटि-कोटि सागरोपम की बांधता है तथा आठों प्रकृतियां उत्कृष्ट दस कोटि-कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल एक हजार वर्षों का है।

११. आहार का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २८वां पद, उद्देशा १)

सच्चित्ताहारट्ठी केवति, किं वा वि सव्वतो चेव।
कतिभागे सव्वे खलु, परिणामे चेव बोद्धव्वे ॥१॥
एगिंदिय सरीरादि लोमाहारी तहेव मणभक्खी।
एतेसिं तु पदाणं, विभावणा होंति कायव्वा ॥२॥

इस थोकड़े में ग्यारह द्वारों से चौबीस दंडक में आहार का वर्णन किया जाता है। ग्यारह द्वार-१. सचित्ताहारी, २. आहारर्थी, ३. कितने काल से आहार की इच्छा होती है ? ४. किन पुद्‌गलों का आहार करते हैं? ५. सभी आत्मप्रदेशों से आहार करते हैं ? ६. ग्रहण किये हुए पुद्‌गलों का कितना भाग आहार करते हैं ? ७. जिन पुद्‌गलों का आहार रूप में ग्रहण करते हैं क्या उन सब का आहार करते हैं ? ८. आहार का परिणाम अर्थात् आहार किस रूप में परिणत होता है ?, ९. क्या एकेन्द्रिय शरीर आदि का आहार करते हैं ?, १०. लोमाहारी या प्रक्षेपाहारी, ११. ओज-आहारी या मनोभक्षी-आहारी।

(१) सचित्ताहारी-क्या नैरयिक सचित्त, अचित या मिश्र का आहार करते हैं? उत्तर-नैरयिक अचित्त का आहार करते हैं, सचित्त

१२ मुहूर्त, उत्कृष्ट पन्द्रह कोटि–कोटि सागरोपम की स्थिति है, अबाधाकाल १५०० वर्षों का है। एकेन्द्रिय के सातावेदनीय की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३/१४ सागरोपम की, उत्कृष्ट ३/१४ सागरोपम की। द्वीन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति २५ सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ७५/१४ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय की ५० सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी १५०/१४ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय की १०० सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३००/१४ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय की एक हजार सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३०००/१४ सागरोपम की है। इनकी जघन्य स्थिति अपनी–अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम है। संज्ञी पंचेन्द्रिय सातावेदनीय बांधे तो जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त की, उत्कृष्ट पन्द्रह कोटि–कोटि सागरोपम की है और अबाधा–काल १५०० वर्षों का है।

(२२–४९) मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियां हैं। समुच्चय जीव, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, ये बारह प्रकृतियां बांधे तो जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया चार भाग यानी ४/७ सागरोपम की, संज्वलन क्रोध की जघन्य दो महीनों की, संज्वलन मान की जघन्य एक महीने की, संज्वलन माया की जघन्य पन्द्रह दिन (एक पक्ष) की और संज्वलन लोभ की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की बांधता है। उत्कृष्ट सोलह प्रकृतियां चालीस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल४००० वर्षों का है। ये १६ प्रकृतियां एकेन्द्रिय उत्कृष्ट सागरोपम के सातिया चार भाग यानी ४/७ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय पच्चीस सागरोपम के सातियाचारभागयानी १००/७ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम के सातिया चार

और मिश्र का आहार नहीं करते। नैरयिक की तरह देवता के तेरह दंडक कहना। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य—औदारिक के ये दस दंडक सचित्त, अचित्त, मिश्र, तीनों प्रकार का आहार करते हैं।

(२) आहारार्थी—क्या नैरयिक में आहार की इच्छा होती है? उत्तर—हां, नैरयिक में आहार की इच्छा होती है। नैरयिक की तरह ही शेष २३ दण्डक में भी आहार की इच्छा होती है।

(३) कितने काल से आहार की इच्छा होती है? आहार दो प्रकार का होता है आभोगनिवर्तित और अनाभोगनिवर्तित। इच्छा पूर्वक किया गया आहार आभोगनिवर्तित है और इच्छा बिना किया गया आहार अनाभोगनिवर्तित है। नैरयिक में आभोगनिवर्तित आहार की इच्छा असंख्यातवें समय से होती है—कम—से—कम अन्तर्मुहूर्त से होती है और अनाभोगनिवर्तित आहार की प्रति समय होती है। असुरकुमार देवों में दोनों प्रकार के आहार की इच्छा होती है। अनाभोगनिवर्तित आहार की इच्छा प्रति समय और आभोगनिवर्तित आहार की जघन्य एक दिन (चतुर्थभक्त) से, उत्कृष्ट एक हजार वर्ष से कुछ अधिक समय से होती है। नागकुमार आदि नवनिकाय के देवों में तथा व्यन्तर देवों में अनाभोगनिवर्तित आहार की इच्छा प्रति समय होती है और आभोगनिवर्तित आहार की जघन्य चतुर्थभक्त, उत्कृष्ट प्रत्येक दिवस (दो से नौ दिन) से होती है। ज्योतिषी देवों में अनाभोगनिवर्तित आहार की इच्छा प्रतिसमय होती है और आभोगनिवर्तित आहार की जघन्य उत्कृष्ट प्रत्येक दिवस से होती है। वैमानिक देवों में अनाभोगनिवर्तित आहार की इच्छा प्रति समय होती है। आभोगनिवर्तित आहार की पहले देवलोक में जघन्य प्रत्येक दिवस, उत्कृष्ट दो हजार वर्ष से, दूसरे देवलोक में जघन्य प्रत्येक दिवस से कुछ अधिक समय से, उत्कृष्ट दो हजार वर्ष से कुछ

भाग यानी २००/७ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के सातिया चार भाग यानी ४००/७ सागरोपम की, असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया चार भाग यानी ४०००/७ सागरोपम की बांधते हैं। जघन्य सभी अपनी, अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय १२ प्रकृतियां जघन्य अन्तः कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, संज्वलन क्रोध की जघन्य दो महीने की, संज्वलन मान की जघन्य एक महिने की, संज्वलन माया की जघन्य पन्द्रह दिन की और संज्वलन लोभ की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की बांधता है। उत्कृष्ट सोलह प्रकृतियां चालीस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता हैं, अबाधाकाल चार हजार वर्षों का है।

समुच्चय जीव हास्य, रति–ये दो प्रकृतियां जघन्य सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १/७ सागरोपम की और पुरुषवेद प्रकृति जघन्य आठ वर्ष की बांधता है। उत्कृष्ट तीनों प्रकृतियों को दस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल एक हजार वर्ष का है। एकेन्द्रिय ये तीनों प्रकृतियां उत्कृष्ट सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १/७ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय पच्चीस सागरोपम के सातिया एक भाग यानी २५/७ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम के सातिया एक भाग यानी ५०/७ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १००/७ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १०००/७ सागरोपम की बांधते हैं। जघन्य सभी अपनी–अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय हास्य और रति जघन्य अन्तः कोटि–कोटि सागरोपम और पुरुषवेद जघन्य आठ वर्ष का बांधता है, उत्कृष्ट तीनों ही प्रकृतियां दस कोटि–कोटि

अधिक समय से, तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक जितने सागरोपम की स्थिति है, उतने ही हजार वर्षों से आहार की इच्छा होती है। पांच स्थावर प्रतिसमय निरन्तर आहार करते हैं। तीन विकलेन्द्रिय में भी दोनों प्रकार के आहार की इच्छा होती है। अनाभोगनिवर्तित आहार की इच्छा प्रतिसमय निरन्तर होती है और आभोगनिवर्तित आहार की जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त से होती है। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में भी दोनों प्रकार के आहार की इच्छा होती है। अनाभोगनिवर्तित आहार की प्रति समय और आभोगनिवर्तित आहार की जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो दिन से होती हैं। मनुष्य में भी अनाभोगनिवर्तित आहार की इच्छा प्रतिसमय होती है और आभोगनिवर्तित आहार की जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन दिन से होती है।

(४) किन पुद्‌गलों का आहार करते हैं ? नैरयिक किन पुद्‌गलों का आहार करते हैं? उत्तर—नैरयिक द्रव्य से अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धों का, क्षेत्र से असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाढ़ का, काल से एक समय, दो समय, तीन समय यावत् दस समय, संख्यात समय और असंख्यात समय की स्थिति का और भाव से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं। वर्ण की अपेक्षा पांचों वर्ण वाले, गन्ध की अपेक्षा दोनों गन्ध वाले, रस की अपेक्षा पांचों रस वाले और स्पर्श की अपेक्षा आठों स्पर्श वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं। वर्ण से काले वर्ण के लेते हैं तो एक गुण काले वर्ण के, दो गुण काले वर्ण के, तीन गुण काले वर्ण के यावत् दस गुण काले वर्ण के, संख्यात गुण काले वर्ण के, असंख्यात गुण काले वर्ण के और अनन्त गुण काले वर्ण के पुद्‌गलों का आहार करते हैं। काले वर्ण की तरह शेष चार वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श के कहें। इस तरह वर्ण,गन्ध, रस और स्पर्श के २०×१३ = २६०

अधिक, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है। तिर्यंच तिर्यंचायु और मनुष्यायु बांधता है तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है। तिर्यंच देवायु बांधता है तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट अठारह सागरोपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है। मनुष्य यदि नरकायु और देवायु बांधता है तो जघन्य प्रत्येक मास अधिक दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है। मनुष्य यदि मनुष्यायु और तिर्यंचायु बांधता है तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की बांधता है।

(५४–१४८)–नामकर्म की ९३ और गोत्रकर्म की २ प्रकृतियों का बंध, नरकगति, नरकानुपूर्वी और वैक्रियचतुष्क (वैक्रियशरीर, वैक्रिय–अंगोपांग, वैक्रियबंधन, वैक्रियसंघात) ये छह प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के सातिया दो भाग यानि२०००/७ सागरोपम की, उत्कृष्ट बीस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल दो हजार वर्षों का है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव ये छह प्रकृतियां नहीं बांधते। असंज्ञी पंचेन्द्रिय ये छह प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के सातिया दो भाग यानी २०००/७ सागरोपम की, उत्कृष्ट पूरे २०००/७ सागरोपम की बांधता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये छह प्रकृतियां जघन्य अन्तःकोटि–कोटि सागरोपम, की उत्कृष्ट बीस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल दो हजार वर्षों का है। देवगति, देवानुपूर्वी ये दो प्रकृतियां समुच्चय जीव बांधता है तो जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के सातिया एक भाग

बोल हुए। अवगाढ़, अनन्तरावगाढ़, सूक्ष्म, बादर, ऊंचे, नीचे, तिर्छे, आदि, मध्य, अन्त स्वविषय (स्वोचित आहारयोग्य) आनुपूर्वी और नियमपूर्वक छह दिशा के ग्रहण करते हैं। द्रव्य का एक, क्षेत्र का एक, काल के बारह, भाव के २६० और स्पृष्ट आदि १४ बोल, ये सब मिलाकर २८८ बोल (१+१+१२+२६०+१४ = २८८) हुए।

नैरयिक अधिकतर अशुभ वर्ण (काले, नीले), अशुभ गन्ध (दुरभिगन्ध) वाले, अशुभ रस (तीखे, कड़वे) अशुभ स्पर्श (कर्कश, गुरु, शीत, रूक्ष, स्पर्श) वाले पुद्‌गलों का आहार लेते हैं। उन ग्रहण किये हुए पुद्‌गलों के पुराने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का नाश करके दूसरे अपूर्व अशुभ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श उत्पन्न करके फिर ग्रहण किये हुए पुद्‌गलों का आहार करते हैं। अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अतृप्तिकर, अनीप्सित, अनभिलषित, गुरु और दुःखरूप से परिणत करके अपने शरीर क्षेत्र में रहे हुए पुद्‌गलों का सभी आत्मप्रदेशों से आहार करते हैं। इसी तरह देवता के १३ दंडक में भी उपरोक्त २८८ बोल का आहार लेना कहना। किन्तु देवता अधिकतर शुभ वर्ण (पीले, सफेद), शुभ गन्ध (सुरभिगन्ध), शुभ रस (खट्टे, मीठे) और शुभ स्पर्श (कोमल, लघु, स्निग्ध, उष्ण) वाले पुद्‌गलों को ग्रहण करते हैं। ग्रहण किए हुए पुद्‌गलों के पुराने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का नाश करके और दूसरे अपूर्व शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श उत्पन्न करके तथा उन्हें इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ, तृप्तिकर, अभीप्सित, अभिलषणीय, लघु और सुख रूप से परिणत करके अपने शरीरक्षेत्र में रहे हुए पुद्‌गलों का सभी आत्मप्रदेशों से आहार करते हैं।

पृथ्वीकाय आदि औदारिक के दस दण्डक वर्णादिक २० बोल के पुद्‌गलों को ग्रहण करके, यदि वे शुभ हों तो उन्हें अशुभ करके और यदि वे अशुभ हों तो उन्हें शुभ करके अपने शरीरक्षेत्र

यानि १०००/७ सागरोपम की, उत्कृष्ट दस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल हजार वर्षों का है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ये दो प्रकृतियां नहीं बांधते। असंज्ञी पंचेन्द्रिय ये दोनों प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी१०००/७ सागरोपम की,उत्कृष्ट पूरे१०००/७ सागरोपम की बांधता है।संज्ञी पंचेन्द्रिय ये दोनों प्रकृतियां जघन्य अन्तः कोटि–कोटि सागरोपम की, उत्कृष्ट दस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल हजार वर्ष का है।

समुच्चय जीव मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३/१४ सागरोपम की, उत्कृष्ट पन्द्रह कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्षों का है। एकेन्द्रिय जीव ये दोनों प्रकृतियां उत्कृष्ट सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३/१४ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय पच्चीस सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ७५/१४ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय पचास सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी १५०/१४ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३००/१४ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया डेढ़ भाग यानी ३०००/१४ सागरोपम की बांधते हैं और जघन्य अपनी–अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये दोनों प्रकृतियां जघन्य अंतःकोटि–कोटि सागरोपम की, उत्कृष्ट पन्द्रह कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है। अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्षों का है।

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, औदारिक–चतुष्क (औदारिकशरीर, औदारिक–अंगोपांग, औदारिकबंधन,

में रहे हुए उक्त २८८ बोल के पुद्गलों को सभी आत्मप्रदेशों से ग्रहण कर आहार करते हैं। किन्तु पांच स्थावर व्याघात और निर्व्याघात से आहार लेते हैं। जब व्याघात से आहार लेते हैं तो कभी तीन दिशा का, कभी चार दिशा का और कभी पांच दिशा का आहार ग्रहण करते हैं। निर्व्याघात से वे छहों दिशा का आहार लेते हैं। २५×२८८ = ७२००।

(५) क्या सभी आत्मप्रदेशों से आहार करते हैं? क्या नैरयिक सभी आत्मप्रदेशों से—१. आहार लेते हैं, २. परिणमाते हैं यानी पचाते हैं, ३. उच्छ्वास लेते हैं, ४. निःश्वास छोड़ते हैं, ५. पर्याप्त की अपेक्षा बार—बार आहार लेते हैं, ६. बार—बार पचाते हैं, ७. बार—बार उच्छ्वास लेते हैं, ८. बार—बार निःश्वास छोड़ते हैं, ९. अपर्याप्त की अपेक्षा कदाचित् आहार लेते हैं, १०. कदाचित् आहार पचाते हैं, ११. कदाचित् श्वास लेते हैं, १२. कदाचित् निःश्वास छोड़ते हैं ? उत्तर—हाँ, नैरयिक बारह बोल करते हैं। इसी तरह शेष २३ दण्डक में भी बारह—बारह बोल कहना। २४×१२ = २८८ ।

(६) ग्रहण किये हुए पुद्गलों का कितना भाग आहार करते हैं और कितना भाग आस्वाद करते हैं? क्या नैरयिक आहार रूप में ग्रहण किये हुए सभी पुद्गलों का आहार करते हैं और आस्वाद करते हैं ? उत्तर—नहीं, नैरयिक आहार रूप में ग्रहण किए हुए सभी पुद्गलों का आहार नहीं करते और आस्वाद नहीं करते किन्तु उनके असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वाद करते हैं। जिन पुद्गलों का आहार नहीं करते वे पुद्गल बिना आहार किये नष्ट हो जाते हैं। आहार किये हुए जिन पुद्गलों का आस्वाद नहीं करते वे बिना आस्वाद किये ही शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं। इसी तरह शेष २३ दण्डक कहना। पांच स्थावर के सिर्फ स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है। अतः उनमें मुंह से आहार करना

औदारिकसंघात), तैजसत्रिक (तैजसशरीर, तैजसबंधन, तैजसंघात) कार्मणत्रिक (कार्मणशरीर, कार्मणबंधन, कार्मणसंघात), चार अशुभ स्पर्श (कर्कश, भारी, शीत, रूक्ष) और दुरभिगंध ये १९ प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया दो भाग यानी २/७ सागरोपम की, उत्कृष्ट बीस कोटि-कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल दो हजार वर्षों का है। ये १९ प्रकृतियां एकेन्द्रिय उत्कृष्ट सागरोपम के सातिया दो भाग यानी २/७ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम के सातिया दो भाग यानी ५०/७ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय उत्कृष्ट पचास सागरोपम के सातिया दो भाग यानी १००/७ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय उत्कृष्ट सौ सागरोपम के सातिया दो भाग यानी २००/७ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय उत्कृष्ट हजार सागरोपम के सातिया दो भाग यानी २०००/७ सागरोपम की बांधते हैं। ये सभी जघन्य अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये १९ प्रकृतियां जघन्य अंतः कोटि-कोटि सागरोपम की, उत्कृष्ट बीस कोटि-कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल दो हजार वर्षों का है।

तीनं विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) सूक्ष्मत्रिक (सूक्ष्मनाम, साधारणनाम, अपर्याप्तनाम) ये छह प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी ९/३५ सागरोपम की, उत्कृष्ट अठारह कोटि-कोटि सागरोपम की बांधता है। अबाधाकाल अठारह सौ वर्षों का है। ये छह प्रकृतियां एकेन्द्रिय बांधता है तो उत्कृष्ट एक सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी ९/३५ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय २५ सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी ४५/७ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय ५० सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी ९०/७

नहीं कहना, किन्तु स्पर्शनेन्द्रिय से ग्रहण करना कहना।

(७) जिन पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं क्या उन सभी का आहार करते हैं या सभी का आहार नहीं करते? ऊपर जो असंख्यातवें भाग का आहार करना कहा है, उन्हीं असंख्यातवें भाग के पुद्गलों को यहां आहार रूप में ग्रहण किये हुए समझना। क्या नैरयिक आहार रूप में ग्रहण किये हुए सभी पुद्गलों का आहार करते हैं या सभी का आहार नहीं करते? उत्तर—नैरयिक जो पुद्गल आहार रूप में ग्रहण करते हैं, उन सभी का आहार करते हैं, कोई भी पुद्गल आहार करने से बचते नहीं हैं। नैरयिक की तरह देवता के तेरह दण्डक और पांच स्थावर के पांच दण्डक, अठारह दण्ड कहना। तीन विकलेन्द्रिय में दो प्रकार का आहार होता है—लोमाहार और प्रक्षेपाहार। लोमाहार रूप से ये जिन पुद्गलों को ग्रहण करते हैं, उन सभी का बिना कुछ छोडे आहार करते हैं। द्वीन्द्रिय प्रक्षेपाहार में ग्रहण किये हुए पुद्गलों में से असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और बहुत से असंख्यात भाग बिना स्पर्श किये, बिना स्वाद लिये ही नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय भी कहना, किन्तु इसमें बहुत से असंख्यात भाग का बिना स्पर्श किये, बिना स्वाद लिये और बिना गन्ध लिये ही नष्ट हो जाता है। तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य त्रीन्द्रिय की तरह कहना। द्वीन्द्रिय में अनास्वादित (बिना स्वाद लिये) पुद्गल सब से थोड़े, अस्पृष्ट (बिना स्पर्श किये हुए) पुद्गल अनन्तगुणा। त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य में बिना गन्ध लिये हुए पुद्गल सब से थोड़े, अनास्वादित पुद्गल अनन्तगुणा और अस्पृष्ट पुद्गल अनन्तगुणा।

(८) आहार परिणाम अर्थात् आहार किस रूप में परिणत होता है?—नैरयिक जिन पुद्गलों का आहार करते हैं वे किस रूप

सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी १८०/७ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के पैंतीसिया नव भाग यानी १८००/७ सागरोपम की बांधते हैं और जघन्य अपनी–अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये छहों प्रकृतियां जघन्य अंतः कोटि–कोटि सागरोपम की, उत्कृष्ट अठारह कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल अठारह सौ वर्षों का है।

चार शुभ स्पर्श (कोमल,लघु,उष्ण,स्निग्ध) और सुरभिगंध ये पांच प्रकृतियां समुच्चय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १/७ सागरोपम की, उत्कृष्ट दस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल एक हजार वर्षों का है। पांच प्रकृतियां एकेन्द्रिय उत्कृष्ट सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १/७ सागरोपम की, द्वीन्द्रिय पच्चीस सागरोपम के सातिया एक भाग यानी २५/७ सागरोपम की, त्रीन्द्रिय ५० सागरोपम के सातिया एक भाग यानी ५०/७ सागरोपम की, चतुरिन्द्रिय सौ सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १००/७ सागरोपम की और असंज्ञी पंचेन्द्रिय हजार सागरोपम के सातिया एक भाग यानी १०००/७ सागरोपम की बांधते हैं और जघन्य अपनी–अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पांचों प्रकृतियां जघन्य अंतःकोटि–कोटि सागरोपम की, उत्कृष्ट दस कोटि–कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल हजार वर्षों का है।

आहारकचतुष्क (आहारकशरीर, आहारक–अंगोपांग, आहारकबंधन, आहारकसंघात) और जिननाम,ये पांच प्रकृतियां समुच्चय जीव और संज्ञी पंचेन्द्रिय जघन्य उत्कृष्ट अंतः–कोटि–कोटि सागरोपम की बांधते हैं, अबाधाकाल नहीं है।

में परिणात होते हैं? उत्तर--नैरयिक जिन पुद्गलों का आहार करते हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय रूप में अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अतृप्तिकर, अनीप्सित (अनिच्छनीय), अनभिलषित रूप से परिणत होते हैं। ये पुद्गल नैरयिक में गुरु परिणाम से परिणत होते हैं किन्तु लघु परिणाम से परिणत नहीं होते, दुःख रूप से परिणत होते हैं किन्तु सुख रूप से परिणत नहीं होते। देवता के तेरह दंडक में आहार की परिणति नैरयिक से विपरीत कहना। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य में आहार की परिणति उनमें पाई जाने वाली इन्द्रियों के रूप में नानारूप से होती है अर्थात् इष्ट--अनिष्ट, कान्त--अकान्त यावत् अभिलषित--अनभिलषित रूप से, गुरु --लघु रूप से तथा सुख और दुःख रूप से आहार परिणत होता है।

(९) क्या एकेन्द्रिय शरीर आदि का आहार करते हैं? क्या नैरयिक एकेन्द्रियशरीर आदि का आहार करते हैं? उत्तर--नैरयिक पूर्वभव यानी पूर्व पर्याय की अपेक्षा एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय के शरीर का अर्थात् एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय द्वारा छोड़े हुए शरीर का आहार करते हैं। वर्तमान पर्याय की अपेक्षा पंचेन्द्रिय शरीर का आहार करते है। वर्तमान में नैरयिक का पंचेन्द्रिय शरीर है और आहार रूप में ग्रहण किये हुए पुद्गल पंचेन्द्रियशरीर रूप में परिणत होते हैं, इसलिये वे पुद्गल भी पंचेन्द्रियशरीर कहलाते हैं। इसी तरह पंचेन्द्रिय के १६ दंडक कहना। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय भी इसी तरह कहना। पर इतना अन्तर है कि इनमें वर्तमान पर्याय की अपेक्षा अपने-अपने एकेन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय शरीर का आहार लेना कहना अर्थात् एकेन्द्रिय (पांच स्थावर) में एकेन्द्रियशरीर का आहार लेना, द्वीन्द्रिय में द्वीन्द्रियशरीर का आहार लेना, त्रीन्द्रिय में त्रीन्द्रियशरीर का आहार लेना और चतुरिन्द्रिय में चतुरिन्द्रियशरीर

पांच वर्ण (काला, नीला, लाल, पीला, और श्वेत), पांच रस (तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा)—ये दसों प्रकृतियां समुच्चय जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया चार भाग, पांच भाग, छह भाग, सात भाग और आठ भाग यानी ४/२८, ५/२८, ६/२८, ७/२८ और ८/२८ सागरोपम की, उत्कृष्ट १० कोटि—कोटि सागरोपम की, १२ ।। कोटि—कोटि सागरोपम की, १५ कोटि—कोटि सागरोपम की १७ ॥ कोटि—कोटि सागरोपम की और २० कोटि—कोटि सागरोपम की बांधता है, अबाधाकाल हजार, साढ़े बारह सौ, पन्द्रह सौ, साढ़े सत्रह सौ और दो हजार वर्ष का है। यह स्थिति पश्चानुपूर्वी से × कही गई है। एकेन्द्रिय ये दस प्रकृतियां उत्कृष्ट सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग की, द्वीन्द्रिय पचीस सागरोपम के अठाईसिया चार भाग यावत् आठ भाग

× जैसे समुच्चय जीव श्वेत वर्ण, मीठा रस, ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया चार भाग की, उत्कृष्ट दस कोटि—कोटि सागरोपम की वांधता है, अवाधाकाल हजार वर्षों का है। समुच्चय जीव पीलावर्ण और खट्टारस, ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया पांच भाग की, उत्कृष्ट साढ़े वारह कोटि—कोटि सागरोपम की वांधता है, अवाधाकाल साढ़े वारह सौ वर्षों का है। समुच्चय जीव लालवर्ण और कषैलारस, ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया छह भाग की, उत्कृष्ट पन्द्रह कोटि—कोटि सागरोपम की वांधता है, अवाधाकाल पन्द्रह सौ वर्षों का है। समुच्चय जीव नीलावर्ण और कड़वा रस, ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया सात भाग की, उत्कृष्ट साढ़े सत्रह कोटि—कोटि सागरोपम की वांधता है, अवाधाकाल साढ़े सत्रह सौ वर्षों का है। समुच्चय जीव कालावर्ण और तीखारस, ये दो प्रकृतियां जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अठाईसिया आठ भाग की, उत्कृष्ट वीस कोटि—कोटि सागरोपम की वांधता है, अवाधाकाल दो हजार वर्षों का है।

का आहार लेना कहना।

(१०) लोमाहारी या प्रक्षेपाहारी—क्या नैरयिक लोमाहारी हैं या प्रक्षेपाहारी हैं? उत्तर—नैरयिक लोमाहारी—लोमाहार करने वाले हैं, प्रक्षेपाहरी (कवल—आहारी) नहीं हैं। नैरयिक की तरह देवता के १३ दण्डक और पांच स्थावर भी लोमाहारी हैं। तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यचपंचेन्द्रिय और मनुष्य लोमाहार और प्रक्षेपाहार—दोनों आहार करते हैं।

(११) ओज—आहारी या मनोभक्षी—आहारी—उत्पत्तिदेश में जो आहार योग्य पुद्गलों का समूह है, उसका आहार करने वाले ओज—आहारी कहलाते हैं तथा मन से आहार करने वाले मनोभक्षीः आहारी कहलाते हैं। मनोभक्षी—आहारी में ऐसी शक्ति होती है कि वे मन से अपने शरीर को पुष्ट करने वाले पुद्गलों का आहार करते हैं और आहार करने के पश्चात् वे तृप्ति रूप परम सन्तोष का अनुभव करते हैं। नैरयिक ओज—आहारी हैं, वे मनोभक्षी—आहारी नहीं होते। औदारिक के दस दण्डक भी ओज—आहारी हैं। देवता के तेरह दण्डक ओज—आहारी हैं (उत्पन्न होने के समय) और मनोभक्षी—आहारी भी हैं।

१२. आहार का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २८ वां पद, दूसरा उद्देशा)

आहार भविय सण्णी लेसा दिट्ठी य संजय कसाए।
णाणे जोगुवओगे, वेदे य सरीर पज्जत्ती॥

इस थोकड़े में तेरह द्वारों से आहार का वर्णन किया जायेगा। तेरह द्वार ये हैं— १. आहार, २. भव्य, ३. संज्ञी, ४. लेश्या, ५. दृष्टि, ६. संयत, ७. कषाय, ८. ज्ञान, ९. योग, १०. उपयोग, ११. वेद, १२. शरीर, १३. पर्याप्ति।

[१] आहारद्वार--समुच्चय जीव और चौबीस दंडक, एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक और कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय उन्नीस दण्डक में तीन भंग होते हैं--१. सभी आहारक होते हैं, २. आहारक बहुत और अनाहारक एक, ३. आहारक बहुत और अनाहारक बहुत । समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी होते हैं । इनमें भांगे नहीं बनते । सिद्ध एक और अनेक की अपेक्षा अनाहारक होते हैं ।

[२] भव्य [भवसिद्धिक] द्वार--समुच्चय भव्य जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है । समुच्चय भव्य जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय १९ दण्डक के बहुत जीव की अपेक्षा ऊपर कहे अनुसार तीन भंग होते हैं । समुच्चय भव्य जीव और एकेन्द्रिय में बहुत जीवों की अपेक्षा भंग नहीं होते । ये आहारक और अनाहारक दोनों होते हैं । भव्य की तरह अभव्य कहना । नोभव्य--नोअभव्य में जीव और सिद्ध भगवान् हैं । ये एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

[३] संज्ञीद्वार--समुच्चय संज्ञी जीव और एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के सिवाय १६ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है । समुच्चय संज्ञी जीव और १६ दण्डक में बहुत जीव की अपेक्षा तीन भंग कहना। असंज्ञी समुच्चय जीव और ज्योतिषी और वैमानिक के सिवाय २२ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है। बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय असंज्ञी जीव और एकेन्द्रिय में भंग नहीं होता। वे आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं । असंज्ञी विकलेन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय में बहुत जीव की अपेक्षा

जानते नहीं हैं पर देखते हैं और कई जानते नहीं हैं और देखते भी नहीं हैं। तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य में–१. कई आहार के पुद्‌गलों को जानते हैं और देखते हैं, २. कई जानते हैं पर देखते नहीं हैं, ३. कई जानते नहीं हैं पर देखते हैं और ४. कई जानते भी नहीं हैं और देखते भी नहीं हैं। वैमानिक देव जिन आहार के पुद्‌गलों को ग्रहण करते हैं, क्या वे उन्हें जानते हैं और देखते हैं? वैमानिक देव के दो भेद–मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसम्यग्दृष्टि। मायीमिथ्यादृष्टि वैमानिक देव आहार के पुद्‌गलों को जानते–देखते नहीं हैं। अमायीसम्यग्दृष्टि वैमानिक देव के दो भेद–अनन्तरोपपन्नक (प्रथमसमयोत्पन्न) और परंपरोपपन्नक (अप्रथमसमयोत्पन्न)। इनमें अनन्तरोपपन्नक जानते–देखते नहीं हैं। परम्परोपपन्नक के दो भेद–अपर्याप्त और पर्याप्त, इनमें अपर्याप्त जानते–देखते नहीं हैं। पर्याप्त के दो भेद–उपयोगसहित और उपयोगरहित, इनमें उपयोगरहित जानते–देखते नहीं हैं और उपयोगसहित जानते भी हैं और देखते भी हैं।

(४) अध्यवसाय (अज्झवसान) द्वार–नैरयिक में असंख्यात अध्यवसाय होते हैं और ये अध्यवसाय प्रशस्त भी होते हैं और अप्रशस्त भी होते हैं। इसी तरह शेष २३ दण्डक कहना।

(५) सम्यक्त्व–अभिगमद्वार–क्या नैरयिक सम्यक्त्व, मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले होते हैं? उत्तर–हां, नैरयिक सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले होते हैं। नैरयिक की तरह देवता के १३ दण्डक, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य भी सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले होते हैं। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले होते हैं।

तीन भंग होते हैं । असंज्ञी नैरयिक, दस भवनपति, व्यन्तर और मनुष्य में बहुत जीव की अपेक्षा छह भंग होते हैं – १. आहारक बहुत, २. अनाहारक बहुत, ३. आहारक एक, अनाहारक एक, ४. आहारक एक, अनाहारक बहुत, ५. आहारक बहुत, अनाहारक एक, ६. आहारक बहुत, अनाहारक बहुत । नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी, केवली और सिद्ध होते हैं। नोसंज्ञी– नोअसंज्ञी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक और कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी समुच्चय जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं । नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी मनुष्य में बहुत जीव की अपेक्षा तीन भंग कहना । नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी सिद्ध एक जीव की अपेक्षा और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

[४] लेश्याद्वार–सलेश्य समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक और कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा सलेश्य समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष दण्डक में तीन भंग होते हैं । सलेश्य समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में भंग नहीं होता है, वे आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं । कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले समुच्चय जीव और [ज्योतिषी, वैमानिक के सिवाय] २२ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होते हैं कभी अनाहारक होते हैं। बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष दण्डक में तीन भंग कहना। समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में बहुत जीव की अपेक्षा भंग नहीं होता, वे आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं । तेजोलेश्या वाले समुच्चय जीव और १८ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होते हैं कभी अनाहारक होते हैं। बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और

(६) परिचारणाद्वार—१ क्या देवता सदेवी (देवीसहित) और सपरिचार (परिचारणासहित) होते हैं? या २. सदेवी और अपरिचार (परिचारणारहित) होते हैं? या ३. अदेवी और सपरिचार होते हैं? या ४. अदेवी और अपरिचार होते हैं? उत्तर—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के देवता सदेवी और सपरिचार होते हैं। तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक के देवता अदेवी सपरिचार होते हैं। नवग्रैवेयक और अनुत्तरविमान के देवता अदेवी अपरिचार होते हैं।

(७) काय, स्पर्श, रूप, शब्द, और मन सम्बन्धी परिचारणा और अपरिचारणाद्वार—परिचारणा (मैथुनसेवन) पांच प्रकार की होती है—१. काया की परिचारणा, २. स्पर्श की परिचारणा, ३. रूप की परिचारणा, ४. शब्द की परिचारणा और ५. मन की परिचारणा।

भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक के देवता काया की परिचारणा वाले होते हैं, तीसरे, चौथे देवलोक के देवता स्पर्श की परिचारणा वाले, पांचवें, छठे देवलोक के देवता रूप की परिचारणा वाले, सातवें, आठवें देवलोक के देवता शब्द की परिचारणा वाले, नवें से बारहवें देवलोक के देवता मन की परिचारणा वाले होते हैं। नवग्रैवेयक और अनुत्तरविमान के देवों में परिचारणा नहीं होती।

काया की परिचारणा वाले देवों के मन में जब परिचारणा की इच्छा उत्पन्न होती है तो देवियां उस इच्छा को जानकर वस्त्र, आभूषण शृंगार से शोभित, मनोज्ञ, मनोहर, मनोरम उतरवैक्रिय रूप बनाकर देवों के सामने उपस्थित होती हैं। देवता इन देवियों के साथ मनुष्य की तरह काया से परिचारणा करते हैं। देवता के शुक्र [वीर्य] पुद्गल देवियों में संक्रान्त होकर श्रोत्र, नासिका, रसना और

असुरकुमार आदि १५ दण्डक में तीन भंग कहना । पृथ्वी, पानी, वनस्पति में छह भंग (संज्ञीद्वार में कहे अनुसार) कहना । पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले समुच्चय जीव और तीन दण्डक (तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य और वैमानिक) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा इनमें तीन भंग कहना । अलेश्य समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं ।

[५] दृष्टिद्वार—सम्यग्दृष्टि समुच्चय जीव और १९ दण्डक (पांच स्थावर छोड़कर) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि समुच्चय जीव और १६ दण्डक में तीन भंग कहना और विकलेन्द्रिय में छह भंग कहना । सिद्ध भगवान् एक की अपेक्षा और बहुत की अपेक्षा अनाहारक होते हैं । मिथ्यादृष्टि समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है । बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय १९ दण्डक में तीन भंग कहना ।समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में भंग नहीं बनता, ये आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) समुच्चय जीव और सोलह दण्डक (पंचेन्द्रिय के) एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं।

[६] संयतद्वार—समुच्चय जीव और मनुष्य, एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और मनुष्य में तीन भंग कहना ।संयतासंयत समुच्चय जीव तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं होते। असंयत समुच्चय जीव और चौबीस दंडक एक जीव की अपेक्षा कभी

स्पर्शनेन्द्रिय रूप में इस तरह परिणत होते हैं कि वे इष्ट, कान्त, मनोज्ञ, अतिशय मनोज्ञ तथा रूप, यौवन, लावण्य गुणों से सुभग– सभी को प्रिय लगती हैं । इसी तरह स्पर्श की परिचारणा वाले देवों के लिये कहना । स्पर्शपरिचारणा में परस्पर आलिंगन, मर्दन आदि रूप स्पर्श होता है । स्पर्शपरिचारणा तथा आगे कही जाने वाली रूपपरिचारणा, शब्दपरिचारणा और मनपरिचारणा में देवियों में दिव्य प्रभाव से देवता के शुक्र पुद्गल संक्रान्त होते हैं । स्पर्शपरिचारणा की तरह रूपपरिचारणा कहना । रूपपरिचारणा में देवियां देवता के स्थान पर उपस्थित होती हैं और देवों के न समीप और न दूर रहकर अपना रूप दिखाती हैं । रूपपरिचारणा में परस्पर सविलास दृष्टिविक्षेप, अंग–प्रत्यंग प्रदर्शनादि द्वारा तृप्ति अनुभव करते हैं । शब्दपरिचारणा में भी देवियां देवता के स्थान पर आकर देवों के न समीप न दूर रह कर मधुर मन में आनन्द उत्पन्न करने वाले अनुपम उच्च–नीच शब्द बोलती हैं तब देवता देवियों के साथ शब्दपरिचारणा करते हैं । मनपरिचारणा वाले देवों के मन में जब मनपरिचारणा की इच्छा होती है तो देवियां उनकी इच्छा जान कर यावत् उत्तर वैक्रिय कर अपने स्थान पर ही परम सन्तोषजनक अनुपम उच्च–नीच मनोभाव धारणा किये रहती हैं, तब देवता उन देवियों के साथ मनपरिचारणा करते हैं ।

अल्पबहुत्व–१. सब से थोड़े देवता परिचारणा नहीं करने वाले, २. मनपरिचारणा करने वाले देवता संख्यातगुणा, ३. शब्दपरिचारणा वाले देवता असंख्यातगुणा, ४. रूपपरिचारणा करने वाले देवता असंख्यातगुणा, ५. स्पर्शपरिचारणा करने वाले देवता असंख्यातगुणा, ६. कायपरिचारणा करने वाले देवता असंख्यातगुणा ।

आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। नोसंयत—नोअसंयत—नोसंयतासंयत समुच्चय जीव और सिद्ध भगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

[७] कषायद्वार—सकषायी समुच्चय जीव और २४ दण्डक, एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। क्रोधकषायी समुच्चय जीव और २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। देवता के तेरह दण्डक में छह भंग कहना, शेष छह दण्डक में तीन भंग कहना। मानकषायी और मायाकषायी समुच्चय जीव और २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा नैरयिक और देवता में छह भंग कहना, समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष पांच दण्डक में तीन भंग कहना। लोभकषायी समुच्चय जीव और २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। नैरयिक में छह भंग कहना और शेष १८ दण्डक में तीन भंग कहना। अकषायी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव आहारक

१४. सात समुद्घात का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३६वां पद)

वेयणा कसाय मरणे, वेउव्विय तेयए य आहारे ।
केवलिए चेव भवे, जीव मणुस्साण सत्तेव॥

अर्थ–वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक–समुद्घात,वैक्रियसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात, केवलीसमुद्घात –ये सात समुद्घात हैं । समुच्चय जीव और मनुष्य में ये सातों ही समुद्घात पाई जाती हैं ।

इस थोकड़े में आठ द्वारों में समुद्घात का वर्णन किया जाता है– १. नामद्वार, २. कालद्वार, ३. प्राप्तिद्वार, ४. एक जीव की अपेक्षा अतीतकालीन और अनागतकालीन समुद्घात, ५. बहुत जीव की अपेक्षा अतीतकालीन और अनागतकालीन समुद्घात, ६. एक नैरयिक आदि जीव में नैरयिक आदि रूप में अतीत अनागत काल की समुद्धात, ७. बहुत नैरयिक आदि जीवों में बहुत नैरयिक आदि रूप में अतीत और अनागत काल की समुद्घात, ८. अल्पबहुत्वद्वार ।

(१) नामद्वार–१.वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात, ३.मारणान्तिकसमुद्घात,४.वैक्रियसमुद्घात, ५. तैजससमुद्घात, ६. आहारकसमुद्घात, ७. केवलीसमुद्घात। वेदना आदि के साथ एकीभाव अर्थात् तद्रूरूप होकर प्रबलता के साथ असातावेदनीय आदि कर्मो को नाश करना समुद्घात है।

(२) कालद्वार– पहली छह समुद्घात का काल जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का है तथा केवलीसमुद्घात का काल आठ समय का है।

(३) प्राप्तिद्वार–नैरयिक में पहली चार समुद्घात पाई जाती

भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, मनुष्य में तीन भंग कहना। सिद्ध भगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

[८] ज्ञानद्वार–सज्ञानी समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय १९ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और नैरयिक आदि १६ दण्डक में तीन भंग कहना और तीन विकलेन्द्रिय में छह भंग कहना। सिद्ध भगवान् एक और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी समुच्चय जीव और १९ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और १६ दण्डक में तीन भंग कहना और विकलेन्द्रिय में छह भंग कहना। अवधिज्ञानी समुच्चय जीव और १५ दण्डक (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय वर्ज कर) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और पन्द्रह दण्डक में तीन भंग कहना। अवधिज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। मनःपर्ययज्ञानी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। केवलज्ञानी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, मनुष्य में तीन भंग कहना। सिद्धभगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं। समुच्चय अज्ञानी, मति–अज्ञानी और श्रुत–अज्ञानी समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की

हैं। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले से बारहवें देवलोक में पहली पांच समुद्घात पाई जाती हैं। नवग्रैवेयक और अनुत्तरविमान में पहली तीन समुद्घात होती हैं। चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में पहली तीन समुद्घात होती हैं और वायुकाय में पहली चार समुद्घात होती हैं। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में पहली पांच समुद्घात होती हैं और मनुष्य में सातों समुद्घात होती हैं।

(४) एक जीव की अपेक्षा अतीतकालीन और अनागत-कालीन समुद्घात—नरक के एक–एक नैरयिक ने पांच समुद्घात कितनी कीं? उत्तर—नरक के एक–एक नैरयिक ने पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त×कीं और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा उसके जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी।

नैरयिक की तरह शेष २३ दण्डक कहना। एक–एक नैरयिक ने आहारकसमुद्घात कितनी कीं ? उत्तर—एक–एक नैरयिक ने आहारकसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की, उसने जघन्य एक दो, उत्कृष्ट तीन आहारकसमुद्घात कीं । अनागतकाल में भी कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट चार आहारकसमुद्घात करेगा। नैरयिक की तरह ही मनुष्य के सिवाय बाईस दण्डक कह देना। एक–एक मनुष्य ने आहारकसमुद्घात कितनी की? उत्तर—एक–एक मनुष्य ने अतीतकाल में आहारकसमुद्घात किसी ने की, किसी ने नहीं की। जिसने की

×जिस नैरयिक को अव्यवहार राशि से निकले थोड़ा ही समय हुआ है, उसकी अपेक्षा अतीतकालीन समुद्घात संख्यात अथवा असंख्यात भी होती हैं। किन्तु ऐसे नैरयिक थोड़े हैं, इसलिए यहां उनकी विवक्षा न कर अनन्त कही हैं।

अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। विभंगज्ञानी समुच्चय जीव और १४ दण्डक (नैरयिक और देवता के) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है और बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और १४ दण्डक में तीन भंग कहना। विभंगज्ञानी तिर्यंच और मनुष्य एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं।

[९] योगद्वार—सयोगी समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है। बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। काययोगी भी इसी तरह कहना। मनयोगी समुच्चय जीव और १६ दण्डक तथा वचनयोगी समुच्चय जीव और १९ दण्डक एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। अयोगी समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध, एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

[१०] उपयोगद्वार—साकार—उपयोग वाले (सागारोवउत्ता) और अनाकार—उपयोग वाले (अणागारोवउत्ता) समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। सिद्ध भगवान् एक जीव और बहुत की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

[११] वेदद्वार—सवेदी समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और

उसने जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट चार की। अनागतकाल में भी कोई मनुष्य करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट चार करेगा। एक–एक नैरयिक ने केवली–समुद्घात कितनी की? उत्तर–एक–एक नैरयिक ने अतीतकाल में केवलीसमुद्घात नहीं की, अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक केवलीसमुद्घात करेगा। नैरयिक की तरह मनुष्य के सिवाय २२ दण्डक कहना। मनुष्य में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की उसने एक केवलीसमुद्घात की। अनागतकाल में कोई मनुष्य केवलीसमुद्घात करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक केवलीसमुद्घात करेगा।

(५) बहुत जीव की अपेक्षा अतीतकालीन और अनागतकालीन समुद्घात–प्रश्न–नरक में बहुत नैरयिकों ने पांच समुद्घात अतीतकाल में कितनी की और अनागतकाल में कितनी करेंगे? उत्तर–नरक के बहुत नैरयिकों ने पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। इसी तरह २३ दण्डक कहना। नरक के बहुत नैरयिकों ने आहारकसमुद्घात अतीतकाल में असंख्यात की और अनागतकाल में असंख्यात करेंगे। इसी तरह वनस्पति और मनुष्य के सिवाय २१ दण्डक कहना, बहुत से वनस्पति के जीवों ने आहारकसमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत से मनुष्यों ने आहारकसमुद्घात अतीतकाल में कदाचित् संख्यात (गर्भज मनुष्यों की अपेक्षा) और कदाचित् असंख्यात (सम्मूर्छिम मनुष्यों की अपेक्षा) की और अनागतकाल में भी इसी तरह कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात करेंगे। नरक के बहुत नैरयिकों ने केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में

अनाहारक भी होते हैं और शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। स्त्रीवेद, पुरुषवेद समुच्चय जीव और १५ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और पन्द्रह दण्डक में तीन भंग कहना। नपुंसकवेद समुच्चय जीव और ११ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, शेष छह दण्डक में तीन भंग कहना। अवेदी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं और मनुष्य में तीन भंग कहना। सिद्धभगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

[१२] शरीरद्वार—सशरीरी समुच्चय जीव और चौबीस– दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते है, शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। औदारिकशरीर समुच्चय जीव और ९ दण्डक (मनुष्य के सिवाय) एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा तीन भंग कहना। वैक्रियशरीरी समुच्चय जीव और १७ दण्डक तथा आहारकशरीर समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। तैजसशरीरी, कार्मणशरीर समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और

असंख्यात करेंगे। इसी तरह वनस्पति और मनुष्य के सिवाय २१ दण्डक कह देना। बहुत से वनस्पति के जीवों ने केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत से मनुष्यों में किन्हीं ने केवलीसमुद्घात अतीतकाल में की और किन्हीं ने नहीं की, जिन्होंने की उन्होंने जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ की तथा बहुत से मनुष्य केवलीसमुद्घात अनागतकाल में कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात करेंगे।

(६) एक नैरयिक आदि जीव की नैरयिक आदि रूप में अतीत अनागत काल की समुद्घात-प्रश्न-एक-एक नैरयिक जीव ने नैरयिक रूप में अतीतकाल में कितनी समुद्घात की और अनागतकाल में कितनी समुद्घात करेगा, उत्तर-एक-एक नैरयिक ने नैरयिक रूप में चार समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा? कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात अनन्त करेगा।एक-एक नैरयिक ने नैरयिक रूप में अन्तिम तीन समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेगा। एक-एक नैरयिक ने देवता के तेरह दण्डक के रूप में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागत काल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह पहली, तीसरी और पांचवीं समुद्घात जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात अनन्त करेगा तथा दूसरी और चौथी समुद्घात भवनपति, व्यन्तर रूप में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा और ज्योतिषी और वैमानिक रूप में कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा। एक-एक नैरयिक ने देवता के तेरह दण्डक रूप में आहारकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेगा।एक-एक नैरयिक ने चार स्थावर

एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं तथा शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। अशरीरी समुच्चय जीव, सिद्धभगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

(१३) पर्याप्तिद्वार—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पर्याप्त, समुच्चय जीव व चौबीस दण्डक तथा भाषा—मनः* पर्याप्ति पर्याप्त, समुच्चय जीव और १६ दण्डक समुच्चय जीव और मनुष्य के सिवाय एक जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं और बहुत जीव की अपेक्षा भी आहारक होते है। समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा तीन भंग कहना। आहारपर्याप्ति के अपर्याप्त समुच्चय जीव व चौबीस दण्डक एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं। शरीरपर्याप्ति—अपर्याप्त, इन्द्रियपर्याप्ति—अपर्याप्त, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति—अपर्याप्त, समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है कभी अनाहारक होता है। बहुत जीव की अपेक्षा नैरयिक, देव और मनुष्य में छह भंग कहना, समुच्चय जीव

---

* वैसे छह पर्याप्तियां हैं, किन्तु यहां भाषापर्याप्ति और मनः पर्याप्ति अलग-अलग न गिनकर भाषा—मनःपर्याप्ति एक ही गिनी है। इसलिये यहां पांच पर्याप्तियां कही हैं। भाषापर्याप्ति के १९ दण्डक हैं और मनःपर्याप्ति के १६ दण्डक हैं। यहां भाषा—मनःपर्याप्ति एक है इसलिये भाषा—मनःपर्याप्तिपर्याप्त पंचेन्द्रिय के १६ दण्डक ही लिये हैं। भाषापर्याप्ति के आहार के विषय में इस प्रकार समझना—भाषापर्याप्ति—पर्याप्त समुच्चय जीव १९ दण्डक एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। भाषापर्याप्ति—पर्याप्त समुच्चय जीव १९ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है। बहुत जीव की अपेक्षा तीन भंग कहना।

और तीन विकलेन्द्रिय रूप में तीन समुद्घात, वायुकाय रूप में चार समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में पांच समुद्घात और मनुष्य रूप में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नही करेगा, जो करेगा वह एक से लेकर अनन्त करेगा। एक–एक नैरयिक ने मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की उसने जघन्य एक दो, उत्कृष्ट तीन की तथा अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट चार करेगा। एक–एक नैरयिक ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की, अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक करेगा। एक–एक नैरयिक ने चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय रूप में अन्तिम चार समुद्घात, वायुकाय रूप में अन्तिम तीन समुद्घात और तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेगा।

तेरह दण्डक के एक–एक देवता ने अपने स्वस्थान और परस्थान में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नही करेगा, जो करेगा वह स्वस्थान में एक से लेकर अनन्त करेगा और परस्थान में पहली, तीसरी, पांचवी समुद्घात एक से लेकर अनन्त करेगा तथा दूसरी, चौथी समुद्घात भवनपति, व्यन्तर रूप में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा और ज्योतिषी, वैमानिक रूप में कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा। तेरह दण्डक के एक–एक देवता ने स्वस्थान में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेगा। तेरह दण्डक के एक–एक देवता ने नैरयिक रूप में चार समुद्घात

और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष चार दण्डक में तीन भंग कहना, समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय आहारक होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, भाषा–मनःपर्याप्ति–अपर्याप्त समुच्चय जीव और १६ दण्डक (पंचेन्द्रिय के) एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा समुच्चय जीव और तिर्यंचपंचेन्द्रिय में तीन भंग कहना तथा नैरयिक, देव और मनुष्य में छह भंग कहना।

१३. परिचारणा पद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३४ वां पद)

अणंतरागय आहारे, आहारा भोयणा इ य।
पोग्गलानेव जाणंति, अज्झवसाणा य आहिया॥१॥
सम्मत्तस्साहिगमे, तत्तो परियारणा य बोद्धव्वा।
काए फासे रूवे सद्दे य मणे य अप्पबहुं॥२॥

यहां सात द्वारों से परिचारणा का वर्णन किया जाता है—१. अनन्तरागतआहारद्वार, २. आभोग–अनाभोग– आहारद्वार, ३. आहार के पुद्गलों को जानने–देखने का द्वार, ४. अध्यवसायद्वार, ५. सम्यक्त्व–अभिगमद्वार, ६. परिचारणाद्वार, ७. काय, स्पर्श, रूप, शब्द और मन सम्बन्धी परिचारणा अपरिचारणा का अल्पबहुत्वद्वार।

(१) क्या नैरयिक उत्पत्तिक्षेत्र प्राप्ति के साथ ही (अनन्तर) आहार करते हैं, इसके बाद शरीर बनाते हैं, शरीर बनाने के बाद पर्यादान (चारों ओर से पुद्गलों को ग्रहण) करते हैं अर्थात् यथायोग्य अंग–प्रत्यंगों से लोमाहार आदि द्वारा चारों ओर से पुद्गल ग्रहण करते हैं, फिर गृहीत पुद्गलों को इन्द्रिय आदि रूप में परिणत करते हैं, उसके बाद शब्दादि विषयों के भोग रूप परिचारणा करते हैं और

अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह मारणान्तिकसमुद्घात एक से लेकर अनन्त करेगा और बाकी तीन समुद्घात कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा। तेरह दण्डक के एक–एक देवता ने नैरयिक रूप में अन्तिम तीन समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेगा। तेरह दण्डक के एक–एक देवता ने चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में तीन समुद्घात, वायुकाय रूप में चार समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में पांच समुद्घात और मनुष्य रूप में पांच समुद्घात अतीत काल में अनन्त की और अनागत काल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक से लेकर अनन्त तक (एगोत्तरीया) करेगा। तेरह दण्डक के एक–एक देवता ने मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की उसने जघन्य एक दो, उत्कृष्ट तीन की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट चार करेगा। तेरह दण्डक के एक–एक देवता ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक करेगा। तेरह दण्डक के एक–एक देवता ने पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में अन्तिम चार समुद्घात, वायुकाय रूप में अन्तिम तीन समुद्घात और तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेगा।

औदारिक के दस दण्डक के एक–एक जीव ने औदारिक के दस दण्डक के रूप में स्वस्थान परस्थान में अपने–अपने में पाने वाली समुद्घात (आहारकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात के सिवाय) अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा

एकेन्द्रिय आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं तथा शेष १९ दण्डक में तीन भंग कहना। अशरीरी समुच्चय जीव, सिद्धभगवान् एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं।

(१३) पर्याप्तिद्वार—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पर्याप्त, समुच्चय जीव व चौबीस दण्डक तथा भाषा—मन:* पर्याप्ति पर्याप्त, समुच्चय जीव और १६ दण्डक समुच्चय जीव और मनुष्य के सिवाय एक जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं और बहुत जीव की अपेक्षा भी आहारक होते हैं। समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है, बहुत जीव की अपेक्षा तीन भंग कहना। आहारपर्याप्ति के अपर्याप्त समुच्चय जीव व चौबीस दण्डक एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा अनाहारक होते हैं। शरीरपर्याप्ति—अपर्याप्त, इन्द्रियपर्याप्ति—अपर्याप्त, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति—अपर्याप्त, समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है कभी अनाहारक होता है। बहुत जीव की अपेक्षा नैरयिक, देव और मनुष्य में छह भंग कहना, समुच्चय जीव

---

* वैसे छह पर्याप्तियां हैं, किन्तु यहां भाषापर्याप्ति और मन: पर्याप्ति अलग—अलग न गिनकर भाषा—मन:पर्याप्ति एक ही गिनी है। इसलिये यहां पांच पर्याप्तियां कही हैं। भाषापर्याप्ति के १९ दण्डक हैं और मन:पर्याप्ति के १६ दण्डक हैं। यहां भाषा—मन:पर्याप्ति एक है इसलिये भाषा—मन:पर्याप्तिपर्याप्त पंचेन्द्रिय के १६ दण्डक ही लिये हैं। भाषापर्याप्ति के आहार के विषय में इस प्रकार समझना—भाषापर्याप्ति—पर्याप्त समुच्चय जीव १९ दण्डक एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा आहारक होते हैं। भाषापर्याप्ति—पर्याप्त समुच्चय जीव १९ दण्डक एक जीव की अपेक्षा कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है। बहुत जीव की अपेक्षा तीन भंग कहना।

कोई नहीं करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक से लेकर अनन्त तक करेगा। एक–एक मनुष्य ने मनुष्य रूप में आहारक समुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की उसने जघन्य १,२,३, उत्कृष्ट चार की और अनागतकाल में भी कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य १,२,३, उत्कृष्ट ४ करेगा। एक–एक मनुष्य ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की, उसने एक की तथा अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक करेगा। औदारिक के नौ दण्डक (मनुष्य के सिवाय) के एक–एक जीव ने मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की उसने जघन्य १,२, उत्कृष्ट तीन की तथा अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य १,२,३, उत्कृष्ट ४ करेगा। औदारिक के नौ दण्डक (मनुष्य के सिवाय) के एक–एक जीव ने केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की, अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक करेगा। औदारिक के दस दण्डक के एक–एक जीव ने नैरयिक रूप में चार समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की तथा अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह मारणान्तिकसमुद्घात एक से लेकर अनन्त तक करेगा, और तीन समुद्घात कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा। औदारिक के दस दण्डक के एक–एक जीव ने देवता के तेरह दण्डक के रूप में ५ समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह पहली तीसरी पांचवीं समुद्घात एक से लेकर अनन्त करेगा, दूसरी, चौथी समुद्घात भवनपति, व्यन्तर रूप में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा तथा

ज्योतिषी, वैमानिक रूप में कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा। औदारिक के दस दण्डक के एक–एक जीव ने नैरयिक रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, देवता के तेरह दण्डक के रूप में अन्तिम दो समुद्घात, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में अन्तिम चार समुद्घात, वायुकाय रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेगा।

(७) बहुत नैरयिक आदि जीवों में बहुत नैरयिक आदि रूप में अतीत और अनागत काल की समुद्घात—बहुत नैरयिकों में बहुत नैरयिकों के रूप में चार समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की, अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत नैरयिकों ने तेरह दण्डक के बहुत देवों के रूप में पांच समुद्घात, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में तीन समुद्घात, वायुकाय रूप में चार समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य रूप में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत नैरयिकों ने मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में असंख्यात की और अनागतकाल में असंख्यात करेंगे। बहुत नैरयिकों ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की तथा अनागतकाल में असंख्यात करेंगे। बहुत नैरयिकों ने नैरयिक रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, तेरह दण्डक के देवता के रूप में अन्तिम दो समुद्घात, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में अन्तिम चार समुद्घात, वायुकाय रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेंगे।

बहुत तेरह दण्डक के देवता ने अपने स्वस्थान और परस्थान में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और

छहों समुद्घात पाई जाती हैं।

(३) कालद्वार—छहों समुद्घात का काल जघन्य,उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का है।

वेदनासमुद्घात करने वाला जीव वेदनासमुद्घात द्वारा जिन पुद्गलों को अपने शरीर से बाहर निकालता है, उनसे छहों दिशा में शरीरप्रमाण लम्बा—चौड़ा—मोटा क्षेत्र आपूरित (व्याप्त) एवं स्पृष्ट होता है। ये पुद्गल शेष क्षेत्र स्पर्श नहीं करते। * एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रहगति से जीव उक्त क्षेत्र को आपूरित एवं स्पृष्ट करता है। प्रश्न—वेदनासमुद्घात द्वारा कितने काल तक पुद्गलों को बाहर निकालता है ? उत्तर—जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक वेदनासमुद्घात द्वारा जीव पुद्गलों को बाहर निकालता है। आशय यह है कि जो पुद्गल जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक वेदना उत्पन्न करने में समर्थ हैं, उनकी वेदना से दु:खी हुआ जीव शरीर में रहे हुए पुद्गलों को बाहर फेंकता है। बाहर में फेंके गये पुद्गल आत्मप्रदेशों से अलग हो जाते हैं। इन पुद्गलों से प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों का अभिहनन (हिंसा) यावत् प्राणव्यपरोपण (विनाश) होता है एवं वेदनासमुद्घात करने वाले जीव को इन प्राण—भूत—जीव—सत्त्व—विषयक कभी तीन, कभी चार और कभी

---

*वेदनासमुद्घात करने वाला १—२—३ समय प्रमाण काल स्पर्शता है, शेष काल नहीं स्पर्शता, अर्थात् वेदनासमुद्घात का काल अन्तर्मुहूर्त का है, किन्तु कृतकाल १—२—३ समय का है। वेदनासमुद्घात करने के बाद वे पुद्गल शरीर में अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं, बाद में शरीर से अलग होते हैं। ऐसा थोकड़े के जानकर कहते हैं। तत्त्व केवलीगम्य।

कोई नहीं करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक से लेकर अनन्त तक करेगा। एक–एक मनुष्य ने मनुष्य रूप में आहारक समुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की उसने जघन्य १,२,३, उत्कृष्ट चार की और अनागतकाल में भी कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य १,२,३, उत्कृष्ट ४ करेगा। एक–एक मनुष्य ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की, उसने एक की तथा अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक करेगा। औदारिक के नौ दण्डक (मनुष्य के सिवाय) के एक–एक जीव ने मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की उसने जघन्य १,२, उत्कृष्ट तीन की तथा अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य १,२,३, उत्कृष्ट ४ करेगा। औदारिक के नौ दण्डक (मनुष्य के सिवाय) के एक–एक जीव ने केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की, अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह एक करेगा। औदारिक के दस दण्डक के एक–एक जीव ने नैरयिक रूप में चार समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की तथा अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह मारणान्तिकसमुद्घात एक से लेकर अनन्त तक करेगा, और तीन समुद्घात कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा। औदारिक के दस दण्डक के एक–एक जीव ने देवता के तेरह दण्डक के रूप में ५ समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह पहली तीसरी पांचवीं समुद्घात एक से लेकर अनन्त करेगा, दूसरी, चौथी समुद्घात भवनपति, व्यन्तर रूप में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा तथा

पांच क्रियाएं लगती हैं×। उन जीवों को भी वेदनासमुद्घात करने वाले जीव की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। जैसे एक पुरुष को बिच्छू, सर्प आदि ने काट खाया और इस कारण पुरुष ने वेदनासमुद्घात की तो बिच्छू, सर्प आदि को कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। वेदनासमुद्घात करने वाला जीव और वेदनासमुद्घात के पुद्गलों से स्पृष्ट जीव द्वारा परम्परा से अन्य जीवों की घात होती है, उससे वेदनासमुद्घात करने वाले जीव को तथा वेदनासमुद्घात के पुद्गलों से स्पृष्ट जीवों को कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। इसी तरह चौबीस दण्डक कहना। वेदनासमुद्घात की तरह कषायसमुद्घात भी कहना।

मारणान्तिकसमुद्घात द्वारा जीव जो पुद्गल बाहर निकलता है, वे पुद्गल मोटेपन व चौड़ाई में शरीरप्रमाण और लम्बाई में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट असंख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र एक दिशा में स्पृष्ट एवं आपूरित करते हैं। यह

× थोकड़ों के जानकर इस प्रकार कहते हैं–वेदनासमुद्घात करने वाले जीव को कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं, जिसके चार भंग होते हैं–

(१) एक जीव को एक जीव की कभी तीन, कभी चार, कभी पांच क्रियाएं लगती हैं।

(२) एक जीव को बहुत जीवों की कभी तीन, कभी चार, कभी पांच क्रियाएं लगती हैं।

(३) बहुत जीवों को एक जीव की कभी तीन, कभी चार, कभी पांच क्रियाएं लगती हैं।

(४) बहुत जीवों को बहुत जीवों की कभी तीन, कभी चार, कभी पांच क्रियाएं लगती हैं।

ज्योतिषी, वैमानिक रूप में कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा। औदारिक के दस दण्डक के एक–एक जीव ने नैरयिक रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, देवता के तेरह दण्डक के रूप में अन्तिम दो समुद्घात, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में अन्तिम चार समुद्घात, वायुकाय रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेगा।

(७) बहुत नैरयिक आदि जीवों में बहुत नैरयिक आदि रूप में *अतीत और अनागत काल की समुद्घात*—बहुत नैरयिकों में बहुत नैरयिकों के रूप में चार समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की, अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत नैरयिकों ने तेरह दण्डक के वहुत देवों के रूप में पांच समुद्घात, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में तीन समुद्घात, वायुकाय रूप में चार समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य रूप में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत नैरयिकों ने मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में असंख्यात की और अनागतकाल में असंख्यात करेंगे। बहुत नैरयिकों ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की तथा अनागतकाल में असंख्यात करेंगे। बहुत नैरयिकों ने नैरयिक रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, तेरह दण्डक के देवता के रूप में अन्तिम दो समुद्घात, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में अन्तिम चार समुद्घात, वायुकाय रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेंगे।

वहुत तेरह दण्डक के देवता ने अपने स्वस्थान और परस्थान में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और

क्षेत्र एक दो तीन अथवा चार समय+की विग्रहगति से स्पृष्ट एवं आपूरित करता है। मारणान्तिकसमुद्घात में जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का काल लगता है। मारणान्तिकसमुद्घात से बाहर निकले हुए पुद्गलों से प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का अभिहनन यावत् प्राणव्यपरोपण तथा उससे तीन, चार, पांच क्रियाएं लगना आदि सभी अधिकार वेदनासमुद्घात की तरह कह देना चाहिये।

नैरयिक मारणान्तिकसमुद्घात कर जो पुद्गल बाहर निकालता है, वे पुद्गल मोटेपन और चौड़ाई में शरीरप्रमाण एवं लम्बाई में जघन्य एक हजार योजन से कुछ अधिक, उत्कृष्ट असंख्यात योजन का क्षेत्र एक दिशा में स्पृष्ट एवं आपूरित करते हैं। यह क्षेत्र एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रहगति से स्पृष्ट एवं आपूरित करते हैं। बाकी सभी बोल समुच्चय जीव की तरह कहना। देवता के तेरह दण्डक, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य, समुच्चय जीव की तरह कहना। अन्तर इतना है कि इन में एक समय, दो समय और तीन समय की विग्रहगति कहना। चार समय की विग्रहगति नहीं कहना। पांच स्थावर समुच्चय जीव की तरह कहना।

समुच्चय जीव वैक्रियसमुद्घात करके जो पुद्गल बाहर निकालता है, वे मोटेपन और चौड़ाई में शरीरप्रमाण और लम्बाई में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट संख्यात योजन का क्षेत्र एक दिशा अथवा विदिशा (कोण) में एक दो अथवा तीन समय की विग्रहगति से स्पृष्ट और आपूरित करते हैं, शेष क्षेत्र और काल का स्पर्श नहीं करते। वैक्रियसमुद्घात में जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त

+ विग्रहगति पांच समय की भी सम्भव है किन्तु कदाचित् होने से उसकी यहां विवक्षा नहीं की है। [टीका पृष्ठ ५९४]

अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत तेरह दण्डक के देवता ने नैरयिक रूप में चार समुद्घात, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में तीन समुद्घात, वायुकाय रूप में चार समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य रूप में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत तेरह दण्डक के देवों ने मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में असंख्यात की और अनागताकाल में असंख्यात करेंगे। बहुत तेरह दंडक के देवों ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीत काल में नहीं की, अनागतकाल में असंख्यात करेंगे। बहुत तेरह दण्डक के देवों ने नैरयिक रूप में अन्तिम तीन समुद्घात, तेरह दण्डक के देवता के रूप मे अन्तिम दो समुद्घात, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में अन्तिम चार समुद्घात, वायुकाय रूप में अन्तिम तीन समुद्घात और तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेंगे।

बहुत औदारिक के दस दंडक के जीवों ने स्वस्थान, परस्थान में चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय रूप में तीन समुद्घात, वायुकाय रूप में चार समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय रूप में और मनुष्य रूप में पांच–पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत से मनुष्यों में मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात की और अनागतकाल में भी कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात करेंगे। बहुत से मनुष्यों ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में किसी ने की, किसी ने नहीं की, जिसने की उसने जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ की, अनागतकाल में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात करेंगे। बहुत पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय ने तेईस दण्डक रूप में

का काल लगता हैं। वैक्रियसमुद्घात द्वारा बाहर निकले हुए पुद्गलों से प्राण, भूत, जीव, सत्त्व का अभिहनन यावत् प्राणव्यपरोपण होना आदि सभी बोल वेदनासमुद्घात की तरह कहना।

नैरयिक और तिर्यंचपंचेन्द्रिय में वैक्रियसमुद्घात का वर्णन समुच्चय जीव की तरह करना, किन्तु इतना अन्तर है कि लम्बाई में जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट संख्यात योजन कहना और एक दिशा कहना। देवता के तेरह दण्डक और मनुष्य भी समुच्चय जीव की तरह कहना, पर इतना अन्तर है कि लम्बाई में जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट संख्यात योजन कहना और एक दिशा कहना। वायुकाय समुच्चय जीव की तरह कहना, किन्तु इसमें एक दिशा कहना।

समुच्चय जीव पन्द्रह दण्डक में तैजससमुद्घात वैक्रियसमुद्घात की तरह कहना, किन्तु इतना अन्तर है कि इसमें लम्बाई जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग कहना और तिर्यंचपंचेन्द्रिय में एक दिशा कहना।

समुच्चय जीव और मनुष्य में आहारकसमुद्घात वैक्रियसमुद्घात की तरह कहना, किन्तु इतना अन्तर है कि लम्बाई में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग कहना और एक दिशा कहना।

१७. केवलीसमुद्घात का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३६ वां पद)

केवलीसमुद्घात करने वाले भावितात्मा अनगार के चरम समय (चौथे समय) के निर्जरापुद्गल क्या सूक्ष्म होते हैं और सम्पूर्ण लोक को स्पर्श करके रहते हैं? उत्तर—हां, केवलीसमुद्घात करने वाले भावितात्मा अनगार के चरम समय के निर्जरापुद्गल सूक्ष्म होते हैं और सारे लोक को स्पर्श करके रहते हैं। वे पुद्गल इतने सूक्ष्म

आहारकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेंगे। बहुत औदारिक के नौ दण्डक के जीवों ने मनुष्य रूप में आहारकसमुद्घात अतीतकाल में वनस्पति के जीवों ने अनन्त की और शेष आठ दण्डक के जीवों ने असंख्यात की तथा अनागतकाल में वनस्पति के जीव अनन्त करेंगे और शेष आठ दण्डक के जीव असंख्यात करेंगे। बहुत औदारिक के नौ दण्डक के जीवों ने मनुष्य रूप में केवलीसमुद्घात अतीतकाल में नही की और अनागतकाल में वनस्पति के जीव अनन्त और शेष आठ दण्डक के जीव असंख्यात केवलीसमुद्घात करेंगे। बहुत से औदारिक के दस दण्डक के जीवों ने नैरयिक रूप में चार समुद्घात और देवता के तेरह दण्डक के रूप में पांच समुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। बहुत से औदारिक के दस दण्डक के जीवों ने नैरयिक रूप में अन्तिम तीन समुद्घात और तेरह दण्डक के देवता के रूप में अन्तिम दो समुद्घात अतीतकाल में नहीं की और अनागतकाल में नहीं करेंगे।

(८) अल्पबहुत्वद्वार—१. सब से थोड़े आहारकसमुद्घात करने वाले, २. केवलीसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ३. तैजससमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ४. वैक्रियसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ५. मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले अनन्तगुणा, ६. कषायसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ७. वेदनीयसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ८. समुद्घात नहीं करने वाले असंख्यातगुणा।

नैरयिकों में—१. सब से थोड़े मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले, २. वैक्रियसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ३. कषायसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ४. वेदनीयसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ५. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यातगुणा।

होते हैं कि छद्मस्थ मनुष्य अपनी चक्षुरिन्द्रिय से उन निर्जरापुद्गलों के वर्ण को, घ्राणेन्द्रिय से उनकी गन्ध को, रसनेन्द्रिय से उनके रस को और स्पर्शनेन्द्रिय से उनके स्पर्श को थोड़ा सा भी, सामान्य विशेष रूप से नहीं जान सकता है। इसे शास्त्रकार दृष्टान्त द्वारा इस तरह समझाते हैं। यह जम्बूद्वीप सभी द्वीप, समुद्रों के बीच रहा हुआ है, सभी द्वीप, समुद्रों से छोटा है, गोलाकार है तेल में तले हुए पूए के आकार का है तथा कमल की कर्णिका तथा पूर्णिमा के चन्द्र जैसा वृत्ताकार है। यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा–चौड़ा है और इसकी परिधि ३१६२२७ योजन, तीन कोश, एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक (झाझेरी) है। कोई महाऋद्धिशाली यावत् शीघ्रगति वाला देव सुगन्धित द्रव्यों से पूर्ण, चारों ओर से लेप किये हुए एक डिब्बे को लेकर, उसे खोल कर, एक चिमटी बजावे, उतने समय में इस जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके आता है। निश्चय ही सारा जम्बूद्वीप उक्त डिब्बे के सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध के पुद्गलों से व्याप्त होता है पर छद्मस्थ मनुष्य उन सुगन्ध के पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श को नहीं जान सकता। सुगन्ध के पुद्गल आठ स्पर्श वाले बादरपुद्गल हैं। जब छद्मस्थ मनुष्य इन्हें भी नहीं जान सकता, फिर केवलीसमुद्घात के चरमसमय के निर्जरापुद्गल चार स्पर्श वाले होने से और अधिक सूक्ष्म होने से, उन्हें छद्मस्थ मनुष्य कैसे जान सकता है, अर्थात् नहीं जान सकता।

केवलीसमुद्घात का कारण—केवली भगवान् के वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र—ये चार अघातीकर्म होते हैं। जिन्हें उनकी निर्जरा करना है। जब आयुकर्म के प्रदेश सब से थोड़े होते हैं और शेष तीन कर्मों के प्रदेश अधिक होते हैं, तब बन्धन और स्थिति की अपेक्षा से विषम कर्म को सम करना होता है और इसीलिये केवली

तेरह दण्डक के देवों में—१. सब से थोड़े तैजससमुद्घात करने वाले, २. मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ३. वेदनीयसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ४. कषायसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ५. वैक्रियसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ६. समुद्घात नहीं करने वाले असंख्यातगुणा।

चार स्थावर में—१. सब से थोड़े मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले, २. कषायसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ३. वेदनीयसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ४. समुद्घात नहीं करने वाले असंख्यातगुणा।

वायुकाय में—१. सबसे थोड़े वैक्रियसमुद्घात करने वाले २. मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ३. कषायसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ४. वेदनीयसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ५. समुद्घात नहीं करने वाले असंख्यातगुणा।

तीन विकलेन्द्रिय में—१. सबसे थोड़े मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले, २. वेदनीयसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ३. कषायसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ४. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यातगुणा।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय में—१. सबसे थोड़े तैजससमुद्घात करने वाले, २. वैक्रियसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ३. मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ४. वेदनीयसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ५. कषायसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ६. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यातगुणा।

मनुष्य में—१. सबसे थोड़े आहारकसमुद्घात करने वाले, २. केवलीसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ३. तैजससमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ४. वैक्रियसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ५. मारणान्तिसमुद्घात करने वाले असंख्यागुणा, ६. वेदनीयसमुद्घात

भगवान्× केवलीसमुद्घात करते हैं। क्या सभी केवलीभगवान् केवलीसमुद्घात करते हैं ? नहीं, जिनके वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म बन्धन और स्थिति की अपेक्षा आयुकर्म के समान होते हैं, वे केवलीसमुद्घात नहीं करते। इस तरह केवलीसमुद्घात किये बिना अनन्त केवली सिद्धिगति को प्राप्त हुए हैं।

आवर्जीकरण किसे कहते हैं और क्या सभी केवलीभगवान् आवर्जीकरण करते हैं ? उत्तर—आवर्जीकरण का अर्थ अभिमुख करना है अर्थात् आत्मा को मोक्ष की ओर अभिमुख करना आवर्जीकरण है। अथवा जिस मन, वचन, काया के शुभ व्यापार से मोक्ष अभिमुख किया जाता है, उसे आवर्जीकरण कहते हैं। अथवा मोक्ष की ओर अभिमुख हुई आत्मा का कारण यानी शुभ योगों का व्यापार आवर्जीकरण है। सभी केवलीभगवान् आवर्जीकरण अवश्य करते हैं, इसलिये आवर्जीकरण का दूसरा नाम आवश्यककरण भी है। जो केवलीभगवान् केवलीसमुद्घात करते हैं वे पहले आवर्जीकरण करते हैं और उसके बाद केवलीसमुद्घात करते हैं। आवर्जीकरण का काल असंख्यात समय प्रमाण अन्तर्मुहूर्त का है।

केवलीसमुद्घात में आठ समय लगते हैं। पहले समय में केवलीभगवान् ऊपर और नीचे लोक पर्यन्त चौड़ाई में अपने शरीरप्रमाण दण्ड करते हैं। दूसरे समय में कपाट, तीसरे समय में मन्थान करते हैं और चौथे समय में सारा लोक भर देते हैं। पांचवें समय में लोक का संहरण करते है, छठे समय में मन्थान का, सातवें

× किसी भावितात्मा अनगार के छह माह की आयु शेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है और किसी केवलीभगवान् के आयुकर्म की स्थिति थोड़ी होती है और शेष तीन—वेदनीय, नाम, गोत्र कर्मों की स्थिति अधिक होती है, उस विषम स्थिति को आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने के लिये केवलीभगवान् केवलीसमुद्घात करते हैं। थोकड़ों के जानकर इस तरह कहते हैं।

करने वाले असंख्यातगुणा, ७. कषायसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ८. समुद्घात नहीं करने वाले असंख्यातगुणा।

१५. कषायसमुद्घात का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३६ वां पद)

आठ द्वारों द्वारा कषायसमुद्घात का इस थोकड़े में वर्णन है। आठ द्वार—१. नामद्वार, २. कालद्वार, ३. प्राप्तिद्वार, ४. एक जीव की अपेक्षा अतीत और अनागत काल की चारों कषायसमुद्घात, ५. बहुत जीव की अपेक्षा अतीत और अनागत काल की चारों कषायसमुद्घात, ६. एक जीव में परस्पर पाई जाने वाली अतीत अनागत काल की चारों कषायसमुद्घात, ७. बहुत जीवों में परस्पर पाई जाने वाली अतीत अनागत काल की चारों कषायसमुद्घात, ८. अल्पबहुत्वद्वार।

(१) नामद्वार—कषायसमुद्घात के चार भेद होते हैं। उनके नाम—क्रोधसमुद्घात, मानसमुद्घात, मायासमुद्घात और लोभसमुद्घात ।

(२) कालद्वार—चारों कषायसमुद्घात का काल जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का है।

(३) प्राप्तिद्वार—समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक में प्रत्येक चारों कषायसमुद्घात पाई जाती हैं।

(४) एक जीव की अपेक्षा अतीत और अनागत काल की चारों कषायसमुद्घात—एक—एक नैरयिक ने चारों कषायसमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेगा। नैरयिक की तरह शेष २३ दण्डक कह देना।

समय में कपाट का और आठवें समय में दण्ड का संहरण कर केवलीभगवान् शरीरस्थ हो जाते हैं।

केवलीभगवान् के वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु इन चार कर्मों की ८५ प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं। नामकर्म की ८० प्रकृतियां—शुभनामकर्म की ४१ और अशुभनामकर्म की ३९, वेदनीय की दो—सातावेदनीय और असातावेदनीय, गोत्रकर्म की दो—उच्चगोत्र और नीचगोत्र और आयु की एक—मनुष्यायु।

पहले समय में केवलीभगवान् अशुभकर्म की ३९ प्रकृतियां, असातावेदनीय और नीचगोत्र इन ४१ प्रकृतियों की स्थिति के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के अनन्त खण्ड करते हैं और स्थिति और अनुभाग का एक–एक खण्ड बाकी रख कर शेष सभी खण्डों का क्षय करते हैं। दूसरे समय में केवलीभगवान् शुभनामकर्म की ४१, सातावेदनीय और उच्चगोत्र, इन ४३ प्रकृतियों की स्थिति के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के अनन्त खण्ड करते हैं। स्थिति का खंड स्थिति में और अनुभाग का खण्ड अनुभाग में मिलाते हैं और एक खण्ड स्थिति का और एक खण्ड अनुभाग का शेष रख कर बाकी सभी खण्ड दूसरे समय में क्षय करते हैं। तीसरे समय में स्थिति के एक खण्ड के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के एक खण्ड के अनन्त खण्ड करते हैं और स्थिति और अनुभाग का एक, एक खण्ड शेष रख कर बाकी सभी खण्ड तीसरे समय में क्षय कर देते हैं। इसी तरह चौथा समय और पांचवां समय कहना। छठे समय में केवलीभगवान् स्थिति के एक खण्ड के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के एक खण्ड के भी असंख्यात खण्ड करते हैं। ये असंख्यात खण्ड उतने होते हैं जितने केवलीभगवान् की आयु के समय बाकी होते हैं। छठे समय में एक खण्ड स्थिति का, एक खण्ड अनुभाग का और एक समय

(५) बहुत जीव की अपेक्षा अतीत और अनागत काल की चारों कषायसमुद्घात—बहुत नैरयिक ने चारों कषायसमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे। नैरयिक की तरह शेष २३ दण्डक कह देना।

(६) एक जीव में परस्पर पाई जाने वाली अतीत अनागत काल की चारों कषायसमुद्घात—एक—एक नैरयिक ने नैरयिक रूप में क्रोधसमुद्घात, मानसमुद्घात, मायासमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की, अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेगा। इसी तरह तेईस दण्डक कहना। एक एक नैरयिक ने नैरयिक रूप में और औदारिक के दस दण्डक रूप में लोभसमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेगा। एक एक नैरयिक ने तेरह दण्डक देवता रूप में लोभसमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह भवनपति व्यन्तर रूप में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात, कदाचित् अनन्त करेगा और ज्योतिषी वैमानिक रूप में कदाचित् असंख्यात, कदाचित् अनन्त करेगा।

एक— एक तेईस दण्डक के जीव ने चौबीस ही दण्डक रूप में स्वस्थान, परस्थान में क्रोधसमुद्घात, मानसमुद्घात, मायासमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की तथा अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेगा, किन्तु नैरयिक रूप में क्रोधसमुद्घात अनागतकाल में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त करेगा।

आयु का क्षय करते हैं। इसी तरह सातवें समय में, आठवें समय में यावत् मुक्त हों, तब तक एक खण्ड स्थिति का, एक खण्ड अनुभाग का और एक समय आयु का क्षय करते रहते हैं।

केवलीसमुद्घात में केवलीभगवान् के मनयोग और वचनयोग का व्यापार नहीं होता, केवल काययोग की प्रवृत्ति होती है। काययोग में भी औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग, इन तीन की प्रवृत्ति होती है, शेष चार काययोग की प्रवृत्ति नहीं होती। पहले, आठवें समय में औदारिककाययोग प्रवर्तता है, दूसरे, छठे, सातवें समय में औदारिकमिश्रकाय योग प्रवर्तता है और तीसरे, चौथे व पांचवें समय में कार्मणकाययोग प्रवर्तता है।

केवलीभगवान् केवलीसमुद्घात करते हुए सिद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं होते, निर्वाण को प्राप्त नहीं होते यावत् सभी दुःखों का अन्त नहीं करते। किन्तु वे केवलीसमुद्घात से निवृत्त होते हैं और निवृत्त होकर मनयोग, वचनयोग और काययोग प्रवर्ताते हैं। मनयोग में सत्यमनयोग और व्यवहारमनयोग प्रवर्ताते हैं। वचनयोग में सत्यवचनयोग और व्यवहारवचनयोग प्रवर्ताते हैं। काययोग प्रवर्ताते हुए आते-जाते हैं, उठते-बैठते हैं, सोते हैं यावत् प्रतिहारी (पडिहारी) वापिस लौटाने योग्य पाट, पाटले, शय्या, संस्तारक को वापिस लौटाते हैं।

क्या केवली भगवान् सयोगी यानी योगसहित मोक्ष जाते हैं? नहीं, केवलीभगवान् सयोगी मोक्ष नहीं जाते। वे पहले जघन्य योग वाले पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के मनोयोग से असंख्यातगुणहीन मनोयोग का प्रतिसमय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में सम्पूर्ण मनोयोग का निरोध करते हैं। इसके बाद जघन्य योग वाले पर्याप्त द्वीन्द्रिय के वचनयोग से असंख्यातगुणहीन वचनयोग का प्रतिसमय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में सम्पूर्ण वचनयोग का निरोध

एक एक तेईस दण्डक के जीव ने औदारिक के दस दण्डक रूप में स्वस्थान परस्थान में लोभसमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेगा। एक एक तेईस दण्डक के जीव ने तेरह दण्डक देव रूप में लोभसमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में कोई करेगा, कोई नहीं करेगा, जो करेगा वह स्वस्थान में जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेगा तथा परस्थान में भवनपति व्यन्तर रूप में कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात, कदाचित् अनन्त करेगा और ज्योतिषी वैमानिक रूप में कदाचित् असंख्यात, कदाचित् अनन्त करेगा।

(७) बहुत जीवों में परस्पर पाई जाने वाली अतीत अनागत काल की चारों कषायसमुद्घात—बहुत चौबीस दण्डक के जीवों ने चौबीस दण्डक रूप में चारों कषायसमुद्घात अतीतकाल में अनन्त की और अनागतकाल में अनन्त करेंगे।

(८) अल्पबहुत्वद्वार—समुच्चय जीव में—१. सबसे थोड़े अकषायसमुद्घात यानी कषाय से भिन्न समुद्घात करने वाले, २. मानसमुद्घात करने वाले अनन्तगुणा, ३. क्रोधसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ४. मायासमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ५. लोभसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ६. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यातगुणा।

नैरयिक में—१. सबसे थोड़े लोभसमुद्घात करने वाले, २. मायासमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ३. मानसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ४. क्रोधसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ५. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यातगुणा।

तेरह दण्डक देवता में—१. सबसे थोड़े क्रोधसमुद्घात

करते हैं। वचनयोग का निरोध करने के बाद प्रथम समय में उत्पन्न जघन्य योग वाले अपर्याप्त सूक्ष्म पनक जीव (निगोद जीव) के काययोग से असंख्यातगुणहीन काययोग का प्रतिसमय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में सम्पूर्ण रीति से काययोग का निरोध करते हैं। इस प्रकार योगों का निरोध करके अयोगी होते हैं—अयोगी अवस्था को प्राप्त होकर पांच ह्रस्व अक्षर उच्चारण करने में जितने समय लगते हैं, उतने असंख्यात समय प्रमाण अन्तर्मुहूर्त काल की शैलेशी—अवस्था को प्राप्त करते हैं एवं वेदनीय आदि कर्म भोगने हेतु पूर्वरचित गुणश्रेणी को अंगीकार करते हैं। शैलेशी—अवस्था में गुणश्रेणियों से प्राप्त तीनों कर्मों के असंख्यात कर्मस्कन्धों के प्रदेश और विपाक से निर्जरा कर चरम समय में चारों कर्मांशों को एक साथ क्षय करते हैं और औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर का सर्वथा त्याग करते हैं। यहां जितने आकाशप्रदेशों को अवगाह कर रहे हुए हैं, उतने ही आकाशप्रदेशों को ऊपर ऋजुश्रेणी से अवगाहते हुए अस्पृश्यमान गति से (दूसरे समय और प्रदेश का स्पर्श न करते हुए) एक समय की अविग्रहगति से ऊपर सिद्धगति में जाकर साकार—उपयोग से उपयुक्त सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते हैं। जैसे अग्नि से जले हुए बीजों से पुनः अंकुर उत्पन्न नहीं होते, उसी प्रकार कर्मबीज के जल जाने से सिद्ध पुनः जन्म ग्रहण नहीं करते। सिद्धिगति में ये सिद्धभगवान् सदा के लिये अशरीरी, जीवघन (घनीभूत जीवप्रदेश वाले), दर्शन ज्ञान से उपयुक्त, कृतकृत्य, नीरज, निष्कम्प, वितिमिर (कर्म रूप अन्धकार से रहित) और विशुद्ध बने रहते हैं। सभी दुःखों से निस्तीर्ण, जन्म, जरा और मरण के बन्धन से मुक्त, ये सिद्ध शाश्वत, अव्याबाध सुख से सदैव सुखी रहते हैं।

करने वाले, २. मानसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ३. मायासमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ४. लोभसमुद्घात करने वाले संख्यातगुणा, ५. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यातगुणा।

पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय (नौ दण्डक) में–१. सबसे थोड़े मानसमुद्घात करने वाले, २. क्रोधसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ३. मायासमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ४. लोभसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ५. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यातगुणा।

मनुष्य में–१. सबसे थोड़े अकषायसमुद्घात करने वाले, २. मानसमुद्घात करने वाले असंख्यातगुणा, ३. क्रोधसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ४. मायासमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ५. लोभसमुद्घात करने वाले विशेषाधिक, ६. समुद्घात नहीं करने वाले संख्यातगुणा।

१६. छद्मस्थसमुद्घात का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३६ वां पद)

इस थोकड़े में तीन द्वारों से छद्मस्थसमुद्घात का वर्णन किया गया है–नामद्वार, प्राप्तिद्वार, कालद्वार।

(१) नामद्वार–छद्मस्थसमुद्घात छह हैं–१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात, ३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात, ५. तैजससमुद्घात, ६. आहारकसमुद्घात।

(२) प्राप्तिद्वार–नैरयिक में पहली चार समुद्घात, देवता के तेरह दण्डक में पहली पांच समुद्घात, चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में पहली तीन समुद्घात, वायुकाय में पहली चार समुद्घात, तिर्यंचपंचेन्द्रिय में पहली पांच समुद्घात और मनुष्य में

१८. प्रयोगपद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १६ वां पद)

समुच्चय जीव में पन्द्रह योग पाये जाते हैं—तेरह शाश्वत और दो अशाश्वत। इनके नौ भंग बनते हैं—१. सभी जीव तेरह योग वाले होते हैं। २. तेरह योग वाले बहुत और आहारकयोग वाला एक। ३. तेरह योग वाले बहुत और आहारकयोग वाले बहुत। ४. तेरह योग वाले बहुत, आहारकमिश्रयोग वाला एक। ५. तेरह योग वाले बहुत, आहारकमिश्रयोग वाले बहुत। ६. तेरह योग वाले बहुत, आहारकयोग वाला एक, आहारकमिश्रयोग वाला एक। ७. तेरह योग वाले बहुत, आहारकयोगवाला एक, आहारकमिश्रयोग वाले बहुत। ८. तेरह योग वाले बहुत, आहारकयोग वाले बहुत, आहारकमिश्रयोग वाला एक। ९. तेरह योग वाले बहुत, आहारकयोग वाले बहुत, आहारकमिश्रयोग वाले बहुत।

नारकी का एक दंडक और देवता के तेरह दंडक—इन चौदह दंडक में ग्यारह योग पाये जाते हैं—चार मन के, चार वचन के, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र और कार्मण। इनमें दस योग शाश्वत पाये जाते हैं और कार्मणयोग अशाश्वत पाया जाता है। इसके तीन भंग बनते हैं—१. सभी दस योग वाले होते हैं, २. दस योग वाले बहुत और कार्मणयोग वाला एक, ३. दस योग वाले बहुत और कार्मणयोग वाले बहुत। वायुकाय के सिवाय शेष चार स्थावर में तीन योग शाश्वत पाये जाते हैं—औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मणयोग। वायुकाय में पांच योग शाश्वत पाये जाते हैं—उक्त तीन तथा वैक्रिय और वैक्रियमिश्र। पांचों स्थावर में योग शाश्वत पाये जाते है इसलिए इनमें भंग नहीं बनते। विकलेन्द्रिय में चार योग पाये जाते हैं—व्यवहार-वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मणयोग। इनमें तीन

योग शाश्वत पाये जाते हैं और कार्मणयोग अशाश्वत है। तीन भंग बनते हैं—१. सभी तीन योग वाले, २. तीन योग वाले बहुत, कार्मणयोग वाला एक, ३. तीन योग वाले बहुत, कार्मणयोग वाले बहुत। पंचेन्द्रिय में आहारक और आहारकमिश्र के सिवाय तेरह योग पाये जाते हैं। बारह योग शाश्वत हैं और कार्मणयोग अशाश्वत है। तीन भंग बनते हैं—१. सभी बारह योग वाले, २. बारह योग वाले बहुत, कार्मणयोग वाला एक, ३. बारह योग वाले बहुत, कार्मणयोग वाले बहुत। मनुष्य में पन्द्रह योग पाये जाते हैं। ग्यारह योग शाश्वत पाये जाते हैं और चार योग—औदारिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण—अशाश्वत पाये जाते हैं। इनके ८० भंग बनते हैं—असंयोगी ८, दो संयोगी २४, तीन संयोगी ३२ और चार संयोगी १६।

असंयोगी आठ भंग—१. औदारिकमिश्र एक, २. औदारिकमिश्र बहुत, ३. आहारक एक, ४. आहारक बहुत, ५. आहारकमिश्र एक, ६. आहारकमिश्र बहुत, ७. कार्मण एक, ८. कार्मण बहुत।

दो संयोगी चौवीस भंग—

१. औदारिकमिश्र का एक, आहारक का एक।
२. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत।
३ औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक का एक।
४. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक के बहुत।
५. औदारिकमिश्र का एक, आहारकमिश्र का एक।
६. औदारिकमिश्र का एक, आहारकमिश्र के बहुत।
७. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारकमिश्र का एक।
८. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत।
९. औदारिकमिश्र का एक, कार्मण का एक।

१५. वक्रगति—वक्रगति चार तरह की होती है—घट्टन, स्तंभन, श्लेषण और प्रपतन। घट्टन—लंगड़ाते हुए चलना। स्तंभन—रुक—रुक कर चलना। श्लेषण—शरीर के एक अङ्ग से दूसरे अङ्ग का स्पर्श करते हुए चलना। प्रपतन—गिरते—गिरते चलना। घट्टन आदि चारों गतियां अनिष्ट एवं अप्रशस्त हैं, इसलिए इन्हें वक्रगति कहते हैं।

१६. पंकगति—कीचड़ या जल में अपने शरीर को सहारा देकर यानि स्थिर करके गति करना पंकगति है।

१७. बंधनविमोचनगति—पके हुए आम, अम्बाडग, बिजौरा, बिल, कबीठ, सीताफल, दाड़िम आदि फलों का बंधन से टूट कर भूमि पर गिर पड़ना बंधनविमोचनगति है।

****

१०. औदारिकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।

११. औदारिकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।

१२. औदारिकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

१३. आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक।

१४. आहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत।

१५. आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक।

१६. आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत।

१७. आहारक का एक, कार्मण का एक।

१८. आहारक का एक, कार्मण के बहुत।

१९. आहारक के बहुत, कार्मण का एक।

२०. आहारक के बहुत, कार्मण के बहुत।

२१. आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।

२२. आहारकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।

२३. आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।

२४. आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

तीन संयोगी बत्तीस भंग—

१. औदारिकमिश्र का एक, आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक।

२. औदारिकमिश्र का एक, आहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत।

३. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक।

४. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत।

५. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक।

जैन स्तोक मजूंषा

भाग – ७

१. दिसाणुवाय (दिशा की अपेक्षा जीवों के अल्पबहुत्व) का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, तीसरा पद)

द्रव्य दिशा के अठारह भेद १. पूर्व, २. पश्चिम, ३. उत्तर, ४. दक्षिण, ५. ईशानकोण, ६. नैऋत्यकोण, ७. आग्नेयकोण, ८. वायव्यकोण, ९–१६. आठ दिशाओं के आठ अन्तर, १७ विमला (ऊँची दिशा), १८. तमा (नीची दिशा)।

भावदिशा के अठारह भेद– १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेउकाय (तेजस्काय), ४. वायुकाय, ५. अग्रबीज, ६. मूलबीज, ७. पर्वबीज, ८. स्कन्धबीज, ९. द्वीन्द्रिय, १०. त्रीन्द्रिय, ११. चतुरिन्द्रिय, १२. तिर्यंचपंचेन्द्रिय, १३. कर्मभूमि, १४. अकर्मभूमि, १५. अन्तरद्वीप, १६. सम्मूर्छिम मनुष्य, १७. नारकी, १८. देवता।

(१) प्रश्न–समुच्चय जीव, वनस्पतिकाय, अप्काय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय, इन सात बोलों के जीव किस दिशा में थोड़े हैं,किस दिशा में अधिक हैं?

उत्तर–सबसे थोड़े पश्चिमदिशा में हैं। कारण यह है कि पश्चिमदिशा में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन का गौतमद्वीप है। इसलिये पश्चिमदिशा में अप्काय के जीव थोड़े हैं और इस कारण सातों ही बोल के जीव थोड़े हैं। पूर्वदिशा में इनसे विशेषाधिक हैं। पूर्वदिशा में गौतमद्वीप नहीं है, इस कारण अप्काय अधिक हैं और इसीलिए सातों ही बोलों के जीव विशेषाधिक हैं। दक्षिणदिशा में

६. औदारिकमिश्र के वहुत, आंहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत।

७. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक।

८. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत।

९. औदारिकमिश्र का एक, आहारक का एक, कार्मण का एक।

१०. औदारिकमिश्र कों एक, आहारक का एक, कार्मण के बहुत।

११. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत, कार्मण का एक।

१२. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत, कार्मण के बहुत।

१३. औदारिकमिश्र के वहुत, आहारक का एक, कार्मण का एक।

१४. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक का एक, कार्मण के वहुत।

१५. औदारिकमिश्र के वहुत, आहारक के बहुत, कार्मण का एक।

१६. औदारिकमिश्र के वहुत, आहारक के वहुत, कार्मण के वहुत।

१७. औदारिकमिश्र का एक, आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।

१८. औदारिकमिश्र का एक, आहारकमिश्र का एक, कार्मण के वहुत।

विशेषाधिक हैं। दक्षिणदिशा में चन्द्र, सूर्य के द्वीप नहीं हैं। इसलिये अप्काय अधिक हैं और इसीलिये सात बोलों के जीव विशेषाधिक हैं। उत्तरदिशा में इनकी अपेक्षा विशेषाधिक हैं। कारण यह है कि उत्तरदिशा में असंख्यात द्वीप, समुद्र आगे जाने पर अरुणवर नामक द्वीप आता है। इस द्वीप में मानसरोवर नामक झील है, जो संख्यात कोटि–कोटि (कोड़ाकोड़ी) योजन लम्बा, चौड़ा है। इस सरोवर के कारण उत्तरदिशा में अप्काय अधिक हैं और इसीलिये सात बोलों के जीव विशेषाधिक हैं।

(२) प्रश्न– पृथ्वीकाय के जीव किस दिशा में थोड़े हैं? किस दिशा में अधिक हैं?

उत्तर–दक्षिणदिशा में पृथ्वीकाय के जीव सबसे थोड़े हैं। इस दिशा में भवनपतियों के ४,०६,००,००० भवन हैं, अतः पोलार अधिक है, पृथ्वीकाय थोड़ी है। उत्तरदिशा में इनकी अपेक्षा विशेषाधिक हैं। उत्तरदिशा में भवनपतियों के ३,६६,००,००० भवन हैं, अतः पोलार कम है, पृथ्वीकाय अधिक है। पूर्वदिशा में इनसे विशेषाधिक हैं, पूर्वदिशा में पृथ्वी अधिक कठोर है। पश्चिमदिशा में इनसे विशेषाधिक हैं। कारण यह है कि पश्चिमदिशा में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन विस्तार वाला गौतमद्वीप है, जो पृथ्वी रूप है।

(३) प्रश्न–वायुकाय और व्यन्तर जाति के देवता किस दिशा में थोड़े हैं? किस दिशा में अधिक हैं?

उत्तर–सबसे थोड़े पूर्वदिशा में हैं। पूर्वदिशा में पृथ्वी अधिक कठोर है, इसलिये वायुकाय थोड़ी है और व्यन्तर देवता भी थोड़े हैं। इनकी अपेक्षा पश्चिमदिशा में विशेषाधिक हैं। पश्चिमदिशा में सलिलावतीविजय है, जो एक हजार योजन गहरा और तिर्छा है, जिससे वायुकाय भी अधिक है और व्यन्तर देवता भी अधिक हैं। इनकी अपेक्षा उत्तरदिशा में विशेषाधिक हैं। उत्तरदिशा में

१९. औदारिकमिश्र का एक, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।

२०. औदारिकमिश्र का एक, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

२१. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।

२२. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।

२३. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।

२४. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

२५. आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।

२६. आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।

२७. आहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।

२८. आहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

२९. आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।

३०. आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।

३१. आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।

३,६६,००,००० भवनपति देवों के भवन हैं, इसलिये पोलार अधिक है। पोलार अधिक होने से वायुकाय अधिक है और व्यन्तर देवों के नगर भी अधिक हैं। इनकी अपेक्षा दक्षिणदिशा में विशेषाधिक हैं। दक्षिणदिशा में भवनपति देवों के ४,०६,००,००० भवन हैं, इस कारण पोलार और अधिक है। पोलार अधिक होने से वायुकाय भी अधिक है और व्यन्तर देवों के नगर भी अधिक हैं। यहाँ 卐 कृष्णपक्षी जीव अधिक उत्पन्न होते हैं।

(४) प्रश्न–मनुष्य, मनुष्यस्त्री, बादर तेजस्काय और सिद्ध भगवान् किस दिशा में थोड़े हैं,किस दिशा में अधिक हैं?

उत्तर–सबसे थोड़े दक्षिण और उत्तर दिशा में हैं। सब क्षेत्रों में भरत और एरवत क्षेत्र छोटे हैं, उनमें मनुष्य थोड़े हैं, मनुष्य के वास थोड़े हैं, बादर तेजस्काय थोड़ी है और यहां से थोड़े जीव सिद्ध होते हैं। इनकी अपेक्षा पूर्वदिशा में संख्यातगुण हैं। पूर्वदिशा में पूर्व महाविदेह क्षेत्र बड़ा है। उसमें मनुष्य अधिक हैं, मनुष्य के वास अधिक हैं, बादर तेजस्काय अधिक है और यहां से बहुत जीव सिद्ध होते हैं, इसलिये पूर्वदिशा में संख्यातगुण कहा है। इनकी अपेक्षा पश्चिमदिशा में विशेषाधिक हैं। पश्चिमदिशा में पश्चिम महाविदेह क्षेत्र है, जिसमें सलिलावतीविजय है, जो एक हजार योजन गहरा (उंडा), तिर्छा है। यहां मनुष्य बहुत हैं, मनुष्य के वास बहुत हैं, बादर तेजस्काय अधिक है और यहां से बहुत जीव सिद्ध होते हैं।

(५) प्रश्न–भवनपति देव और देवियां किस दिशा में थोड़े हैं और किस दिशा में अधिक हैं?

उत्तर–सबसे थोड़े पूर्व पश्चिम दिशा में हैं। पूर्व पश्चिम दिशा

卐 जिनका संसार अर्धपुद्गलपरावर्तन मात्र शेष रह गया है, वे शुक्लपाक्षिक हैं। जिनका संसार इससे अधिक है, वे कृष्णपाक्षिक हैं।

३२. आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

चार संयोगी सोलह भंग—

१. औदारिकमिश्र का एक, आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।
२. औदारिकमिश्र का एक, आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।
३. औदारिकमिश्र का एक, आहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।
४. औदारिकमिश्र का एक, आहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।
५. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।
६. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।
७. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।
८. औदारिकमिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।
९. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।
१०. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।
११. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।

में भवनपति देवों के भवन नहीं हैं। केवल आते–जाते हैं। इसकी अपेक्षा उत्तरदिशा में असंख्यातगुण हैं, क्योंकि उत्तरदिशा में ३,६६,००,००० भवनपति देवों के भवन हैं। इनकी अपेक्षा दक्षिणदिशा में असंख्यातगुण हैं। दक्षिणदिशा में भवनपति के ४,०६,००,००० भवन हैं, अतः असंख्यातगुण बतलाये हैं। यहां कृष्णपक्षी अधिक उत्पन्न होते हैं।

(६) प्रश्न–ज्योतिषी देव किस दिशा में थोड़े हैं? किस दिशा में अधिक हैं?

उत्तर–सबसे थोड़े पूर्व पश्चिम दिशा में हैं। इन दोनों दिशाओं में चन्द्र, सूर्य के द्वीप हैं, इससे यहां ज्योतिषी देव थोड़े हैं। इनकी अपेक्षा दक्षिणदिशा में ज्योतिषी देव विशेषाधिक हैं। इस दिशा में चन्द्र सूर्य के द्वीप न होकर राजधानियां हैं। यहां जीव बहुत उत्पन्न होते हैं। इनकी अपेक्षा उत्तरदिशा में विशेषाधिक हैं। उत्तरदिशा में असंख्यात द्वीप, समुद्र आगे जाने पर अरुणवर नामक द्वीप आता है। इस द्वीप में मानसरोवर नामक झील है, जो संख्यात कोटि–कोटि (कोड़ाकोड़ी) योजन लम्बी–चौड़ी है। मानसरोवर के रत्नों की पाल है। यहां बहुत से ज्योतिषी देव स्नान, मंजन, क्रीड़ा–कौतुक के लिये आते हैं। इन्हें देखकर वहां के तिर्यंच जीवों को जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होता है। वे करणी करके निदान करते हैं और वहां ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होते हैं। इसलिये विशेषाधिक हैं।

(७) प्रश्न–पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे देवलोक के देवता किस दिशा में थोड़े हैं? किस दिशा में अधिक हैं?

उत्तर–सबसे थोड़े पूर्व पश्चिम दिशा में हैं। इन देवलोकों में दो तरह के विमान होते हैं × आवलिकाप्रविष्ट विमान और

× श्रेणी में रहे हुए पंक्तिबद्ध विमान आवलिकाप्रविष्ट कहलाते हैं। श्रेणी से बाहर अव्यवस्थित रूप से रहे हुए विमान पुष्पावकीर्ण विमान कहलाते हैं।

१२. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

१३. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक, कार्मण का एक।

१४. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र का एक, कार्मण के बहुत।

१५. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण का एक।

१६. औदारिकमिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारकमिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

समुच्चय के ९, अठारह दंडक के ५४, मनुष्य के ८०, कुल १४३ भंग होते हैं। पांच स्थावर में भंग नहीं होते हैं।

१९. पांच गति का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १६ वां पद)

गति के पांच भेद—१. प्रयोगगति, २. ततगति, ३. बंधनछेदनगति, ४. उपपातगति, ५. विहायोगति।

१. प्रयोगगति के १५ भेद होते हैं। प्रयोग पद के थोकड़े में योग के १५ भेद समुच्चय जीव और चौबीस दंडक में पाये जाने वाले शाश्वत और अशाश्वत योग और उनके १४३ भंग बताये हैं, वे यहां भी कहना।

२. ततगति—तत का अर्थ विस्तीर्ण है। विस्तीर्ण जो गति है वह ततगति है। कोई व्यक्ति किसी गांव या नगर के लिए रवाना हुआ, उसने अपना स्थान छोड़ दिया है और गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुंचा है, रास्ते में चल रहा है। उसके एक-एक कदम चलने पर देशांतरप्राप्ति रूप गति हो रही है, यही ततगति है।

२. १०२ बोल का बासठिया

(पन्नवणासूत्र, तीसरा पद)

१ ८ ७ ८ ५ ५ ६ ८
जीव गइ इन्द्रिय काए, जोए वेए कसाय लेसा य।
८ १० ४ ९ २ २
सम्मत्त नाण दंसण, संजय उवओग आहारे॥
२ ३ ३ ३ ३ ३ २
भासग परित्त पज्जत्त, सुहुम सण्णी भवत्थिए चरिमे॥

जीव, गति, इन्द्रिय, काय, जोग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, संयत, उपयोग, आहार, भाषक, परित्त, पर्याप्त, संज्ञी, सूक्ष्म, * भव्य, चरम–इन इक्कीस द्वारों के १०२ बोलों में + ६२ बोल (जीव के १४ भेद, १४ गुणस्थान, १५ योग, १२ उपयोग, ६ लेश्या और अल्पबहुत्व) इस थोकड़े में बताये गये हैं।

(१) जीवद्वार–समुच्चय जीव में जीव के भेद १४, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२ और लेश्या ६, पाये जाते हैं। समुच्चय जीव एक ही बोल होने से अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है।

(२) गतिद्वार– गति के आठ भेद – १ नरक, २ तिर्यंच, ३ तिर्यंचस्त्री, ४ मनुष्य, ५ मनुष्यस्त्री, ६ देवता, ७ देवी, ८ सिद्धगति।

नारकी, देवता प्रत्येक में जीव के भेद ३ (११,१३,१४), देवी में जीव के भेद २ (१३, १४), नारकी देवता और देवी प्रत्येक

* भव्यद्वार के पश्चात् अस्तिकायद्वार है। पर चूंकि इस थोकड़े में २१ द्वार प्रचलित हैं, इसलिये यहां अस्तिकायद्वार नहीं दिया। अस्तिकायद्वार की अल्प– बहुत्व सूत्र के अनुसार आगे दी जायगी।

+ सूत्र में इन द्वारों की अल्पबहुत्व ही वर्णित है, पर यहां थोकड़े के अनुसार ६२ बोलों का वर्णन किया जा रहा है।

३. बन्धनछेदनगति—बन्धन के छेदन से जो गति होती है, वह बन्धनछेदनगति है। जीव से मुक्त शरीर की और शरीर से पृथक् हुए जीव की बन्धनछेदनगति है।

४. उपपातगति—उपपातगति के तीन भेद—क्षेत्र—उपपातगति, भव—उपपातगति और नोभव—उपपातगति। क्षेत्र—उपपातगति के मूल उत्तर भेद मिलाकर ८० भेद होते हैं। क्षेत्र—उपपातगति के मूल भेद पांच होते हैं—नरकक्षेत्र—उपपातगति, तिर्यंचयोनिक्षेत्र—उपपातगति, मनुष्यक्षेत्र—उपपातगति, देवक्षेत्र—उपपातगति, सिद्धक्षेत्र—उपपातगति।

नरकक्षेत्र—उपपातगति के सात भेद— रत्नप्रभापृथिवी—नरकक्षेत्रउपपातगति यावत् तमस्तमः—प्रभापृथिवीनरकक्षेत्र—उपपातगति। तिर्यंचयोनिक्षेत्र—उपपातगति के पांच भेद—एकेन्द्रियतिर्यंचयोनिक्षेत्र—उपपातगति यावत् पंचेन्द्रियतिर्यं—चयोनिक्षेत्र—उपपातगति। मनुष्यक्षेत्र—उपपातगति के दो भेद—सम्मूर्छिममनुष्यक्षेत्र—उपपातगति, गर्भजमनुष्यक्षेत्र—उपपातगति। देवक्षेत्र—उपपातगति के चार भेद—भवनपतिदेवक्षेत्र—उपपातगति यावत् वैमानिकदेवक्षेत्र—उपपातगति। सिद्धक्षेत्र—उपपातगति के ५७ भेद—जम्बूद्वीप के १ भरत ऐरवत क्षेत्र, २. चुल्लहिमवन्त शिखरी वर्षधर पर्वत, ३. हेमवत हैरण्यवत क्षेत्र, ४. शब्दापाती विकटापाती (सद्दावई वियडावई) वृत्तवैताढ्य पर्वत, ५. महाहिमवन्त रुक्मी वर्षधरपर्वत, ६. हरिवर्ष रम्यकवर्ष क्षेत्र, ७. गन्धापाती माल्यवन्त (गंधावाती मालवंत), ८. निषध नीलवंत वर्षधर पर्वत, ९. पूर्वविदेह पश्चिमविदेह, १०. देवकुरु उत्तरकुरु, ११. मेरु पर्वत के ऊपर चारों दिशा विदिशा में सिद्धक्षेत्र—उपपातगति है। इसी तरह धातकीखण्ड के २२ बोल, पुष्करार्ध के २२ बोल और ५६ लवणसमुद्र, ५७ कालोदधिसमुद्र

में गुणस्थान ४ (पहले के), योग ११ (औदारिक, औदारिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र वर्जकर), उपयोग ९ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन), लेश्या नारकी में ३, देवता में ६ और देवी में ४। तिर्यंच में जीव के भेद १४, तिर्यंचस्त्री में जीव के भेद २ (१३, १४), तिर्यंच और तिर्यंचस्त्री प्रत्येक में गुणस्थान ५, योग १३ (आहारक, आहारकमिश्र वर्जकर), उपयोग ९, लेश्या ६। मनुष्य में जीव के भेद ३ (११, १३, १४), मनुष्यस्त्री में जीव के भेद २ (१३, १४), दोनों में प्रत्येक में गुणस्थान १४, मनुष्य में योग १५, मनुष्यस्त्री में योग १३ (आहारक, आहारकमिश्र वर्जकर), दोनों में प्रत्येक में उपयोग १२, लेश्या ६। सिद्धगति में जीव का भेद, गुणस्थान, योग और लेश्या नहीं, उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन)।

अल्पबहुत्व–१ सबसे थोड़ी मनुष्यस्त्री, २ मनुष्य असंख्यातगुण, ३ नारकी के नैरयिक असंख्यातगुण, ४ तिर्यंचस्त्री असंख्यातगुणी, ५ देवता असंख्यातगुण, ६ देवी संख्यातगुणी ७ सिद्ध अनन्तगुण, ८ तिर्यंच अनन्तगुण।

(३) इन्द्रियद्वार–इन्द्रियद्वार के सात भेद–१ सइन्द्रिय, २ एकेन्द्रिय, ३ द्वीन्द्रिय, ४ त्रीन्द्रिय, ५ चतुरिन्द्रिय, ६ पंचेन्द्रिय, ७ अनिन्द्रिय।

सइन्द्रिय में जीव के भेद १४, पंचेन्द्रिय में जीव के भेद ४ (११ से १४), सइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में प्रत्येक में गुणस्थान १२, योग १५, उपयोग १० और लेश्या ६। एकेन्द्रिय में जीव के भेद ४ (१ से ४), गुणस्थान १ (पहला), योग ५ (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र व कार्मण), उपयोग ३ (मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान, अचक्षुदर्शन), लेश्या ४ पहली। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय में प्रत्येक में जीव के भेद २, गुणस्थान २ (पहले), योग ४ (औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मण और व्यवहारभाषा),

के ऊपर चारों दिशा एवं विदिशा में सिद्धक्षेत्र–उपपातगति है।

भव–उपपातगति के मूल भेद चार और मूल भेद सहित उत्तरभेद २२ हैं। भव–उपपातगति के मूलभेद चार–नरकभव–उपपातगति, तिर्यंचभव–उपपातगति, मनुष्यभव–उपपातगति, और देवभव–उपपातगति। नरकभव–उपपातगति के सात भेद–रत्नप्रभानरकभव–उपपातगति यावत् तमस्तमःप्रभा–नरकभव–उपपातगति। तिर्यंचभव–उपपातगति के पांच भेद–एकेन्द्रियतिर्यंचभव–उपपातगति यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंचभव–उपपातगति। मनुष्यभव–उपपातगति के दो भेद–सम्मूर्छिम मनुष्यभव–उपपातगति, गर्भजमनुष्यभव–उपपातगति। देवभव–उपपातगति के चार भेद–भवनपतिदेवभव–उपपातगति यावत् वैमानिकदेवभव–उपपातगति।

नोभव–उपपातगति के दो भेद–पुद्गलनोभवउपपातगति और सिद्धनोभव–उपपातगति। कर्मसंबंध से प्राप्त नैरयिक आदि भव के सिवाय जो उपपातगति है वह नोभव–उपपातगति है। यह गति पुद्गल एवं सिद्धों के होती है, इसलिए पुद्गल और सिद्ध के भेद से इसके दो भेद बताये हैं।

पुद्गलनोभव–उपपातगति के छह भेद–परमाणु–पुद्गल १. लोक के पूर्व चरमान्त से पश्चिम के चरमान्त तक एक समय में जाता है, २. पश्चिम चरमान्त से पूर्व चरमान्त तक एक समय में जाता है, ३. उत्तर चरमान्त से दक्षिण चरमान्त तक एक समय में जाता है, ४. दक्षिण चरमान्त से उत्तर चरमान्त तक एक समय में जाता है, ५. ऊर्ध्वलोक के चरमान्त से अधोलोक के चरमान्त तक एक समय में जाता है, ६. अधोलोक के चरमान्त से ऊर्ध्वलोक के चरमान्त तक एक समय में जाता है।

सिद्धनोभव–उपपातगति के दो भेद–अनन्तरसिद्ध नोभव–

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय में प्रत्येक में उपयोग ५ (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, अचक्षुदर्शन), चतुरिन्द्रिय में उपयोग ६ (चक्षुदर्शन बढ़ा), लेश्या प्रत्येक में ३ पहली। अनिन्द्रिय में जीव का भेद १ (संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त), गुणस्थान २ (१३,१४), योग ५ अथवा ७ (१ सत्यमनोयोग, २ व्यवहारमनोयोग, ३ सत्यभाषा, ४ व्यवहारभाषा और ५ औदारिक ये पांच अथवा ७ तब औदारिकमिश्र व कार्मण बढ़ा), उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन), लेश्या १ (शुक्ल)।

अल्पबहुत्व-१ सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय, २ चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, ३ त्रीन्द्रिय विशेषाधिक, ४ द्वीन्द्रिय विशेषाधिक, ५ अनिन्द्रिय अनन्तगुण, ६ एकेन्द्रिय अनन्तगुण, ७ सइन्द्रिय विशेषाधिक।

(४) कायद्वार-कायद्वार के ८ भेद- १ सकायिक, २ पृथ्वीकाय, ३ अप्काय, ४ तेजस्काय, ५ वायुकाय, ६ वनस्पतिकाय, ७ त्रसकाय, ८ अकायिक।

सकायिक में जीव के भेद १४, त्रसकाय में जीव के भेद १० (५ से १४), दोनों में प्रत्येक में गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय में प्रत्येक में जीव के भेद ४, गुणस्थान १ (पहला), पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय में योग तीन (दो औदारिक के व कार्मण), वायुकाय में योग ५ (दो वैक्रिय के बढ़े), उपयोग प्रत्येक में ३ (२ अज्ञान और अचक्षुदर्शन), पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय में प्रत्येक में लेश्या ४ पहली और तेजस्काय, वायुकाय में प्रत्येक में लेश्या ३ पहली। अकायिक में जीव का भेद, गुणस्थान, योग, लेश्या नहीं, उपयोग २ (केवलज्ञान और केवलदर्शन)।

उपपातगति और परम्परसिद्धनोभव–उपपातगति। अनन्तरसिद्धनोभव–उपपातगति के तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध यावत् अनेकसिद्ध के भेद से पन्द्रह भेद हैं। परम्परसिद्धनोभव उपपातगति के अप्रथमसमयसिद्ध, दो समय सिद्ध यावत् दस समय सिद्ध, संख्यात समय सिद्ध, असंख्यातसमय सिद्ध और अनन्तसमय सिद्ध–ये तेरह भेद हैं। कुल ६+१५+१३ = ३४ भेद हुए।

विहायोगति के सत्रह भेद–१. स्पृशद्गति (फुसमाण–गति) २. अस्पृशद्गति (अफुसमाणगति), ३. उपसंपद्यमान (उवसंपज्जमाण) गति, ४. अनुपसंपद्यमान (अणुवसंपज्जमाण) गति, ५. पुद्गलगति, ६. मंडूकगति, ७. नौकागति (नावागति), ८. नयगति, ९. छायागति, १०. छायानुपातगति, ११. लेश्यागति, १२. लेश्यानुपातगति, १३. उद्दिश्यप्रविभक्तगति (उद्दिस्सपविभत्तगति), १४. चतुःपुरुषप्रविभक्तगति, १५. वक्रगति, १६. पंकगति, १७. बन्धनविमोचनगति।

१. स्पृशद्गति–परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करते हुए जाते हैं, उसे स्पृशद्गति कहते हैं।

२. अस्पृशद्गति–परमाणुपुद्गल आदि परमाणुपुद्गल आदि से परस्पर स्पर्श किये बिना जाते हैं, उसे अस्पृशद्गति कहते हैं।

३. उपसंपद्यमानगति–राजा, युवराज, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि का आश्रय लेकर उनके इच्छानुसार गति करना, उपसंपद्यमानगति है।

४. अनुपसंपद्यमानगति–उपर्युक्त राजा, युवराज आदि का सहारा लिये बिना अपनी इच्छा से गति करना, अनुपसंपद्यमानगति है।

५. पुद्गलगति–परमाणुपुद्गल यावत् अनन्त प्रदेशी

अल्पबहुत्व–१ सबसे थोड़े त्रसकाय, २ तेजस्काय असंख्यातगुण, ३ पृथ्वीकाय विशेषाधिक, ४ अप्काय विशेषाधिक, ५ वायुकाय विशेषाधिक, ६ अकायिक अनन्तगुण, ७ वनस्पतिकाय अनन्तगुण, ८ सकायिक विशेषाधिक।

(५) योगद्वार– १ सयोगी, २ मनयोगी, ३, वचनयोगी, ४ काययोगी, ५ अयोगी।

सयोगी और काययोगी में प्रत्येक में जीव के भेद १४, गुणस्थान १३, योग १५, उपयोग १२ और लेश्या ६। मनयोगी में जीव का भेद १ (संज्ञीपंचेन्द्रिय का पर्याप्त), वचनयोगी में जीव का भेद ५ (तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय और संज्ञीपंचेन्द्रिय का पर्याप्त), दोनों में प्रत्येक में गुणस्थान १३, योग १४ (कार्मण वर्जकर), उपयोग १२, लेश्या ६। अयोगी में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान १ (१४), योग नहीं, उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन), लेश्या नहीं।

अल्पबहुत्व–१ सबसे थोड़े मनयोगी, २ वचनयोगी असंख्यातगुण, ३ अयोगी अनन्तगुण, ४ काययोगी अनन्तगुण, ५ सयोगी विशेषाधिक ।

(६) वेदद्वार–वेदद्वार के ५ भेद–१ सवेदी, २ स्त्रीवेद, ३ पुरुषवेद, ४ नपुंसकवेद, ५ अवेदी।

सवेदी और नपुंसक वेद में प्रत्येक में जीव के भेद १४, गुणस्थान ९, योग १५, उपयोग १०, लेश्या ६। स्त्रीवेद व पुरुषवेद में प्रत्येक में जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान ९, स्त्रीवेद में योग १३ (आहारक, आहारकमिश्र वर्जकर), पुरुषवेद में योग १५, स्त्रीवेद व पुरुषवेद में प्रत्येक में उपयोग १०, लेश्या ६। अवेदी में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान * ५ तथा ६ (९ से १४ तक),

* नवमा गुणस्थान सवेदी और अवेदी होता है। जब अवेदी होता है तब छह अन्यथा पांच गुणस्थान पाये जाते हैं।

स्कंध की गति को पुद्गलगति कहते हैं।

६. मंडूकगति—मेंढ़क की तरह फुदक—फुदक कर चलना मंडूकगति है।

७. नौकागति—नाव से महानदी आदि में जाना, नौकागति है।

८. नयगति—नैगम आदि नयों का अपना—अपना मत पुष्ट करना अथवा एक दूसरे की एक दूसरे की अपेक्षा रखते हुए नयों द्वारा प्रमाण से अबाधित वस्तु की व्यवस्था करना, नयगति है।

९. छायागति—घोड़े, हाथी, मनुष्य, किन्नर, महोरग, गंधर्व, बृषभ, रथ आदि की छाया के आधार से चलना, छायागति है।

१०. छायानुपातगति—पुरुष के साथ छाया जाती है, पुरुष छाया के साथ नहीं जाता, यह छायानुपातगति है।

११. लेश्यागति—कृष्णलेश्या नीललेश्या के द्रव्य पाकर नीललेश्या रूप में यानी नीललेश्या के वर्ण, गंध, रस रूप में परिणत होती है। इसी तरह नीललेश्या कापोतलेश्या रूप में, कापोतलेश्या तेजोलेश्या रूप में, तेजोलेश्या पद्मलेश्या रूप में और पद्मलेश्या शुक्ललेश्या रूप में परिणत होती है, इसे लेश्यागति कहते हैं।

१२. लेश्यानुपातगति—जीव जिस लेश्या में काल करता है, उसी लेश्या में उत्पन्न होता है, इसे लेश्यानुपातगति कहते हैं।

१३. उद्दिश्यप्रविभक्तगति—आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणी, गणधर, गणावच्छेदक का नाम लेकर उनके पास जाना, उद्दिश्यप्रविभक्तगति है।

१४. चतुःपुरुषप्रविभक्तगति—चार पुरुषों की चार तरह की पृथक्—पृथक् गति चतुःपुरुषप्रविभक्तगति है। जैसे चार पुरुष साथ रवाना हुए, साथ पहुंचे, जुदा—जुदा रवाना हुए, साथ—साथ पहुंचे, जुदा—जुदा रवाना हुए, जुदा-जुदा पहुंचे और साथ—साथ रवाना हुए, जुदा—जुदा पहुंचे।

योग ११ (वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र के सिवा), उपयोग ९ (तीन अज्ञान वर्जे), लेश्या १ (शुक्ल)।

अल्पबहुत्व–१ सबसे थोड़े पुरुषवेद वाले, २ स्त्रीवेद वाले संख्यातगुण, ३ अवेदी अनन्तगुण, ४ नपुंसकवेद वाले अनन्तगुण, ५ सवेदी विशेषाधिक।

(७) कषायद्वार–इसके ६ भेद–१ सकषाय, २ क्रोधकषाय, ३ मानकषाय, ४ मायाकषाय, ५ लोभकषाय, ६ अकषाय।

सकषाय और लोभकषाय में प्रत्येक में जीव के भेद १४, गुणस्थान १०, योग १५, उपयोग १०, लेश्या ६। क्रोधकषाय, मानकषाय और मायाकषाय में प्रत्येक में जीव के भेद १४, गुणस्थान ९, योग १५, उपयोग १०, लेश्या ६। अकषाय में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान ४ (अन्तिम), योग ११ (दो वैक्रिय और दो आहारक वर्जे), उपयोग ९ (तीन अज्ञान वर्जे) लेश्या १ (शुक्ल)।

अल्पबहुत्व–१ सबसे थोड़े अकषाय, २ मानकषाय अनन्तगुण, ३ क्रोधकषाय विशेषाधिक, ४ मायाकषाय विशेषाधिक, ५ लोभकषाय विशेषाधिक, ६ सकषाय विशेषाधिक।

(८) लेश्याद्वार–इसके आठ भेद–१ सलेशी, २ कृष्णलेश्या, ३ नीललेश्या, ४ कापोतलेश्या, ५ तेजोलेश्या, ६ पद्मलेश्या, ७ शुक्ललेश्या, ८ अलेशी।

सलेशी में जीव के भेद १४, गुणस्थान १३ (प्रथम के), योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६। कृष्णलेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या में प्रत्येक में जीव के भेद १४, गुणस्थान ६ (प्रथम के), योग १५, उपयोग १०, लेश्या अपनी–अपनी, तेजोलेश्या में जीव के भेद ३ (३, १३, १४), पद्मलेश्या में जीव के भेद २ (१३, १४), दोनों में प्रत्येक में गुणस्थान ७ (प्रथम के), योग १५, उपयोग १०,

लेश्या अपनी–अपनी। शुक्ललेश्या में जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान १३, योग १५, उपयोग १२, लेश्या १ शुक्ल। अलेशी में जीव का भेद १ (चौदहवां), गुणस्थान १ (चौदहवां), योग नहीं, उपयोग २, लेश्या नहीं।

अल्पबहुत्व–१, सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले, २ पद्मलेश्या वाले संख्यातगुण, ३ तेजोलेश्या वाले * संख्यातगुण, ४ अलेशी अनन्तगुण, ५, कापोतलेश्या वाले अनन्तगुण, ६ नीललेश्या वाले विशेषाधिक, ७ कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक, ८, सलेशी विशेषाधिक।

(९) सम्यक्त्वद्वार–सम्यक्त्वद्वार के ८ भेद–१ समुच्चय समदृष्टि, २ सास्वादनसम्यक्त्व, ३ उपशमसम्यक्त्व, ४ क्षयोपशमसम्यक्त्व, ५ वेदकसम्यक्त्व, ६ क्षायिकसम्यक्त्व, ७ मिथ्यात्व, ८ मिश्रदृष्टि।

समुच्चय समदृष्टि में जीव के भेद ६ (३ विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त), गुणस्थान १२ (१ व ३ छोड़कर), योग १५, उपयोग ९ (तीन अज्ञान छोड़कर), लेश्या ६। सास्वादनसम्यक्त्व में जीव के भेद ६, गुणस्थान १ (दूसरा), योग १३ (आहारक, आहारकमिश्र वर्जकर), उपयोग ६ (तीन ज्ञान, तीन दर्शन), लेश्या ६। उपशमसम्यक्त्व में जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान ८ (४ से ११), योग १५, उपयोग ७ (चार ज्ञान, तीन दर्शन), लेश्या ६। क्षयोपशम और वेदक सम्यक्त्व में जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान ४ (४ से ७ तक), योग १५, उपयोग ७, लेश्या ६। क्षायिकसम्यक्त्व में जीव के भेद २, गुणस्थान ११ (४ से १४), योग १५, उपयोग ९, लेश्या ६। मिथ्यात्व में जीव के भेद १४, गुणस्थान १, योग, १३, (आहारक

---

* कोई आचार्य असंख्यातगुण भी कहते हैं।

(१)– समुच्चय जीव, समुच्चय तिर्यंच ये दो बोल, समुच्चय एकेन्द्रिय और समुच्चय पांच स्थावर ये छह बोल तथा इन छह बोलों के पर्याप्त और अपर्याप्त ये बारह बोल, सब मिलाकर ये २० बोल– १ सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्‌लोक[1] में, २ उनसे अधोलोक–तिर्यक्‌लोक[2] में विशेषाधिक, ३ उनसे तिर्यक्‌लोक[3] में असंख्यातगुण, ४ उनसे त्रिलोक[4] में असंख्यातगुण, ५ उनसे ऊर्ध्वलोक[5] में असंख्यातगुण, ६ उनसे अधोलोक[6] में विशेषाधिक।

---

१ तिर्यक्‌लोक से ऊर्ध्वलोक में और ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्‌लोक में उत्पन्न होने वाले जीव तथा इन दोनों प्रतरों में रहने वाले जीव ही यहां ग्रहण किये हैं। ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में उत्पन्न होने वाले जीव यद्यपि इन दोनों प्रतरों का भी स्पर्श करते हैं, पर वे यहां नहीं गिने हैं। इसलिये सबसे थोड़े हैं।

२ अधोलोक से तिर्यक्‌लोक में और तिर्यक्‌लोक से अधोलोक में उत्पन्न होने वाले जीव अधोलोकप्रतर और तिर्यक्‌लोकप्रतर दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं और इन दोनों प्रतरों में रहने वाले जीव यहां ग्रहण किये हैं। अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले जीव यद्यपि इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, पर उन्हें यहां नहीं गिना है। चूंकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक का क्षेत्र अधिक है, इसलिये ऊर्ध्वलोक की अपेक्षा अधोलोक से तिर्यक्‌लोक में अधिक जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिये अधोलोक–तिर्यक्‌लोक में विशेषाधिक कहे हैं।

३ अधोलोक–तिर्यक्‌लोकक्षेत्र से तिर्यक्‌लोक का क्षेत्र असंख्यातगुण अधिक होने से तिर्यक्‌लोक में असंख्यातगुण बतलाये हैं।

४ विग्रहगति में मारणान्तिकसमुद्‌घात कर ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में और अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले जीव ही यहां गिने हैं, जो तिर्यक्‌लोक की अपेक्षा असंख्यातगुण हैं।

५ ऊर्ध्वलोक में उपपात–क्षेत्र अधिक होने से असंख्यातगुण कहे हैं।

६– ऊर्ध्वलोक से अधोलोक का विस्तार विशेष है, इसलिये अधोलोक में विशेषाधिक कहे हैं।

के दो वर्जकर), उपयोग ६, लेश्या ६। मिश्रदृष्टि में जीव का भेद १, गुणस्थान १ (३) योग १० (४ मन के, ४ वचन के, १ औदारिक और १ वैक्रिय), उपयोग ६ (तीन अज्ञान, तीन दर्शन), लेश्या ६।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े सास्वादनसम्यक्त्व वाले, २ उपशमसम्यक्त्व वाले संख्यातगुण, ३ मिश्रदृष्टि असंख्यातगुण, ४ क्षयोपशमसम्यक्त्व वाले असंख्यातगुण, ५ वेदकसम्यक्त्व वाले संख्यातगुण, ६ क्षायिकसम्यक्त्व वाले अनन्तगुण, ७ समुच्चय सम्यग्दृष्टि विशेषाधिक, ८ मिथ्यादृष्टि अनन्तगुण।

(१०) ज्ञानद्वार–ज्ञानद्वार के १० भेद–१ समुच्चय ज्ञानी, २ मतिज्ञानी, ३ श्रुतज्ञानी, ४ अवधिज्ञानी, ५ मनःपर्यवज्ञानी, ६ केवलज्ञानी, ७ मति–अज्ञानी, ८ श्रुत–अज्ञानी, ९ विभंगज्ञानी, १० समुच्चय अज्ञानी।

समुच्चय ज्ञानी में जीव के भेद ६ (सम्यग्दृष्टि के अनुसार), गुणस्थान १२ (१, ३ वर्जकर), योग १५, उपयोग ९, लेश्या ६। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी में प्रत्येक में जीव के भेद ६, गुणस्थान १० (१, ३, १३, १४ छोड़कर), योग १५, उपयोग ७ (चार ज्ञान, तीन दर्शन), लेश्या ६।

अवधिज्ञानी में जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान १० (१, ३, १३, १४ छोड़कर), योग १५, उपयोग ७, लेश्या ६। मनः पर्यवज्ञानी में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान ७ (६ से १२), योग ५ या ७ (अनिन्द्रियवत्), उपयोग २, लेश्या १ (परम शुक्ल)। समुच्चय अज्ञानी, मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी में प्रत्येक में जीव के भेद १४, गुणस्थान २ (१, ३), योग १३ (दो आहारक के छोड़कर), उपयोग ६ (३ अज्ञान, ३ दर्शन), लेश्या ६। विभंगज्ञानी में जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान २, योग १३, उपयोग ६, लेश्या ६।

(२)– १ समुच्चय नारकी के नैरयिक सबसे थोड़े त्रिलोक[1] में, २ अधोलोक–तिर्यक्लोक[2] में असंख्यातगुण, ३ अधोलोक[3] में असंख्यातगुण।

(३)– १ समुच्चय तिर्यंचस्त्री, समुच्चय देवता, देवांगना सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक[4] में, २ ऊर्ध्वलोक– तिर्यक्लोक[5]

---

१ – मेरुपर्वत, अंजनगिरि, दधिमुखपर्वत पर रही हुई बावड़ियों में वर्तमान मत्स्य वगैरह नारकी का आयुष्य बांधकर अंत समय में मारणान्तिकसमुद्घात कर नारकी में उत्पन्न होते हुए नरकायु भोगते हुए तीनों लोक का स्पर्श करते हैं, जो सबसे थोड़े हैं।

२ – तिर्यक्लोक के असंख्यात द्वीप–समुद्रों में रहे हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनि के जीव नारकी में उत्पन्न होते हुए अधोलोक और तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं। मेरु आदि के क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात द्वीप–समुद्र रूप क्षेत्र असंख्यातगुणा है, अतः यहां से नारकी में उत्पन्न होने वाले जीव भी असंख्यातगुणा हैं।

३– अधोलोक नैरयिकों के रहने का स्थान ही है, अतः यहां असंख्यातगुणा हैं।

४ – मेरुगिरि तथा अंजनगिरि आदि पर्वतों की शिखर पर बावड़ियों में तिर्यंचस्त्रियां हैं, जो थोड़ी हैं। ऊर्ध्वलोक में विमानवासी देवता देवांगना भी सबसे थोड़े हैं।

५ – ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में तिर्यंचस्त्री रूप से उत्पन्न होने वाले देवी देवता तथा एकेन्द्रियादि ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक के दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। तिर्यक्लोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाली तिर्यंचस्त्रियां भी दोनों प्रतरों का स्पर्श करती हैं। ये दोनों प्रतर ज्योतिषी देवों के समीप हैं, इसलिये उनके स्वस्थान हैं. व्यन्तर, ज्योतिषी देव ऊर्ध्वलोक में जाते हैं तो जाते–आते हुए इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। तिर्यक्लोक से सौधर्मादि कल्पों में तथा एकेन्द्रियादि में उत्पन्न होने वाले जीव भी इन दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं। अतः ऊर्ध्वलोक से ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणा हैं।

अल्पबहुत्व–ज्ञान की अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञानी, २ अवधिज्ञानी असंख्यातगुण, ३–४ मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी परस्पर तुल्य, विशेषाधिक ५ केवलज्ञानी अनन्तगुण, ६ समुच्चय ज्ञानी विशेषाधिक। अज्ञान की अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े विभंगज्ञानी, २–३ मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी परस्पर तुल्य, अनन्तगुण। ज्ञान–अज्ञान दोनों की सम्मिलित अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञानी, २ अवधिज्ञानी असंख्यातगुण, ३–४ मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी परस्पर तुल्य, विशेषाधिक, ५ विभंगज्ञानी असंख्यातगुण, ६ केवलज्ञानी अनन्तगुण, ७ समुच्चयज्ञानी विशेषाधिक, ८–९ मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी परस्पर तुल्य, अनन्तगुण, १० समुच्चय अज्ञानी विशेषाधिक।

(११) दर्शनद्वार–दर्शन के ४ भेद–१ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन।

चक्षुदर्शन में जीव के भेद ३ अथवा ६, तीन मिलें तो (१०, १२, १४) छह मिलें तो (९ से १४ तक), गुणस्थान १२ (१३–१४ वर्जकर), योग १४ (कार्मण छोड़कर), उपयोग १० (केवलज्ञान, केवलदर्शन छोड़कर), लेश्या ६। अचक्षुदर्शन में जीव के भेद १४, गुणस्थान १२ (पहले), योग १५, उपयोग १०, लेश्या ६। अवधिदर्शन में जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान १२ (पहले), योग १५, उपयोग १०, लेश्या ६। केवलदर्शन में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान २ (१३, १४), योग ५ तथा ७ (अनिन्द्रियवत्), उपयोग २, लेश्या १ (परमशुक्ल)।

अल्पबहुत्व–१ सबसे थोड़े अवधिदर्शन वाले, २ चक्षुदर्शन वाले असंख्यातगुण, ३ केवलदर्शन वाले अनन्तगुण, ४ अचक्षुदर्शन वाले अनन्तगुण।

में असंख्यातगुण, ३ त्रिलोक[1] में संख्यातगुणा, ४ अधोलोक-तिर्यक्लोक[2] में संख्यातगुणा, ५ अधोलोक[3] में संख्यातगुणा, ६ तिर्यक्लोक[4] में संख्यातगुणा।

---

१ – अधोलोक से भवनपति, व्यन्तर और अन्य जीव भी ऊर्ध्वलोक में तिर्यंच-स्त्री रूप से उत्पन्न होते हुए तथा ऊर्ध्वलोक के देव आदि भी अधोलोक में तिर्यचस्त्री रूप से उत्पन्न होते हुए मारणान्तिकसमुद्घात कर तीनों लोक का स्पर्श करते हैं।

२ – अधोलोक से अनेक नैरयिकादि तियक्लोक में तिर्यचस्त्री आदि रूप से उत्पन्न होते हुए और तिर्यक्लोक के जीव तिर्यंचस्त्री रूप से अधोलोक के ग्रामों (सलिलावती विजय) में उत्पन्न होते हुए अधोलोक-तिर्यक्लोक के दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं तथा कई तिर्यंचस्त्रियां इन दोनों प्रतरों में रहती हैं, अतः ये संख्यातगुणी हैं। ये दोनों प्रतर भवनपति, व्यन्तर देवों के समीप होने से उनके स्वस्थान हैं। बहुत से भवनपति देव तिर्यक्लोक में आते हुए तथा वैक्रियसमुद्घात कर दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं। तिर्यक्लोक में रहने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य भवनपति देवों में उत्पन्न होते हुए इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

३ –अधोलोक में ग्राम और समुद्र १००० योजन गहरे हैं, उनमें ९०० योजन तिर्यक्लोक में और सौ योजन अधोलोक में हैं। यहां मछली वगैरह बहुत-सी तिर्यंचस्त्रियां हैं, यह उनका स्वस्थान है तथा क्षेत्र भी संख्यातगुणा है, इसलिए इन्हें संख्यातगुणा कहा है। अधोलोक भवनपति का स्वस्थान है, इसलिए संख्यातगुणा हैं।

४–तिर्यक्लोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं, यहां तिर्यंचस्त्रियां बहुत हैं। तिर्यक्लोक व्यन्तर और ज्योतिषी देवों का स्वस्थान है, इसलिए संख्यातगुणा हैं।

(१२) संयतद्वार–संयतद्वार के नौ भेद–१ समुच्चय संयत, २ सामायिकचारित्र, ३ छेदोपस्थापनीयचारित्र, ४ परिहारविशुद्धिचारित्र, ५ सूक्ष्मसम्परायचारित्र, ६ यथाख्यातचारित्र, ७ संयतासंयत, ८ असंयत, ९ नोसंयत– नोअसंयत–नोसंयतासंयत।

समुच्चय संयत में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान ९ (६ से १४ तक), योग १५, उपयोग ९, लेश्या ६। सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनीयचारित्र में प्रत्येक में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान ४ (६ से ९ तक), योग १४ (कार्मणयोग छोड़कर), उपयोग ७ (४ ज्ञान ३ दर्शन), लेश्या ६। परिहारविशुद्धिचारित्र में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान २ (६, ७) योग ९ (४ मन के, ४ वचन के, औदारिक) उपयोग ७ (४ ज्ञान, ३ दर्शन), लेश्या ३ (४ से ६)। सूक्ष्मसम्परायचारित्र में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान १ (१०), योग ९, उपयोग ४ (चार ज्ञान), लेश्या १ (शुक्ल)। यथाख्यातचारित्र में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान ४ (११ से १४), योग ११ (४ मन के, ४ वचन के, औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मण), उपयोग ९, लेश्या १ (शुक्ल)। संयतासंयत में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान १ (पांचवां), योग १२ (आहारक के दो व कार्मण वर्जकर), उपयोग ९ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन), लेश्या ६। नोसंयत–नोअसंयत–नोसंयतासंयत में जीव का भेद, गुणस्थान, योग, लेश्या नहीं, उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन)।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े सूक्ष्मसम्परायचारित्र वाले, २ परिहारविशुद्धिचारित्र वाले संख्यातगुण, ३ यथाख्यातचारित्र वाले संख्यातगुण, ४ छेदोपस्थापनीयचारित्र वाले संख्यातगुण, ५ सामायिकचारित्र वाले संख्यातगुण, ६ समुच्चय संयत विशेषाधिक,

(४)– १ मनुष्य और मनुष्यस्त्रियां सबसे थोड़ी त्रिलोक[1] में, २ ऊर्ध्वलोक – तिर्यक्लोक[2] में मनुष्य असंख्यातगुणा, मनुष्यस्त्रियां संख्यातगुणी, ३ अधोलोक–तिर्यक्लोक [3] में संख्यातगुणा, ४ ऊर्ध्वलोक [4] में संख्यातगुणा,

---

१– ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में उत्पन्न होते हुए मारणान्तिक–समुद्घात करते हुए तथा केवलीसमुद्घात करते हुए तीनों लोक का स्पर्श करते हैं, जो सबसे थोड़े हैं।

२– ऊर्ध्वलोक से वैमानिक देव तथा एकेन्द्रियादि मनुष्य में उत्पन्न होते हुए दोनों ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक के प्रतर स्पर्श करते हैं। विद्याधर भी मेरुपर्वत पर जाते हैं, उनके शुक्र रुधिर आदि पुद्गलों में बहुत सम्मूर्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। विद्याधर जब इन पुद्गलों के साथ जाते हैं तब सम्मूर्छिम मनुष्य प्रतर का स्पर्श करते हैं। तिर्यक्लोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले मनुष्य अन्तसमय में मारणान्तिकसमुद्घात कर आत्मप्रदेशों को ऊर्ध्वलोक में फैला देते हैं, उस समय भी दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, इसलिए अधिक हैं।

३– अधोलोक के गांवों में स्वभावत: बहुत मनुष्य हैं। तिर्यक्लोक से मनुष्य एवं अन्य काय के जीव मर कर जब इन अधोलोक के गांवों में गर्भज और सम्मूर्छिम मनुष्य रूप से उत्पन्न होते हैं तो अधोलोक–तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर स्पर्श करते हैं। इसी तरह अधोलोक के गांवों (सलिलावतीविजय) से तथा नारकी; भवनपति आदि से तिर्यक्लोक में गर्भज और सम्मूर्छिम मनुष्य होकर उत्पन होते हैं, तो इन दोनों प्रतरों को स्पर्श करते हैं। नीचे लोक में गांवों में कई मनुष्य स्वस्थान से भी इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, अत: संख्यातगुणा हैं।

४– मेरु पर्वत पर विद्याधर क्रीड़ा निमित्त जाते तथा चारण मुनि भी जाते हैं, उनके शुक्र रुधिर आदि पुद्गलों में बहुत सम्मूर्छिम मनुष्य उत्पन्न हो सकते हैं, अत: संख्यातगुणा हैं।

७ संयतासंयत असंख्यातगुण, ८ नोसंयत–नोअसंयत–नोसंयतासंयत अनन्तगुण, ९ असंयत अनन्तगुण।

(१३) उपयोगद्वार–उपयोग के दो भेद–१ साकार–उपयोग, २ अनाकार–उपयोग। साकार–उपयोग और अनाकार–उपयोग दोनों में प्रत्येक में जीव के भेद १४, गुणस्थान साकार–उपयोग में १४ और अनाकार–उपयोग में १३ (१० वां वर्जकर), दोनों में प्रत्येक में योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े अनाकार–उपयोग वाले, २ साकार–उपयोग वाले संख्यातगुण।

(१४) आहारकद्वार– इसके दो भेद– १ आहारक, २ अनाहारक। आहारक में जीव के भेद १४, गुणस्थान १३ (पहले के), योग १४ (कार्मण वर्जकर), उपयोग १२, लेश्या ६। अनाहारक में जीव के भेद ८ (सात अपर्याप्त और संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त), गुणस्थान ५ (१, २, ४, १३, १४), योग १ (कार्मण), उपयोग १० (मनःपर्यवज्ञान और चक्षुदर्शन के सिवा), लेश्या ६।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े अनाहारक, २ आहारक असंख्यातगुण।

(१५) भाषकद्वार– इसके दो भेद– १ भाषक, २ अभाषक। भाषक में जीव के भेद ५ (३ विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त) गुणस्थान १३ (प्रथम के), योग १४ (कार्मण वर्जकर), उपयोग १२, लेश्या ६। अभाषक में जीव के भेद १० (तीन विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त के सिवा), गुणस्थान ५ (१, २, ४, १३, १४), योग ५ (दो औदारिक, दो वैक्रिय और कार्मण), उपयोग १० (मनःपर्यवज्ञान और चक्षुदर्शन वर्जकर)

५ अधोलोक में[1] संख्यातगुणा, ६ तिर्यक्लोक [2] में संख्यातगुणा।

(५)– १ भवनपति देव, देवी सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक [3] में, २ ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक[4] में असंख्यातगुणा, ३ त्रिलोक[5] में संख्यात्तगुणा, ४ अधोलोक–तिर्यक्लोक[6] में असंख्यातगुणा, ५ तिर्यक्लोक[7] मेंअसंख्यातगुणा,६अधोलोक[8] में असंख्यातगुणा।

१– अधोलोक में सलिलावतीविजय है, जो मनुष्यों का स्वस्थान है, अतः संख्यातगुणा है।

२– तिर्यक्लोक का क्षेत्र संख्यात्तगुणा है। अढ़ाई द्वीप मनुष्यस्त्रियों का स्वस्थान है, अतः संख्यातगुणा है।

३– भवनपति देव, देवियां पहले की मित्रता के कारण सौधर्मादि देवलोक में जाते हैं, तीर्थंकरों के जन्ममहोत्सव पर मेरु पर्वत पर जाते हैं, क्रीड़ा निमित्त भी ये मेरु पर्वत पर जाते हैं, अंजनगिरिदधिमुखपर्वत पर भी जाते–आते हैं, फिर भी ये थोड़े हैं।

४– तिर्यक्लोक में रहे हुए भवनपति देवदेवी वैक्रियसमुद्घात कर ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्लोक के दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। तिर्यक्लोक मे रहे हुए मारणान्तिकसमुद्घात कर ऊर्ध्वलोक में बादर पृथ्वीकायादि में उत्पन्न होते हुए भी ये उक्त दोनों प्रतर स्पर्श करते हैं। वैक्रियसमुद्घात करते हुए तथा क्रीड़ास्थान पर जाते–आते दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं।

५– ऊर्ध्वलोक में रहे हुए पंचेन्द्रियतिर्यंच भवनपति में उत्पन्न होते हुए मारणान्तिकसमुद्घात कर तीनों लोक का स्पर्श करते हैं। भवनपति देव भी मारणान्तिकसमुद्घात करते हुए तीनों लोक का स्पर्श करते हैं, अतः संख्यात्तगुणा हैं।

६– तिर्यक्लोक में गमनागमन करते हुए तथा समुद्घात करते हुए भवनपति देव अधोलोक और तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं। तिर्यक्लोक के तिर्यंच और मनुष्य मर कर भवनपतिदेव में उत्पन्न होते हुए इन दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, अतः असंख्यातगुणा हैं।

७– समवसरण में वंदना निमित्त तथा तीर्थंकरों के पंच कल्याणक के अवसर पर भवनपतिदेव तिर्यक्लोक में आते हैं तथा रमणीय द्वीपों में भवनपतिदेव क्रीड़ा निमित्त आते हैं तथा वहीं पर चिर काल तक रहते हैं, अतः असंख्यातगुण हैं।

८–अधोलोक भवनपति देवताओं का स्वस्थान है, अतः यहां असंख्यातगुणा हैं।

लेश्या ६।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े भाषक, २ अभाषक अनन्तगुण।

(१६) परित्तद्वार–इसके ३ भेद– १ परित्त, २ अपरित्त, ३ नोपरित्त–नोअपरित्त।

परित्त में जीव के भेद १४, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२ और लेश्या ६। अपरित्त में जीव के भेद १४, गुणस्थान १ (पहला), योग १३ (दो आहारक के वर्जे), उपयोग ६, लेश्या ६। नोपरित्त–नोअपरित्त में जीव के भेद नहीं, गुणस्थान नहीं, योग नहीं, उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन), लेश्या नहीं।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े परित्त, २ नोपरित्त–नो–अपरित्त अनन्तगुण, ३ अपरित्त अनन्तगुण।

(१७) पर्याप्तद्वार– इसके ३ भेद– १ पर्याप्त, २ अपर्याप्त, ३ नोपर्याप्त–नोअपर्याप्त।

पर्याप्त में जीव के भेद ७, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६। अपर्याप्त में जीव के भेद ७, गुणस्थान ३ (१, २, ४), योग ५ (२ औदारिक, २ वैक्रिय और कार्मण) उपयोग ८ तथा ९ (३ ज्ञान, २ अज्ञान, ३ दर्शन, ८ में चक्षुदर्शन नहीं गिना), लेश्या ६। नोपर्याप्त–नोअपर्याप्त में जीव के भेद नहीं, गुणस्थान नहीं, योग नहीं, उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन), लेश्या नहीं।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े नो–पर्याप्त–नोअपर्याप्त, अपर्याप्त अनन्तगुण, ३ पर्याप्त संख्यातगुण।

(१८) सूक्ष्मद्वार– इसके ३ भेद– १ सूक्ष्म, २ बादर, ३ नोसूक्ष्म–नोबादर

(६)– १ व्यन्तर देव और देवी सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक[1] में, २ ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक[2] में असंख्यातगुणा, ३ त्रिलोक[3] में संख्यातगुणा, ४ अधोलोक–तिर्यक्लोक[4] में असंख्यातगुणा, ५ अधोलोक[5] में संख्यातगुणा, ६ तिर्यक्लोक[6] मे संख्यातगुणा।

१– तीर्थंकर भगवान् के जन्ममहोत्सव पर मेरु पर्वत पर जाते हैं तथा कुछ पण्डकवनादि में जाते हैं, अतः ऊर्ध्वलोक में सबसे थोड़े हैं।

२– ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर कई व्यन्तर देव–देवियों के अपने स्थान के अन्दर हैं, कई देव–देवियों के अपने स्थान के नजदीक हैं। मेरु पर्वत आदि पर जाते–आते भी व्यन्तर देव–देवियां इन दोनों प्रतर का स्पर्श करती हैं। ऊर्ध्वलोक के मच्छ–कच्छ आदि मर कर व्यन्तर जाति के देव–देवियों में उत्पन्न होते हुए इन दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं।

३– ऊर्ध्वलोक या अधोलोक में गये हुए व्यन्तर देव–देवी ऊर्ध्वलोक अथवा अधोलोक में उत्पन्न होने वाले अन्त समय में मारणान्तिकसमुद्घात कर तीनों लोक का स्पर्श करते हैं, जो पहले से बहुत अधिक हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

४– अधोलोक–तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर कई व्यन्तर देव–देवियों के स्वस्थान हैं, इसलिये इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करने वाले बहुत हैं। नीचे लोक के मच्छ, कच्छ आदि तिर्यक्लोक में व्यन्तर देवों में उत्पन्न होते हुए इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं।

५– अधोलोक के ग्रामों में व्यन्तर देवों के अपने स्थान हैं तथा क्रीड़ा निमित्त भी अधोलोक में जाते हैं। तीर्थंकर भगवान् के दर्शनार्थ भी व्यन्तर देव–देवी अधोलोक में जाते हैं।

६– तिर्यक्लोक व्यन्तर देव–देवियों का स्वस्थान है, इसलिये वहां संख्यातगुणा हैं।

सूक्ष्म में जीव के भेद २ (पहले), गुणस्थान १ (पहला), योग ३ (२ औदारिक १ कार्मण),उपयोग ३ (दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन), लेश्या ३ पहली। बादर में जीव के भेद १२, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६।नोसूक्ष्म–नोबादर में जीव के भेद नहीं, गुणस्थान नहीं, योग नहीं, उपयोग दो (केवलज्ञान, केवलदर्शन) और लेश्या नहीं।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े नोसूक्ष्म– नोबादर, २ बादर अनन्तगुण, ३ सूक्ष्म असंख्यातगुण।

(१९) संज्ञीद्वार– इसके तीन भेद– १ संज्ञी, २ असंज्ञी, ३ नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी।

संज्ञी में जीव के भेद २, गुणस्थान १२ (पहले के), योग १५, उपयोग १० (केवलज्ञान, केवलदर्शन नहीं), लेश्या ६।असंज्ञी में जीव के भेद १२ (१ से १२ तक), गुणस्थान २ (१,२), योग ६ (दो औदारिक, २ वैक्रिय, कार्मण और व्यवहार– भाषा), उपयोग ६ (२ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दर्शन), लेश्या ४ (पहली)। नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी में जीव का भेद १ (१४), गुणस्थान २ (१३, १४), योग ५ या ७, उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन) लेश्या १ शुक्ल।

अल्पबहुत्व– १ सबसे थोड़े संज्ञी, २ नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी अनन्तगुण, ३ असंज्ञी अनन्तगुण।

(२०) भव्यद्वार– इसके ३ भेद– १ भव्य, २ अभव्य, ३ नोभव्य–नोअभव्य।

भव्य में जीव के भेद १४, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६। अभव्य में जीव के भेद १४, गुणस्थान १ (पहला),

(७)– १ ज्योतिषी देव–देवी सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक[१] में, २ ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक[२] में असंख्यातगुणा, ३ त्रिलोक[३] में संख्यातगुणा, ४ अधोलोक–तिर्यक्लोक[४] में असंख्यातगुणा, ५ अधोलोक[५] में संख्यातगुणा ,६ तिर्यक्लोक [६] में असंख्यातगुणा।

(८)– १ वैमानिक देव–देवी सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक[७] में, २ त्रिलोक[८] में संख्यातगुणा, ३ अधोलोक–

१– कुछ ज्योतिपी देव मेरु पर्वत पर तीर्थंकर भगवान् के जन्महोत्सव पर जाते हैं तथा कई क्रीड़ा निमित्त जाते हैं, अतः सबसे थोड़े हैं।

२– ऊर्ध्वलोक जाते–आते हुए इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। दोनों प्रतरों का स्पर्श करने वाले ये ज्योतिपी देव–देवी पूर्वोक्त से असंख्यातगुणा हैं।

३– मारणान्तिकसमुद्घात कर ज्योतिपी देव–देवी तीनों लोक का स्पर्श करते हैं, जो स्वभावतः बहुत होते हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

४– समवसरणादि निमित्त व क्रीड़ा निमित्त अधोलोक के ग्रामों में जाते हुए ज्योतिपी देव अधोलोक–तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं। अधोलोक से ज्योतिपियों में उत्पन्न होने वाले जीव भी इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, अतः असंख्यातगुणा हैं।

५–अधोलोक में क्रीड़ानिमित्त ज्योतिपी देव–देवी दीर्घकाल तक रहते हैं तथा अधोलोक के गांवों में समवसरणादि में रहते हैं, इसलिये संख्यातगुणा हैं।

६– तिर्यक्लोक ज्योतिपी देवों का अपना स्थान है ,अतःवहां असंख्यातगुणा हैं।

७–तिर्यक्लोक के मनुष्य और तिर्यंच मरकर वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हुए ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्लोक के दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। तिर्यक्लोक में गमनागमन करते हुए वैमानिक देव–देवी भी इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। इन दोनों प्रतर में रहे हुए क्रीड़ास्थान पर गये हुए तथा तिर्यक्लोक में रह कर वैक्रिय तथा मारणान्तिकसमुद्घात करते हुए वैमानिक देव–देवी इन दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, इसलिए सबसे थोड़े हैं।

८– मारणान्तिकसमुद्घात कर ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में उत्पन्न होते हुए वैमानिक देव–देवी तीनों लोक का स्पर्श करते हैं, अतः त्रिलोक में संख्यातगुणा हैं।

योग १३ (आहारक के दो वर्जे), उपयोग ६ (३ अज्ञान, ३ दर्शन), लेश्या ६। नोभव्य-नोअभव्य में जीव का भेद नहीं, गुणस्थान नहीं, योग नहीं, उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन), लेश्या नहीं।

अल्पबहुत्व- १ सबसे थोड़े अभव्य, २ नोभव्य-नोअभव्य अनन्तगुण, ३ भव्य अनन्तगुण।

(२१) चरमद्वार- इसके दो भेद- १ चरम, २ अचरम।

चरम में जीव के भेद १४, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६। अचरम में जीव के भेद १४, गुणस्थान १ (पहला), योग १३, उपयोग ८ (३ अज्ञान, केवलज्ञान, ४ दर्शन), लेश्या ६।

अल्पबहुत्व- १ सबसे थोड़े अचरम, २ चरम अनन्तगुण।

अस्तिकायद्वार की अल्पबहुत्व-अस्तिकाय की द्रव्य की अपेक्षा (दव्वट्ठयाए) अल्पबहुत्व- १ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय द्रव्य रूप से एक हैं अतः परस्पर तुल्य हैं और सबसे थोड़े हैं, २ जीवास्तिकाय द्रव्य रूप से अनन्तगुण है, ३ पुद्‌गलास्तिकाय द्रव्य रूप से अनन्तगुण है, ४ काल द्रव्य रूप से अनन्तगुण है।

अस्तिकाय की प्रदेश की अपेक्षा (पएसट्ठयाए) अल्पबहुत्व- १ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय प्रदेश की अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं और सबसे थोड़े हैं, २ जीवास्तिकाय प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुण, ३ पुद्‌गलास्तिकाय प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुण, ४* काल प्रदेश रूप से अनन्तगुण, ५ आकाशास्तिकाय प्रदेश रूप से अनन्तगुण।

---

* यहां प्रदेश से भूत और भविष्य के समय लिये हैं। वैसे काल के प्रदेश नहीं होते हैं।

तिर्यक्लोक[1] में संख्यातगुणा, ४ अधोलोक[2] में संख्यातगुणा, ५ तिर्यक्लोक[3] में संख्यातगुणा, ६ ऊर्ध्वलोक[4] में असंख्यातगुणा।

(९) समुच्चय तीन विकलेन्द्रिय, तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त और तीन विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त–१ सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक[5] में, २ ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक[6] में असंख्यातगुणा, ३ तीन लोक[7] में असंख्यातगुणा ४ अधोलोक–तिर्यक्लोक[8] में

१–अधोलोक के गांवों में समवसरणादि निमित्त जाते–आते हुए तथा इन दोनों प्रतरों में स्थित समवसरणादि में चिरकाल तक रहते हुए अधोलोक–तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

२–बहुत से वैमानिक देव–देवी अधोलोक के गांवों में समवसरणादि में रहते हैं, कारणवश भवनपति देवों के भवनों में तथा नरक में जाते हैं, इसलिए संख्यातगुणा हैं।

३–तिर्यक्लोक में मनुष्यक्षेत्र में जघन्य २०, उत्कृष्ट १७० तीर्थंकर भगवान् हैं। उनके पंच–कल्याणक के अवसर पर तथा दर्शन निमित्त आते हैं, समवसरण में रहते हैं तथा क्रीड़ा के स्थानों में रहते हैं, इसलिये संख्यातगुणा हैं।

४–ऊर्ध्वलोक वैमानिक देवों का स्वस्थान है, वहां सदा अधिकतर वैमानिक देव–देवी रहते हैं, अतः असंख्यातगुणा हैं।

५–ऊर्ध्वलोक के एक देश में यानी मेरु पर्वत की बावड़ी में विकलेन्द्रिय हैं, इसलिये सबसे थोड़े हैं।

६–ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में और तिर्यक्लोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक के दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, कई विकलेन्द्रिय इन दोनों प्रतरों के क्षेत्र में रहे हुए हैं। इसलिए दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, अतः असंख्यातगुणा हैं।

७–अधोलोक से ऊर्ध्वलोक और ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में जो विकलेन्द्रिय मारणान्तिकसमुद्घात कर एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने वाले हैं तथा जो एकेन्द्रियादि विकलेन्द्रिय रूप में उत्पन्न होने वाले हैं, वे मारणान्तिकसमुद्घात कर तीनों लोक का स्पर्श करते हैं। ये पहले से असंख्यातगुणा हैं।

८–अधोलोक से तिर्यक्लोक में तथा तिर्यक्लोक से अधोलोक में विकलेन्द्रिय रूप से उत्पन्न होने वाले विकलेन्द्रिय की आयु वेदते हुए ईलिकागति से उत्पन्न होते हैं, वे अधोलोक और तिर्यक्लोक के दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं तथा जो द्वीन्द्रियादि तिर्यक्लोक से अधोलोक में और अधोलोक से तिर्यक्लोक में एकेन्द्रियादि रूप में उत्पन्न होने वाले हैं वे पहले मारणान्तिकसमुद्घात कर विकलेन्द्रिय की आयु वेदते हुए उत्पत्तिदेश पर्यन्त आत्मप्रदेशों को फैलाते हुए इन दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, ऐसे जीव बहुत हैं, अतः असंख्यातगुणा हैं।

अस्तिकाय द्रव्यों में प्रत्येक की द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा अल्पबहुत्व–

१ सबसे थोड़ा एक धर्मास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा, २ प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुण।

२ सबसे थोड़ा एक अधर्मास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा, २ प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुण।

३ सबसे थोड़ा एक आकाशास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा, २ प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुण।

४ सबसे थोड़े जीवास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा, २ वे ही प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुण, क्योंकि प्रत्येक जीव में लोकाकाश के बराबर प्रदेश होते हैं।

५ सबसे थोड़े पुद्‌गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा, २ वे ही प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुण।

काल के प्रदेश नहीं होने से उसकी अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है।

द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा अस्तिकाय द्रव्यों की सम्मिलित अल्पबहुत्व–१ सबसे थोड़े धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, द्रव्य रूप से परस्पर तुल्य, २ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुण, ३ जीवास्तिकाय द्रव्य रूप से अनन्तगुण, ४ वे ही प्रदेश रूप से असंख्यातगुण, ५ पुद्‌गलास्तिकाय द्रव्य रूप से अनन्तगुण, ६ वे ही प्रदेश रूप से असंख्यातगुण, ७ काल द्रव्य और * प्रदेश रूप से अनन्तगुण, ८ आकाशास्तिकाय प्रदेश रूप से अनन्तगुण।

---

* यहां भी प्रदेश से भूत भविष्य के समय लिये हैं। वैसे काल अप्रदेश होता है।

असंख्यातगुणा, ५ अधोलोक[1] में संख्यातगुणा, ६ तिर्यक्‌लोक[2] में संख्यातगुणा।

(१०) समुच्चय त्रस, त्रस के पर्याप्त, त्रस के अपर्याप्त, समुच्चय पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त–१ सबसे थोड़े त्रिलोक[3] में, २ ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्‌लोक[4] में संख्यातगुणा, ३ अधोलोक–तिर्यक्‌लोक[5] में संख्यातगुणा, ४ ऊर्ध्वलोक[6] में संख्यातगुणा, ५ अधोलोक[7] में संख्यातगुणा, ६ तिर्यक्‌लोक[8] में असंख्यातगुणा।

१–विकलेन्द्रिय के उत्पत्तिस्थान अधोलोक में बहुत हैं। सभी समुद्र १००० योजन गहरे हैं। नीचे के १०० योजन अधोलोक में हैं, वहां बहुत से विकलेन्द्रिय उत्पन्न होते हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

२–तिर्यक्‌लोक में द्वीप, समुद्र बहुत हैं। यहां विकलेन्द्रिय के उत्पत्तिस्थान और भी अधिक हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

३–अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में और ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में त्रस और पंचेन्द्रिय रूप से उत्पन्न होने वाले जीव मारणान्तिकसमुद्‌घात कर उत्पत्ति–प्रदेश पर्यन्त आत्मप्रदेशों को फैला देते हैं। ये दोनों प्रकार के त्रस और पंचेन्द्रिय तीनों लोक का स्पर्श करते हैं। ये सबसे थोड़े हैं।

४–ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्‌लोक में और तिर्यक्‌लोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्‌लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं। ये जीव वैक्रिय और मारणान्तिकसमुद्‌घात द्वारा भी दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

५– अधोलोक से तिर्यक्‌लोक में और तिर्यक्‌लोक से अधोलोक में उत्पन्न होने वाले अधोलोक और तिर्यक्‌लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं तथा वैक्रिय और मारणान्तिकसमुद्‌घात द्वारा भी दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

६–ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देवों के शाश्वत स्थान हैं तथा मेरुपर्वत तथा अंजनादिक पर्वतों की बावड़ियों में तिर्यंच हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

७–अधोलोक में चार पातालकलश हैं, सलिलावतीविजय एक हजार योजन ऊँची है तथा सभी समुद्र एक हजार योजन गहरे हैं, वहां तिर्यंच जीव बहुत हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

८–तिर्यक्‌लोक में तिर्यंच बहुत हैं, अतः संख्यातगुणा हैं।

३. जीवादि छह बोलों की अल्पबहुत्व

(पन्नवणासूत्र, तीसरा पद)

जीव, पुद्गल, काल (अद्धासमय), सर्व द्रव्य, सर्व प्रदेश और सर्व पर्यव (पर्याय) की अल्पबहुत्व–

१ सबसे थोड़े जीव, २ पुद्गल अनन्तगुण, ३ काल अनन्तगुण, ४ सर्व द्रव्य विशेषाधिक, ५ सर्वप्रदेश अनन्तगुण, ६ सर्व पर्यव अनन्तगुण।

४. खेत्ताणुवाय (क्षेत्रानुपात)

(पन्नवणासूत्र, तीसरा पद)

इस थोकड़े में क्षेत्र के छह भेद कर उनकी अपेक्षा क्षेत्र की अल्पबहुत्व बतायी गयी है। छह भेद ये हैं–१ ऊर्ध्वलोक, २ अधोलोक, ३ तिर्यक्लोक (तिरछालोक), ४ *ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक ५+अधोलोक–तिर्यक्लोक ६ त्रिलोक (तीन लोक)।

---

*ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक – चौदह रज्जु प्रमाण लोक है, जो ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और अधोलोक रूप है। तीन लोक का यह विभाग मेरु पर्वत के मध्य रहे हुए रुचक प्रदेशों की अपेक्षा है। मेरु पर्वत एक हजार योजन भूमि में है और ९९ हजार योजन भूमि ऊपर है। भूमि के समतल के मेरु प्रदेश में आठ रुचक प्रदेश रहे हुए हैं। इन रुचक प्रदेशों के ९०० योजन नीचे अधोलोक है और रुचक प्रदेशों के ९०० योजन ऊपर ऊर्ध्वलोक है। ऊर्ध्वलोक और अधोलोक के बीच अठारह सौ योजन प्रमाण तिर्यक्लोक है। ऊर्ध्वलोक का प्रमाण सात रज्जु से कुछ कम है और अधोलोक का प्रमाम सात रज्जु से कुछ अधिक है। रुचक प्रदेशों से ९०० योजन ऊपर तिर्यक्लोक का अंतिम एक आकाश प्रदेश का प्रतर तिर्यक्लोक प्रतर है और इसके ऊपर का ऊर्ध्वलोक के नीचे ही नीचे का एक आकाश प्रदेश का प्रतर ऊर्ध्वलोकप्रतर है। इन दोनों प्रतरों का नाम ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक है।

+अधोलोक–तिर्यक्लोक–अधोलोक के ऊपर ही ऊपर का एक आकाश प्रदेश का प्रतर अधोलोकप्रतर है और तिर्यक्लोक के नीचे ही नीचे का एक आकाश प्रदेश का प्रतर तिर्यक्लोकप्रतर है। इन दोनों प्रतरों का नाम अधोलोक–तिर्यक्लोक है।

(११) पंचेन्द्रिय के पर्याप्त–१ सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक[1] में, २ ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक[2] में असंख्यातगुणा, ३ त्रिलोक[3] में संख्यातगुणा, ४ अधोलोक–तिर्यक्लोक[4] में संख्यातगुणा, ५ अधोलोक [5] में संख्यातगुणा, ६ तिर्यक्लोक[6] में असंख्यातगुणा।

क्षेत्रसम्बन्धी अल्पबहुत्व–

१– ऊर्ध्वलोक में प्राय: वैमानिक ही हैं, अत: पंचेन्द्रिय के पर्याप्त सबसे थोड़े हैं।

२– ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्लोक के दोनों प्रतरों के समीप ज्योतिषी देव हैं। वैमानिक, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, विद्याधर, चारण–मुनि तथा तिर्यंचपंचेन्द्रिय ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में और तिर्यक्लोक से ऊर्ध्वलोक में जाते–आते इन दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, अत: असंख्यातगुणा हैं।

३– अधोलोक में रहे हुए भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक देव तथा विद्याधर मारणान्तिकसमुद्घात कर ऊर्ध्वलोक तक आत्मप्रदेश फैलाते हुए तीनों लोक का स्पर्श करते हैं, अत: संख्यातगुणा हैं।

४ –बहुत से व्यन्तर देव अपने स्थान के समीप होने से अधोलोक और तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं। भवनपति देव अधोलोक से तिर्यक्लोक में जाते–आते तथा व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव अधोलोक के ग्रामों में समवसरणादि में तथा अधोलोक में क्रीड़ानिमित्त जाते–आते इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं तथा समुद्रों में कई तिर्यंचपंचेन्द्रिय अपने स्थान इन दोनों प्रतरों के समीप होने से तथा कई इन दोनों प्रतरों से आश्रित क्षेत्र में रहने से इन दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, अत: संख्यातगुणा हैं।

५–अधोलोक में नैरयिक और भवनपतियों के अपने स्थान हैं, अत: संख्यातगुणा हैं।

६–तिर्यक्लोक में तिर्यंचपंचेन्द्रिय मनुष्य व्यंतर और ज्योतिषियों के स्वस्थान हैं, अत: यहां असंख्यातगुणा हैं।

(१२) क्षेत्र की अपेक्षा पुद्‌गल द्रव्य रूप से (दव्वट्ठयाए) १ सबसे थोड़े तीन लोक[1] में, २ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्‌लोक[2] में अनन्तगुणा, ३ अधोलोक-तिर्यक्‌लोक[3] में विशेषाधिक, ४ तिर्यक्‌लोक[4] में असंख्यातगुणा, ५ ऊर्ध्वलोक[5] में असंख्यातगुणा, ६ अधोलोक[6] में विशेषाधिक।

(१३) दिशा की अपेक्षा पुद्‌गल-१ सबसे थोड़े ऊर्ध्वदिशा[7] में, २ अधोदिशा[8] में विशेषाधिक, ३ उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) और दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्यकोण) दिशा[9] में परस्पर तुल्य, असंख्यातगुणा, ४ दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण)

१-तीन लोक में व्याप्त अचित्त महास्कन्ध सबसे थोड़े हैं।

२-अनन्त संख्यातप्रदेशी, अनन्त असंख्यातप्रदेशी और अनन्त अनन्तप्रदेशी स्कन्ध ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्‌लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं, अतः अनन्तगुणा हैं।

३-ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्‌लोक की अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्‌लोक का क्षेत्र कुछ अधिक है, अतः विशेषाधिक हैं।

४-तिर्यक्‌लोक का क्षेत्र असंख्यातगुणा है, अतः पुद्‌गल भी असंख्यातगुणा हैं।

५-तिर्यक्‌लोक से ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र असंख्यातगुणा होने से पुद्‌गल भी असंख्यातगुणा हैं।

६-ऊर्ध्वलोक से अधोलोक का क्षेत्र विशेष-अधिक है। ऊर्ध्वलोक सात राजू से कुछ कम है, अधोलोक सात राजू से कुछ अधिक है, अतः पुद्‌गल भी विशेषाधिक हैं।

७-रत्नप्रभा के समतल मेरुप्रदेश में आठ रुचकप्रदेश हैं, उनसे चार प्रदेश वाली ऊर्ध्वदिशा लोकान्त तक गई हुई है, अतः ऊर्ध्वदिशा में पुद्‌गल सबसे थोड़े हैं।

८-अधोदिशा भी चार प्रदेश वाली है, यह भी रुचकप्रदेशों से निकल कर नीचे लोकान्त तक गई है। अधोदिशा का क्षेत्र ऊर्ध्वदिशा से विशेषाधिक है, अतः अधोदिशा में पुद्‌गल भी विशेषाधिक हैं।

९-ये दोनों दिशाएं रुचकप्रदेश से निकली हैं, मुक्तावली के आकार की हैं और तिर्यक्‌लोक-ऊर्ध्वलोक और अधोलोक पर्यन्त गई हैं। इन दिशाओं में अधोदिशा की अपेक्षा असंख्यातगुणा क्षेत्र है, अतः पुद्‌गल भी असंख्यातगुणा हैं। दोनों दिशाओं का क्षेत्र बराबर है, अतः दोनों में पुद्‌गल भी बराबर हैं, अतः परस्पर तुल्य हैं।

४ पहली।

९० – एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद ४, गुणस्थान १, योग ५ (औदारिक के दो, वैक्रिय के दो व कार्मण), उपयोग ३, लेश्या ४ पहली।

९१ – तिर्यंच जीव विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान ५, योग १३ (आहारक के दो छोड़कर) उपयोग ९, लेश्या ६।

९२ – मिथ्यात्वी जीव विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान १, योग १३ (आहारक के दो वर्जे), उपयोग ६, लेश्या ६।

९३ – अव्रती जीव विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान ४, योग १३, उपयोग ९, लेश्या ६।

९४ – सकषायी जीव विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान १०, योग १५, उपयोग १०, लेश्या ६।

९५ – छद्मस्थ जीव विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान १२, योग १५, उपयोग १०, लेश्या ६।

९६ – सयोगी जीव विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान १३, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६।

९७–९८ – (९७) संसारी जीव विशेषाधिक, (९८) सर्व जीवनविशेषाधिक। इनमें प्रत्येक में जीव के भेद १४, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६।

इन ९८ बोलों में एक बोल सबसे थोड़ा, चार अनन्तगुणा, ३५ असंख्यातगुणा, २८ संख्यातगुणा और ३० विशेषाधिक के हैं।

इन ९८ बोलों में वेद की अपेक्षा ९ स्त्रीवेद वाले, २३ पुरुषवेद वाले, १६ सवेदी, १ अवेदी, ४९ नपुंसकवेद वाले हैं।

इन ९८ बोलों में भव्य की अपेक्षा ३ बोल (४, ७५,८७), एकान्त भव्य का १बोल(७४),अभव्य का १ बोल,(७६) नोभव्य –

और उत्तर–पश्चिम (वायव्यकोण) दिशा[1] में परस्पर तुल्य, विशेषाधिक ५ पूर्वदिशा[2] में असंख्यातगुणा, ६ पश्चिमदिशा[3] में विशेषाधिक, ७ दक्षिणदिशा[4] में विशेषाधिक, ८ उत्तरदिशा[5] में विशेषाधिक।

(१४) क्षेत्र की अपेक्षा द्रव्य– १ सबसे थोड़े त्रिलोक[6] में, २ ऊर्ध्वलोक– तिर्यक्लोक[7] में अनंतगुणा, ३ अधोलोक–तिर्यक्लोक[8] में विशेषाधिक, ४ ऊर्ध्वलोक[9] में असंख्यातगुणा,

---

१–यहां सौमनस और गंधमादन पर्वतों पर सात–सात कूट हैं, जबकि ईशानकोण और नैर्ऋत्यकोण में विद्युत्प्रभ और माल्यवान पर्वत पर नौ कूट हैं। सौमनस और गंधमादन पर्वत पर दो–दो कूट कम होने से धूंवर और ओस आदि के सूक्ष्म पुद्गल बहुत हैं, अतः विशेषाधिक हैं। दोनों दिशाओं में क्षेत्र समान है, अतः परस्पर तुल्य हैं।

२–पूर्वदिशा का क्षेत्र असंख्यातगुणा होने से इसमें पुद्गल भी असंख्यातगुणा हैं।

३–पश्चिमदिशा में अधोलोक के गांवों में पोलार बहुत है, इसलिये इनमें बहुत पुद्गल हैं, अतः विशेषाधिक हैं।

४–दक्षिणदिशा में भवनपतियों के भवन बहुत हैं, उनमें पोलार बहुत है, अतः पुद्गल विशेषाधिक हैं।

५–उत्तरदिशा ने संख्यात कोटि–कोटि (कोड़ा–कोड़ी) योजन प्रमाण मानसरोवर है, जिसमें सात बोल के समुच्चय जीव, अप्काय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव बहुत हैं, उनमें तैजस, कार्मण पुद्गल अधिक पाये जाते हैं, अतः विशेषाधिक हैं।

६–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय का महास्कन्ध और जीवास्तिकाय में मारणान्तिकसमुद्घात द्वारा समुद्घात करने वाले जीव तीनों लोक का स्पर्श करते हैं, अतः ये सबसे थोड़े हैं।

७–अनन्त पुद्गलद्रव्य और अनन्त जीवद्रव्य ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक के दोनों प्रतर का स्पर्श करते हैं; अतः अनन्तगुणा हैं।

८–ऊर्ध्वलोक–तिर्यक्लोक की अपेक्षा अधोलोक–तिर्यक्लोक का क्षेत्र विशेषाधिक होने से इन दोनों प्रतर में द्रव्य भी विशेषाधिक हैं।

९–ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र असंख्यातगुणा है, अतः यहां द्रव्य भी असंख्यातगुणा हैं।

नोअभव्य का १ बोल और ९३ बोल भव्य अभव्य दोनों केहैं।

इन ९८ बोलों में ३ बोल (२४, ९५, ९७) अशाश्वत हैं और शेष ९५ बोल शाश्वत हैं।

६. बद्ध मुक्त शरीर का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १२ वां पद)

शरीर पांच है—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। नैरयिक, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक के तीन शरीर होते हैं—वैक्रिय, तैजस और कार्मण। चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय के तीन शरीर होते हैं—औदारिक, तैजस और कार्मण। वायुकाय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय के आहारक के सिवा चार शरीर होते हैं और मनुष्य के पांचों शरीर होते हैं।

ये शरीर दो तरह के होते हैं—बद्ध (बद्धेल्लगा) और मुक्त (मुक्केल्लगा)। वर्तमान में जीव जिन शरीरों को ग्रहण किये हुए है, वे बद्ध कहलाते हैं। पहले भवों में जीवों द्वारा छोड़े हुए शरीर जो अपने रूप को धारण किये हुए हैं, दूसरे रूप को प्राप्त नहीं हुए है, मुक्त कहलाते हैं।

समुच्चय जीव में पांच शरीर पाये जाते हैं। समुच्चय जीव के बद्धऔदारिकशरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा प्रति समय एक–एक शरीर निकाला जाय तो असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल लगता है अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में जितने समय होते हैं, उतने ही बद्ध औदारिकशरीर हैं। क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक यानी एक–एक आकाशप्रदेश में एक–एक शरीर रखा जाय तो लोक प्रमाण असंख्यात आकाशखंड भर जाते हैं, इतने बद्ध औदारिकशरीर हैं। बद्ध वैक्रियशरीर असंख्यात हैं।

५ अधोलोक[1] में अनन्तगुणा, ६ तिर्यक्‌लोक[2] में संख्यातगुणा।

(१५) दिशा की अपेक्षा द्रव्य–१ सबसे थोड़े अधोदिशा[3] में, २ ऊर्ध्वदिशा[4] में अनन्तगुणा, ३ उत्तर–पूर्व (ईशानकोण) और दक्षिण–पश्चिम (नैर्ऋत्यकोण)[5] में परस्पर तुल्य, असंख्यातगुणा, ४ दक्षिण–पूर्व (आग्नेयकोण) और उत्तर–पश्चिम (वायव्यकोण)[6] में परस्पर तुल्य, विशेषाधिक, ५ पूर्वदिशा[7] में असंख्यातगुणा, ६ पश्चिमदिशा[8] में विशेषाधिक, ७ दक्षिणदिशा[9] में विशेषाधिक, ८ उत्तरदिशा[10] में विशेषाधिक।

१–अधोलोक के गांवों में काल है, परमाणु, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के द्रव्य क्षेत्र काल भाव और पर्याय के साथ काल का सम्बन्ध होने से प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य की अपेक्षा अनन्त काल है, अतः अधोलोक में अनन्तगुणा हैं।

२– तिर्यक्‌लोक में मनुष्यलोक है, जहां काल है। मनुष्यलोक में अधोलोक के गांव प्रमाण संख्यात खण्ड हैं, अतः तिर्यक्‌लोक में संख्यातगुणा हैं।

३– अधोदिशा में काल नहीं होने से, वहां द्रव्य सबसे थोड़े हैं।

४– ऊर्ध्वदिशा में मेरुपर्वत का ५०० योजन का स्फटिकमय काण्ड है वहां चन्द्र, सूर्य की प्रभा का प्रवेश होने से कालद्रव्य है। यह काल प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्यों पर अनन्त–अनन्त है, अतः ऊर्ध्वलोक में द्रव्य अनन्तगुणा हैं।

५– इनका क्षेत्र असंख्यातगुणा होने से द्रव्य असंख्यातगुणा हैं। दोनों दिशा में क्षेत्र बराबर होने से परस्पर द्रव्य तुल्य हैं।

६– सौमनस और गंधमादन पर्वत पर सात–सात कूट हैं, दो–दो कूट कम होने से वहां धूंवर, ओस आदि के सूक्ष्म पुद्‌गल द्रव्य बहुत हैं, अतः विशेषाधिक हैं।

७–पूर्वदिशा का क्षेत्र असंख्यातगुणा है, अतः इस दिशा में द्रव्य भी असंख्यातगुणा हैं।

८–पश्चिमदिशा में अधोलोक के गांवों में पोलार अधिक होने से बहुत पुद्‌गल द्रव्यों का सम्भव है, अतः विशेषाधिक हैं।

९–दक्षिणदिशा में भवनपति देवों के ४,०६,००,००० (चार करोड़ छह लाख) भवन हैं। पोलार अधिक होने से द्रव्य भी विशेषाधिक हैं।

१०–मानसरोवर में सात बोल के जीव अधिक हैं, उन जीवों के आश्रित तैजस, कार्मण वर्गणा के पुद्‌गलद्रव्य भी बहुत हैं, अतः विशेषाधिक हैं।

काल की अपेक्षा प्रति समय एक–एक शरीर निकाला जाय तो असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल लगता है, यानी असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के जितने समय होते हैं उतने बद्ध वैक्रियशरीर हैं। क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात श्रेणियां हैं। इन श्रेणियों का परिमाण प्रतर का असंख्यातवां भाग है। अर्थात् प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितनी श्रेणियां + होती हैं और श्रेणियों में जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने बद्ध वैक्रियशरीर हैं। समुच्चय बद्ध आहारकशरीर कभी होते हैं, कभी नहीं होते, क्योंकि आहारकशरीर का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह माह का बताया है। जब आहारकशरीर होते हैं तब जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट प्रत्येक हजार (दो हजार से नौ हजार) होते हैं। बद्ध तैजस और बद्धकार्मण शरीर अनन्त हैं। काल की अपेक्षा प्रति समय एक–एक शरीर निकालने पर अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाणकाल लगता है यानी अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में जितने समय होते हैं उतने ही बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर हैं। क्षेत्र की अपेक्षा लोकप्रमाण अनन्त आकाशखंडों में जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने ही बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर हैं। द्रव्य की अपेक्षा सिद्धों से अनन्तगुणा और सभी जीवों के अनंतवें भाग कम हैं।

समुच्चय जीव के मुक्त औदारिक, मुक्त वैक्रिय तथा मुक्त कार्मण शरीर अनन्त हैं। काल की अपेक्षा प्रति समय एक–एक शरीर निकाला जाय तो अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल लगता है। क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण अनन्त आकाशखंडों में जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने ही मुक्त औदारिक, मुक्त वैक्रिय और

+ लोक का घन करने पर उसका प्रमाण सभी ओर से सात राजू प्रमाण होता है। उसमें सात राजू लम्बी मुक्तावली की तरह एक आकाशप्रदेश की पंक्ति को श्रेणी समझना।

१ अधोदिशा में काल नहीं होने से वहां द्रव्य सबसे थोड़े हैं।

२ ऊर्ध्वदिशा में मेरुपर्वत का ५०० योजन का स्फटिकमय काण्ड है। वहां चन्द्र, सूर्य की प्रभा का प्रवेश होने से कालद्रव्य है। यह काल प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्यों पर अनन्त–अनन्त है, अतः ऊर्ध्वलोक में द्रव्य अनन्तगुणा हैं।

३ इनका क्षेत्र असंख्यातगुणा होने से द्रव्य असंख्यातगुणा हैं। दोनों दिशा में क्षेत्र बराबर होने से परस्पर द्रव्य तुल्य हैं।

४ सौमनस और गंधमादन पर्वत पर सात–सात कूट हैं, दो–दो कूट कम होने से वहां धूंवर, ओस आदि के सूक्ष्म पुद्गल द्रव्य बहुत हैं, अतः विशेषाधिक हैं।

५. अठाणवै बोलों का बासठिया

(पन्नवणासूत्र, तीसरा पद)

प्रज्ञापनासूत्र में अठाणवै बोल की केवल अल्पबहुत्व बताई गई है, परन्तु यहां प्रचलित थोकड़े के अनुसार अठाणवै बोलों में जीव के भेद १४, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६ तथा एक निज का बोल, ये ६ बोल बताये जाते हैं।

१–२–(१) सबसे थोड़े गर्भज मनुष्य, उससे (२) मनुष्यस्त्री संख्यातगुणी। इनमें प्रत्येक में जीव के भेद१४, गुणस्थान १४, योग मनुष्य में १५ और मनुष्यस्त्री में १३ (आहारक, आहारकमिश्र नहीं), उपयोग इनमें प्रत्येक में १२, लेश्या ६।

३ – बादर–तेजस्काय के पर्याप्त असंख्यातगुणा। इनमें जीव का भेद १, गुणस्थान १, योग १ (औदारिक–काययोग), उपयोग ३, लेश्या ३ (पहली)।

४ – पांच अनुत्तर विमान के देवता असंख्यातगुणा। इनमें

मुक्त आहारक शरीर हैं। द्रव्य की अपेक्षा अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग हैं। समुच्चय जीव के मुक्त तैजस और मुक्त कार्मण शरीर अनन्त हैं। काल की अपेक्षा प्रति समय एक-एक शरीर निकालने पर अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल लगता है यानी अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के जितने समय होते हैं, उतने मुक्त तैजस, मुक्त कार्मण शरीर हैं। क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण अनन्त आकाशखंडों के जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने मुक्त तैजस, मुक्त कार्मण शरीर हैं। द्रव्य की अपेक्षा सभी जीवों के अनन्तगुणे और जीवों के वर्ग + के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।

समुच्चय जीव और चौबीस दंडक के मुक्त शरीर पांच-पांच गिनने से १२५ होते हैं। इनमें समुच्चय जीव तथा वनस्पति के मुक्त तैजस और मुक्त कार्मण शरीर के सिवाय शेष १२१ मुक्त शरीर एक समान जानना, यानी ये १२१ मुक्त शरीर उपरोक्त मुक्त औदारिक शरीर की तरह अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग हैं। समुच्चय जीव के मुक्त तैजस और मुक्त कार्मण शरीर ऊपर बताए हैं। वनस्पति के मुक्त तैजस और मुक्त कार्मण शरीर भी इसी तरह कहना, यानी ये सभी जीवों से अनन्तगुणे और जीवों के वर्ग के अनन्तवें भाग हैं।

+ एक संख्या को उसी संख्या से गुणा करने पर वर्ग होता है। जैसे चार को चार से गुणा करने पर सोलह होते हैं। यह सोलह संख्या चार का वर्ग है। इसी तरह सभी जीवों की संख्या को उसी से गुणा करने पर जीव का वर्ग आता है। उदाहरण के लिए सभी जीव अनन्त हैं, उन्हें असत्कल्पना से दस हजार मान लिए जाये। दस हजार को दस हजार से गुणा करने पर दस करोड़ आते हैं। मुक्त तैजस और मुक्त कार्मण शरीर असत्कल्पना से दस लाख हैं। इसलिए सभी जीवों से सौ गुणा और जीववर्ग के सौवें भाग हैं। अतः जीववर्ग के अनन्तवें भाग कहे हैं।

जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान १ (४), योग ११ (दो औदारिक और दो आहारक के वर्जे), उपयोग ६ (३ ज्ञान, ३ दर्शन), लेश्या १ (शुक्ल)।

५ से ७ – (५) नव ग्रैवेयक की ऊपर की त्रिक के देवता संख्यातगुणा, (६) मध्य की त्रिक के देवता संख्यातगुणा, (७) नीचे की त्रिक के देवता संख्यातगुणा। इनमें प्रत्येक में जीव के भेद २ (१३, १४), गुणस्थान २ या ३ (१,४ अथवा१,२,४),योग ११, उपयोग ९ (३ ज्ञान,३ अज्ञान,३ दर्शन),लेश्या १ (शुक्ल)।

८ से११ – (८) बारहवें देवलोक के देवता संख्यातगुणा, (९) ग्यारहवें देवलोक के देवता संख्यातगुणा, (१०) दसवें देवलोक के देवता संख्यातगुणा, (११) नवें देवलोक के देवता संख्यातगुणा। इन चारों बोलों में प्रत्येक में जीव के भेद २ (१३,१४), गुणस्थान ४ पहले, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (शुक्ल)।

१२–१३–(१२)सातवीं नारकी के नैरयिक असंख्यातगुणा, (१३) छट्ठी नारकी के नैरयिक असंख्यातगुणा। इन दोनों बोलों में प्रत्येक में जीव के भेद २ (१३,१४), गुणस्थान ४ पहले, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (कृष्ण)।

१४–१५–(१४)आठवें देवलोक के देवता असंख्यातगुणा, (१५)सातवें देवलोक के देवता असंख्यातगुणा।इनमें प्रत्येक में जीव के भेद २, गुणस्थान ४ पहले, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (शुक्ल)।

१६ – पांचवीं नारकी के नैरयिक असंख्यातगुणा। इनमें जीव के भेद २, गुणस्थान ४ पहले, योग ११, उपयोग ९, लेश्या २ (नील और कृष्ण, नीललेश्या वाले बहुत, कृष्णलेश्या वाले थोड़े)।

१७ – छठे देवलोक के देवता असंख्यातगुणा।इनमें जीव के भेद २, गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (शुक्ल)।

नैरयिक के वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर होते हैं। नैरयिक के बद्ध वैक्रियशरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा प्रति समय एक–एक शरीर निकालने पर असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल लगता है, यानी असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के जितने समय होते हैं, उतने ही नैरयिक के बद्धवैक्रियशरीर हैं। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असंख्यातवें भाग की असंख्यात श्रेणियों के प्रदेश प्रमाण हैं। अर्थात् प्रतर के असंख्यातवें भाग में असंख्यात श्रेणियां हैं, उनमें जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने ही बद्ध वैक्रियशरीर हैं। लोक का घन करने पर उसका प्रमाण सभी ओर से सात राजू होता है। इसमें से अंगुल प्रमाण क्षेत्र लेना। अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेशराशि के असंख्यात वर्गमूल होते हैं, जैसे उसका प्रथम वर्गमूल, प्रथम वर्गमूल का वर्गमूल यह दूसरा वर्गमूल, उसका जो वर्गमूल वह तीसरा वर्गमूल इत्यादि। यहां प्रथम वर्गमूल को दूसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जितने + प्रदेश आवें उन प्रदेशों की सूची की कल्पना करना और उसे दक्षिण से उत्तर की ओर रखना। इस सूची से जितनी भी आकाश–प्रदेश की श्रेणियां स्पृष्ट (छूती) हों, उतनी श्रेणियां यहां लेना। इन श्रेणियों में जितने आकाश–प्रदेश हैं, उतने ही नैरयिकों के बद्ध वैक्रियशरीर हैं। नैरयिक के बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर बद्ध वैक्रियशरीर की तरह कहना।

भवनपति देवता के बद्ध तीनों शरीर का वर्णन नैरयिक में कहे अनुसार कहना। किन्तु नैरयिक के बद्धवैक्रियशरीर के वर्णन में क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात श्रेणियां कही हैं और प्रतर के अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेश राशि के प्रथम वर्गमूल को उसके दूसरे वर्गमूल

+ अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेशराशि असंख्यात है, उसे असत्कल्पना से २५६ समझना। २५६ का प्रथम वर्गमूल १६ है और दूसरा वर्गमूल ४ है। प्रथम वर्गमूल १६ को दूसरे वर्गमूल ४ से गुणा करने पर ६४ संख्या आती है।

१८ – चौथी नारकी के नैरयिक असंख्यातगुणा। इनमें जीव के भेद २, गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (नील)।

१९ – पांचवें देवलोक के देवता असंख्यातगुणा। इनमें जीव के भेद २, गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (पद्म)।

२० – तीसरी नारकी के नैरयिक असंख्यातगुणा। इनमें जीव के भेद २, गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या २ (कापोतलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या वाले बहुत, नीललेश्या वाले थोड़े)।

२१–२२–(२१) चौथे देवलोक के देवता असंख्यातगुणा, (२२) तीसरे देवलोक के देवता असंख्यातगुणा। इनमें प्रत्येक में जीव के भेद २, गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (पद्म)।

२३ – दूसरी नारकी के नैरयिक असंख्यातगुणा। इनमें जीव के भेद २, गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (कापोत)।

२४ – सम्मूर्छिम मनुष्य असंख्यातगुणा। इनमें जीव का भेद १ (११), गुणस्थान १ (पहला), योग ३ (औदारिक के दो व कार्मण), उपयोग*४ (दो अज्ञान, दो दर्शन), लेश्या ३ पहली।

२५ से २८–(२५) दूसरे देवलोक के देवता असंख्यातगुणा, (२६) दूसरे देवलोक की देवियां संख्यातगुणी, (२७) पहले देवलोक के देवता संख्यातगुणा, (२८) पहले देवलोक की देवियां संख्यातगुणी। इन चारों बोलों में प्रत्येक में जीव के भेद २, गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (तेजो)।

२९–३० – (२९) भवनपति देवता असंख्यातगुणा(३०)

---

* कोई आचार्य सम्मूर्छिम में चक्षुदर्शन नहीं मानते हैं, अतः उनके अनुसार सम्मूर्छिम में ३ उपयोग होते हैं।

से गुणा करने पर जितने प्रदेश आवें उन प्रदेशों की सूची की कल्पना कर उस सूची से स्पृष्ट श्रेणियों के प्रदेश बराबर बद्ध वैक्रियशरीर बताये हैं। उसकी जगह भवनपति में प्रतर के अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग में जितने प्रदेश हैं, उनकी सूची की कल्पना कर उस सूची से स्पृष्ट श्रेणियों के प्रदेश के बराबर बद्धवैक्रियशरीर जानना। वैक्रियशरीर की तरह बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर कहना।

पांच स्थावर के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर का वर्णन समुच्चय जीव के औदारिकशरीर की तरह कहना।

वायुकाय के बद्ध वैक्रियशरीर असंख्यात हैं। प्रति समय एक–एक शरीर निकालने पर क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल लगता है।

तीन विकलेन्द्रिय में तीन शरीर पाये जाते हैं–औदारिक, तैजस और कार्मण। द्वीन्द्रिय में बद्ध औदारिकशरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा समुच्चय जीव की तरह कहना। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितनी श्रेणियां हैं उनमें जितने आकाशप्रेदश हैं उनके बराबर जानना। श्रेणियों का प्रमाण निश्चय करने के लिए असंख्यात कोटि–कोटि (कोड़ाकोड़ी) योजन प्रमाण सूची लेना। अथवा एक श्रेणी में जितने प्रदेश होते हैं, उनके असंख्यात वर्गमूल होते हैं। उन वर्गमूलों को जोड़ने से जो प्रदेशराशि आवे, उस प्रमाण सूची लेना। उदाहरण के लिए श्रेणी में असंख्यात प्रदेश होने पर भी असत्कल्पना से ६५,५३५ प्रदेश माने जायें। उनका प्रथम वर्गमूल २५६, दूसरा वर्गमूल १६, तीसरा वर्गमूल ४ और चौथा वर्गमूल २ है। इन्हें जोड़ने से २७८ हुए। इस तरह श्रेणी के असंख्यात वर्गमूलों को जोड़ने से जो प्रदेशराशि आये उस प्रमाण

भवनपति की देवियां संख्यातगुणी। भवनपति देवता में जीव के भेद तीन (११, १३, १४), भवनपति की देवियों में दो (१३, १४), इनमें प्रत्येक में गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या ४ पहली।

३१– पहली नारकी के नैरयिक असंख्यातगुणा। इनमें जीव के भेद ३ (११, १३, १४), गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (कापोत)।

३२ से ३७ – (३२) खेचर तिर्यंच पुरुष असंख्यातगुणा, (३३) खेचर तिर्यंचस्त्री संख्यातगुणी, (३४) स्थलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, (३५) स्थलचर तिर्यंचस्त्री संख्यातगुणी (३६) जलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, (३७) जलचर तिर्यंचस्त्री संख्यातगुणी। इन छह बोलों में प्रत्येक में जीव के भेद २, गुणस्थान ५, योग १३, उपयोग ९, लेश्या ६।

३८–३९ – (३८) व्यन्तर देवता संख्यातगुणा, (३९) व्यन्तर देवियां संख्यातगुणी। जीव के भेद देवता में ३, देवियों में २, इनमें प्रत्येक में गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या ४ पहली।

४०–४१ – (४०) ज्योतिषी देवता संख्यातगुणा, (४१) ज्योतिषी देवियां संख्यातगुणी। इनमें प्रत्येक में जीव के भेद २, गुणस्थान ४, योग ११, उपयोग ९, लेश्या १ (तेजो)।

४२ से ४४ – (४२) खेचर तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा, (४३) स्थलचर तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा, (४४) जलचर तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा। इन तीनों बोलों में प्रत्येक में जीव के भेद २ तथा ४ (दो १३, १४, तथा चार ११, १२, १३, १४), गुणस्थान ५, योग १३, उपयोग ९, लेश्या ६।

४५ – चतुरिन्द्रिय के पर्याप्त संख्यातगुणा। इनमें जीव का भेद १, गुणस्थान १, योग २ (व्यवहारवचन–योग और औदारिककाययोग), उपयोग ४, लेश्या ३ पहली।

सूची लेना चाहिए। एक प्रदेशी श्रेणी रूप प्रतर के अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण खंड कर, एक–एक द्वीन्द्रिय जीव द्वारा एक–एक खंड आवलिका के असंख्यातवें भाग में निकाला जाय तो सारा प्रतर सभी द्वीन्द्रिय जीवों से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल में निकलता है। इसी तरह द्वीन्द्रिय के बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर कहना।

त्रीन्द्रिय, + चतुरिन्द्रिय के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर भी द्वीन्द्रिय की तरह कहना।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर द्वीन्द्रिय की तरह कहना। तिर्यंचपंचेन्द्रिय के बद्ध वैक्रियशरीर भवनपति की तरह कहना। किंतु इतना अन्तर है कि भवनपति में सूची के परिमाण में अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेश राशि के पहले वर्गमूल का संख्यातवां भाग लिया है, पर यहां असंख्यातवां भाग लेना।

मनुष्य के बद्ध औदारिक शरीर स्यात् संख्यात, स्यात् असंख्यात हैं। जब सम्मूर्छिम मनुष्य का विरह पड़ता है तब गर्भज मनुष्य संख्यात होते हैं। जब सम्मूर्छिम का विरह नहीं होता तब गर्भज और सम्मूर्छिम मनुष्य मिलाकर कभी संख्यात, कभी असंख्यात होते हैं। जघन्य संख्यात की संख्या इस प्रकार है – संख्यात कोटि–कोटि, तीन यमल पद* के ऊपर और चार यमल पद के नीचे, पांचवें

+ इतना विशेष है कि त्रीन्द्रिय के बद्ध औदारिकशरीर में द्वीन्द्रिय की अपेक्षा असंख्यात कोटि–कोटि योजन क्षेत्र अधिक लेना और त्रीन्द्रिय की अपेक्षा चतुरिन्द्रिय में असंख्यात कोटि–कोटि योजन क्षेत्र अधिक लेना।

*आठ अंकस्थानों का एक यमलपद होता है। मनुष्यों की संख्या के २९ अंक हैं। अतः तीन यमल पद के २४ अंक हुए और शेष ५ अंक रहते हैं। अतः मनुष्यों की संख्या तीन यमलपद के ऊपर और चार यमलपद के नीचे कही है।

४६ – पंचेन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद २ (१२, १४), गुणस्थान १२, योग १४ (कार्मण के सिवा), उपयोग १०, लेश्या ६।

४७–४८ – (४७) द्वीन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक, (४८) त्रीन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक। इनमें प्रत्येक में जीव का भेद १, गुणस्थान १, योग २ (व्यवहारवचनयोग और औदारिककाययोग), उपयोग ३, लेश्या ३ पहली।

४९ – पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त असंख्यातगुणा। इनमें जीव के भेद २ (११, १३), गुणस्थान ३ (१, २, ३), योग ५ (दो औदारिक, दो वैक्रिय और कार्मण) उपयोग ८ तथा ९ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, नौ में चक्षुदर्शन बढ़ा), लेश्या ६।

५० से ५२ – (५०) चतुरिन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक, (५१) त्रीन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक, (५२) द्वीन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक। इनमें प्रत्येक में जीव का भेद १ अपना–अपना, गुणस्थान २ (१–२), योग ३ (दो औदारिक के व कार्मण), उपयोग द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय में ५, चतुरिन्द्रिय में ६, लेश्या प्रत्येक में ३ पहली।

५३ से ५७ – (५३) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त असंख्यातगुणा, (५४) बादर निगोद के पर्याप्त असंख्यातगुणा, (५५) बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त असंख्यातगुणा, (५६) बादर अप्काय के पर्याप्त असंख्यातगुणा, (५७) बादर वायुकाय के पर्याप्त असंख्यातगुणा। इनमें प्रत्येक में जीव का भेद १, गुणस्थान १, योग चार में १ (औदारिक काययोग) बादर वायुकाय के पर्याप्त में चार (दो औदारिक के, दो वैक्रिय के), प्रत्येक में उपयोग ३, लेश्या ३ पहली।

५८ से ६३ – (५८) बादर तेजस्काय के अपर्याप्त असंख्यातगुणा, (५९) प्रत्येक–शरीर बादर वनस्पतिकाय के

से गुणा करने पर जितने प्रदेश आवें उन प्रदेशों की सूची की कल्पना कर उस सूची से स्पृष्ट श्रेणियों के प्रदेश बराबर बद्ध वैक्रियशरीर बताये हैं। उसकी जगह भवनपति में प्रतर के अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग में जितने प्रदेश हैं, उनकी सूची की कल्पना कर उस सूची से स्पृष्ट श्रेणियों के प्रदेश के बराबर बद्धवैक्रियशरीर जानना। वैक्रियशरीर की तरह बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर कहना।

पांच स्थावर के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर का वर्णन समुच्चय जीव के औदारिकशरीर की तरह कहना।

वायुकाय के बद्ध वैक्रियशरीर असंख्यात हैं। प्रति समय एक-एक शरीर निकालने पर क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल लगता है।

तीन विकलेन्द्रिय में तीन शरीर पाये जाते हैं-औदारिक, तैजस और कार्मण। द्वीन्द्रिय में बद्ध औदारिकशरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा समुच्चय जीव की तरह कहना। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितनी श्रेणियां हैं उनमें जितने आकाशप्रेदश हैं उनके बराबर जानना। श्रेणियों का प्रमाण निश्चय करने के लिए असंख्यात कोटि-कोटि (कोड़ाकोड़ी) योजन प्रमाण सूची लेना। अथवा एक श्रेणी में जितने प्रदेश होते हैं, उनके असंख्यात वर्गमूल होते हैं। उन वर्गमूलों को जोड़ने से जो प्रदेशराशि आवे, उस प्रमाण सूची लेना। उदाहरण के लिए श्रेणी में असंख्यात प्रदेश होने पर भी असत्कल्पना से ६५,५३५ प्रदेश माने जायें। उनका प्रथम वर्गमूल २५६, दूसरा वर्गमूल १६, तीसरा वर्गमूल ४ और चौथा वर्गमूल २ है। इन्हें जोड़ने से २७८ हुए। इस तरह श्रेणी के असंख्यात वर्गमूलों को जोड़ने से जो प्रदेशराशि आये उस प्रमाण

अपर्याप्त असंख्यातगुणा, (६०) बादर निगोद के अपर्याप्त असंख्यातगुणा, (६१) बादर पृथ्वीकाय के अपर्याप्त असंख्यातगुणा, (६२) बादर अप्काय के अपर्याप्त असंख्यातगुणा, (६३) बादर वायुकाय के अपर्याप्त असंख्यातगुणा। इनमें प्रत्येक में जीव का भेद १, गुणस्थान १, योग ३ (दो औदारिक के व कार्मण), उपयोग ३, लेश्या १. पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में चार पहली, तेजस्काय, वायुकाय व निगोद में ३ पहली।

६४ से ७३ – (६४) सूक्ष्म तेजस्काय के अपर्याप्त असंख्यातगुणा, (६५) सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक, (६६) सूक्ष्म अप्काय के अपर्याप्त विशेषाधिक, (६७) सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक, (६८) सूक्ष्म तेजस्काय के पर्याप्त संख्यातगुणा, (६९) सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पर्याप्त विशेषाधिक, (७०) सूक्ष्म अप्काय के पर्याप्त विशेषाधिक, (७१) सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषाधिक, (७२) सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्त असंख्यातगुणा, (७३) सूक्ष्म निगोद के पर्याप्त संख्यातगुणा। इनमें प्रत्येक में जीव का भेद १अपना–अपना,गुणस्थान १, योग अपर्याप्त में ३ (दो औदारिक व कार्मण), पर्याप्त में १ (औदारिककाययोग), उपयोग ३, लेश्या ३ पहली।

७४ – अभव्य अनन्तगुणा। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान १, योग १३ (आहारक के दो वर्जे), उपयोग ६, लेश्या ६।

७५ – प्रतिपतित (पडिवाई) सम्यग्दृष्टि अनन्तगुणा। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६।

७६ – सिद्ध अनन्तगुणा। इनमें जीव के भेद, गुणस्थान, योग और लेश्या नहीं, उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन)।

७७ – बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त अनन्तगुणा। इनमें जीव का भेद १, गुणस्थान १, योग १ (औदारिक), उपयोग ३, लेश्या

सूची लेना चाहिए। एक प्रदेशी श्रेणी रूप प्रतर के अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण खंड कर, एक–एक द्वीन्द्रिय जीव द्वारा एक–एक खंड आवलिका के असंख्यातवें भाग में निकाला जाय तो सारा प्रतर सभी द्वीन्द्रिय जीवों से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल में निकलता है।इसी तरह द्वीन्द्रिय के बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर कहना।

त्रीन्द्रिय, + चतुरिन्द्रिय के बद्ध औदारिक ,बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर भी द्वीन्द्रिय की तरह कहना।

तिर्यचपंचेन्द्रिय के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर द्वीन्द्रिय की तरह कहना। तिर्यंचपंचेन्द्रिय के बद्ध वैक्रियशरीर भवनपति की तरह कहना। किंतु इतना अन्तर है कि भवनपति में सूची के परिमाण में अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेश राशि के पहले वर्गमूल का संख्यातवां भाग लिया है, पर यहां असंख्यातवां भाग लेना।

मनुष्य के बद्ध औदारिक शरीर स्यात् संख्यात, स्यात् असंख्यात हैं। जब सम्मूर्छिम मनुष्य का विरह पड़ता है तब गर्भज मनुष्य संख्यात होते हैं।जब सम्मूर्छिम का विरह नहीं होता तब गर्भज और सम्मूर्छिम मनुष्य मिलाकर कभी संख्यात, कभी असंख्यात होते हैं। जघन्य संख्यात की संख्या इस प्रकार है – संख्यात कोटि–कोटि, तीन यमल पद* के ऊपर और चार यमल पद के नीचे, पांचवें

+ इतना विशेष है कि त्रीन्द्रिय के वद्ध औदारिकशरीर में द्वीन्द्रिय की अपेक्षा असंख्यात कोटि–कोटि योजन क्षेत्र अधिक लेना और त्रीन्द्रिय की अपेक्षा चतुरिन्द्रिय में असंख्यात कोटि–कोटि योजन क्षेत्र अधिक लेना।

*आठ अंकस्थानों का एक यमलपद होता है। मनुष्यों की संख्या के २९ अंक हैं। अत: तीन यमल पद के २४ अंक हुए और शेप ५ अंक रहते हैं। अत: मनुष्यों की संख्या तीन यमलपद के ऊपर और चार यमलपद के नीचे कही है।

३ पहली।

७८ – बादर पर्याप्त विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद ६, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६।

७९ – बादर वनस्पति के अपर्याप्त असंख्यातगुणा। इनमें जीव का भेद १, गुणस्थान १, योग ३ (दो औदारिक के व कार्मण), उपयोग ३, लेश्या ४ पहली।

८० – बादर के अपर्याप्त विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद ६, गुणस्थान ३ (१, २, ४), योग ५ (दो औदारिक के, दो वैक्रिय के व कार्मण), उपयोग ८ तथा ९ (८ तो ३ ज्ञान, ३ अज्ञान तथा अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन और ९ तो ३ ज्ञान, ३ अज्ञान और ३ दर्शन), लेश्या ६।

८१ – समुच्चय बादर विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद १२, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६।

८२ से ८५ – (८२) सूक्ष्म वनस्पति के अपर्याप्त असंख्यातगुणा, (८३) सूक्ष्म के अपर्याप्त विशेषाधिक, (८४) सूक्ष्म वनस्पति के पर्याप्त संख्यातगुणा, (८५) सूक्ष्म के पर्याप्त विशेषाधिक। इनमें प्रत्येक में जीव का भेद १ (अपना–अपना), गुणस्थान १, योग अपर्याप्त में ३ (औदारिक के दो व कार्मण), पर्याप्त में एक (औदारिककाययोग), उपयोग ३, लेश्या ३ पहली।

८६ – समुच्चय सूक्ष्म विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद २, गुणस्थान १, योग ३, उपयोग ३, लेश्या ३ पहली।

८७ – भव्य (भवसिद्धिया) जीव विशेषाधिक। इनमें जीव के भेद १४, गुणस्थान १४, योग १५, उपयोग १२, लेश्या ६।

८८ से ८९ – (८८) निगोद के जीव विशेषाधिक, (८९) वनस्पति के जीव विशेषाधिक। इनमें प्रत्येक में जीव के भेद ४ (१, २, ३, ४), गुणस्थान १, योग ३, लेश्या निगोद में ३, वनस्पति में

से गुणा करने पर जितने प्रदेश आवें उन प्रदेशों की सूची की कल्पना कर उस सूची से स्पृष्ट श्रेणियों के प्रदेश बराबर बद्ध वैक्रियशरीर बताये हैं। उसकी जगह भवनपति में प्रतर के अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग में जितने प्रदेश हैं, उनकी सूची की कल्पना कर उस सूची से स्पृष्ट श्रेणियों के प्रदेश के बराबर बद्धवैक्रियशरीर जानना। वैक्रियशरीर की तरह बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर कहना।

पांच स्थावर के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर का वर्णन समुच्चय जीव के औदारिकशरीर की तरह कहना।

वायुकाय के बद्ध वैक्रियशरीर असंख्यात हैं। प्रति समय एक-एक शरीर निकालने पर क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल लगता है।

तीन विकलेन्द्रिय में तीन शरीर पाये जाते हैं-औदारिक, तैजस और कार्मण। द्वीन्द्रिय में बद्ध औदारिकशरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा समुच्चय जीव की तरह कहना। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितनी श्रेणियां हैं उनमें जितने आकाशप्रेदश हैं उनके बराबर जानना। श्रेणियों का प्रमाण निश्चय करने के लिए असंख्यात कोटि-कोटि (कोड़ाकोड़ी) योजन प्रमाण सूची लेना। अथवा एक श्रेणी में जितने प्रदेश होते हैं, उनके असंख्यात वर्गमूल होते हैं। उन वर्गमूलों को जोड़ने से जो प्रदेशराशि आवे, उस प्रमाण सूची लेना। उदाहरण के लिए श्रेणी में असंख्यात प्रदेश होने पर भी असत्कल्पना से ६५,५३५ प्रदेश माने जायें। उनका प्रथम वर्गमूल २५६, दूसरा वर्गमूल १६, तीसरा वर्गमूल ४ और चौथा वर्गमूल २ है। इन्हें जोड़ने से २७८ हुए। इस तरह श्रेणी के असंख्यात वर्गमूलों को जोड़ने से जो प्रदेशराशि आये उस प्रमाण

सूची लेना चाहिए। एक प्रदेशी श्रेणी रूप प्रतर के अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण खंड कर, एक–एक द्वीन्द्रिय जीव द्वारा एक–एक खंड आवलिका के असंख्यातवें भाग में निकाला जाय तो सारा प्रतर सभी द्वीन्द्रिय जीवों से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल में निकलता है। इसी तरह द्वीन्द्रिय के बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर कहना।

त्रीन्द्रिय, + चतुरिन्द्रिय के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर भी द्वीन्द्रिय की तरह कहना।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर द्वीन्द्रिय की तरह कहना। तिर्यंचपंचेन्द्रिय के बद्ध वैक्रियशरीर भवनपति की तरह कहना। किंतु इतना अन्तर है कि भवनपति में सूची के परिमाण में अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेश राशि के पहले वर्गमूल का संख्यातवां भाग लिया है, पर यहां असंख्यातवां भाग लेना।

मनुष्य के बद्ध औदारिक शरीर स्यात् संख्यात, स्यात् असंख्यात हैं। जब सम्मूर्छिम मनुष्य का विरह पड़ता है तब गर्भज मनुष्य संख्यात होते हैं। जब सम्मूर्छिम का विरह नहीं होता तब गर्भज और सम्मूर्छिम मनुष्य मिलाकर कभी संख्यात, कभी असंख्यात होते हैं। जघन्य संख्यात की संख्या इस प्रकार है – संख्यात कोटि–कोटि, तीन यमल पद* के ऊपर और चार यमल पद के नीचे, पांचवें

+ इतना विशेष है कि त्रीन्द्रिय के बद्ध औदारिकशरीर में द्वीन्द्रिय की अपेक्षा असंख्यात कोटि–कोटि योजन क्षेत्र अधिक लेना और त्रीन्द्रिय की अपेक्षा चतुरिन्द्रिय में असंख्यात कोटि–कोटि योजन क्षेत्र अधिक लेना।

*आठ अंकस्थानों का एक यमलपद होता है। मनुष्यों की संख्या के २९ अंक हैं। अतः तीन यमल पद के २४ अंक हुए और शेष ५ अंक रहते हैं। अतः मनुष्यों की संख्या तीन यमलपद के ऊपर और चार यमलपद के नीचे कही है।

वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में संख्यात होंगी। बहुत संज्ञी मनुष्यों ने द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी।

एक–एक नारकी के नैरयिक ने नैरयिक रूप से द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जो नरक से निकल कर बाद में वापिस नरक में उत्पन्न नहीं होगा, उसके भविष्यकाल सम्बन्धी द्रव्येन्द्रियां नहीं होंगी। जो नरक से निकल कर बाद में वापिस नैरयिक होगा, उसके आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य और पांच अनुत्तर विमान को छोड़ कर शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिनके होंगी, उनमें एकेन्द्रिय में १, २, ३, द्वीन्द्रिय में २, ४, ६, त्रीन्द्रिय में ४, ८, १२, चतुरिन्द्रिय में ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय में ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमानकाल में नहीं हैं और भविष्यकाल में नियम पूर्वक ८ या १६ या २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक नारकी के नैरयिक ने पांच अनुत्तर विमान रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी और किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसमें चार अनुत्तर विमान रूप में आठ अथवा सोलह होंगी और सर्वार्थसिद्ध रूप में आठ होंगी। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी देवता नारकी की तरह कहना।

वर्गमूल से गुणा किया हुआ छठा वर्गमूल+ अथवा छियानवै छेदनकदायी× (छण्णउई छेयणगदाई)। मनुष्य उत्कृष्ट असंख्यात कहे सो असंख्यात इस तरह समझना। काल की अपेक्षा प्रति समय एक-एक शरीर निकालने पर असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल लगता है अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के जितने समय होते हैं उतने उत्कृष्ट मनुष्य होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट पद में जितने मनुष्य हैं उनमें असत्कल्पना से एक मनुष्य और मिलाने पर एक श्रेणी खाली हा जाती है। अर्थात् एक अंगुल के प्रदेशों के पहले वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करना। गुणा करने से जितने आकाश-प्रदेशों का खंड आवे, ऐसे आकाशखंडों से श्रेणी को खाली किया जाय तो जितने आकाशखंडों से श्रेणी खाली होती है उतने से मनुष्य भी पूरे हो जाते हैं यदि एक मनुष्य अधिक हो। चूंकि एक मनुष्य और नहीं है अतः श्रेणी में एक आकाशखंड जितनी जगह खाली रह जाती है। मनुष्य के बद्ध वैक्रियशरीर संख्यात होते हैं। मनुष्य के बद्ध आहारकशरीर समुच्चय जीव के

+ दो का वर्ग ४, ४ का वर्ग १६, १६ का वर्ग २५६, २५६ का वर्ग ६५५३६, ६५५३६ का वर्ग ४२९४९६७२९६ यह पांचवां वर्ग हुआ। ४२९४९६७२९६ का वर्ग १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ यह छठा वर्ग हुआ। इस छठे वर्ग की संख्या को पांचवें वर्ग की संख्या से गुणा करने पर २९ अंकों की संख्या ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ आती है। जघन्यपद में मनुष्य की संख्या इतनी जानना।

× छेदनक का अर्थ विभाग होता है। जिस संख्या को दो से विभाजित करने पर छियानवै बार दो का भाग जाता है, उस संख्या को छियानवै छेदनकदायी कहते हैं।

पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक–एक देव ने स्वस्थान और परस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान में आठ हैं और परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं, भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी, उसके आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक–एक देवता ने चार अनुत्तर देव रूप से द्रव्येन्द्रियां अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं उसने आठ कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके आठ अथवा सोलह होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक–एक देवता ने सर्वार्थसिद्ध के देवरूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके आठ होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक–एक देव ने वैमानिक देव और संज्ञी मनुष्य के सिवा शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, द्वीन्द्रिय में २, ४, ६, त्रीन्द्रिय में ४, ८, १२, चतुरिन्द्रिय में ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय में ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक–एक देवता ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनंत कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियमपूर्वक ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

चार अनुत्तर विमान के एक–एक देवता ने स्वस्थान संबंधी द्रव्येन्द्रियां अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं। जिसने कीं उसने आठ कीं, वर्तमान में आठ द्रव्येन्द्रियां हैं और भविष्य में किसी

आहारकशरीर की तरह कहना। मनुष्य के बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर मनुष्य के औदारिकशरीर की तरह कहना।

व्यन्तर में तीन शरीर पाये जाते हैं–वैक्रिय, तैजस और कार्मण। व्यन्तर में बद्ध वैक्रिय, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा प्रति समय एक–एक शरीर निकालने पर असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल लगता है। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असंख्यातवें भाग की असंख्यात श्रेणियों के आकाश–प्रदेश प्रमाण हैं। श्रेणियों की विष्कंभसूची संख्यात सौ योजनवर्ग+ प्रमाण है। आशय यह है कि संख्यात सौ योजनवर्ग प्रमाण श्रेणीखंड में एक–एक व्यन्तर की स्थापना की जाये तो सारा प्रतर भर जाता है। अथवा एक–एक व्यन्तर के साथ संख्यात सौ योजनवर्ग–प्रमाण श्रेणी का आकाशखंड निकाला जाय तो इधर व्यन्तर समाप्त हो जाते हैं, उधर सारा प्रतर खाली हो जाता है।

ज्योतिषी देवों के शरीरों का वर्णन भी व्यंतर की तरह ही है। अन्तर इतना है कि व्यन्तर में संख्यात सौ योजनवर्ग प्रमाण विष्कम्भ–सूची कही है, उसके बदले ज्योतिषी में २५६ अंगुल वर्ग–प्रमाण कहना।

वैमानिक देवों का वर्णन भवनपति की तरह कहना। किन्तु इतना अन्तर है कि इनमें विष्कम्भ–सूची, अंगुल प्रमाण क्षेत्र के आकाश प्रदेशों के दूसरे वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जो प्रदेशराशि आती है, उस प्रमाण जानना। असत्कल्पना से अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेशराशि २५६ है। उसका दूसरा वर्गमूल ४ है और तीसरा वर्गमूल २ है। दूसरे वर्गमूल ४ को तीसरे वर्गमूल २ से गुणा करने पर ८ होते हैं।

+ संख्यात सौ योजनवर्ग की जगह धारणा से ३०० योजनवर्ग भी कहते हैं।

के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी आठ होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक–एक देवता ने सर्वार्थसिद्ध देवता के रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं, भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी आठ होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक–एक देवता ने पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के देव रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके ८ अथवा १६ अथवा २४ यावत् संख्यात होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक–एक देवता ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियमपूर्वक ८, १६, २४, यावत् संख्यात करेगा। चार अनुत्तर विमान के एक–एक देवता ने संज्ञी मनुष्य और वैमानिक देवता के सिवा सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनंत कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी।

सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देवता ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमानकाल में आठ हैं और भविष्यकाल में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देवता ने चार अनुत्तर विमान रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं, उसने आठ कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देवता ने चार अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवा शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं,वर्तमान में नही हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देवता ने संज्ञी मनुष्य के रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियमपूर्वक आठ होंगी।

पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय,

७ . पांच भाव–इन्द्रिय का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १५ वां पद)

यहां अठारह द्वारों से इन्द्रिय का वर्णन किया जाता है–
१. नामद्वार २. संस्थान द्वार ३. बाहल्य (जाड़ापन) द्वार ४. पृथुत्व (विस्तार–लम्बाई) द्वार ५. अवगाढ़द्वार ६. स्पृष्टद्वार ७. अवगाढ़ का अल्पबहुत्वद्वार ८. स्पृष्ट का अल्पबहुत्वद्वार ९. अवगाढ़–स्पृष्ट का अल्पबहुत्वद्वार १०. कर्कशगुरुद्वार १२. लघुमृदुद्वार १२. कर्कशगुरु का अल्पबहुत्वद्वार १३. लघुमृदु का अल्पबहुत्वद्वार १४. कर्कशगुरु और लघुमृदु का अल्पबहुत्वद्वार १५. विषयद्वार १६. जघन्य उपयोग के काल का अल्पबहुत्वद्वार १७. उत्कृष्ट उपयोग के काल का अल्पबहुत्वद्वार १८. जघन्य उत्कृष्ट उपयोग के काल का अल्पबहुत्वद्वार।

१. नामद्वार – श्रोत्रेन्द्रिय (गोचरी) चक्षुरिन्द्रिय (अगोचरी) घ्राणेन्द्रिय (दुमोही) रसनेन्द्रिय (चरपरी) स्पर्शनेन्द्रिय (अचरपरी)।

२. संस्थानद्वार – १. श्रोत्रेन्द्रिय का आकार कदम्ब के फूल जैसा, २. चक्षुरिन्द्रिय का संस्थान मसूर की दाल व चन्द्र के आकार जैसा, ३. घ्राणेन्द्रिय का संस्थान लोहार की धमण अथवा अतिमुक्तक फूल के आकार जैसा, ४. रसनेन्द्रिय का संस्थान क्षुरप्र (उस्तरा) के आकार ५. स्पर्शनेन्द्रिय का संस्थान नाना आकार का है। इन्द्रियों का उक्त संस्थान आभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय का है, जो सभी जीवों के समान होती है?

३. बाहल्य (जाड़ापन) द्वार–सभी इन्द्रियों का जाड़ापन जघन्य उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग है।

४ पृथुत्व (लम्बाई) द्वार–श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय की लम्बाई अंगुल के असंख्यातवें भाग और रसनेन्द्रिय

संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य, इन ग्यारह स्थानों के एक–एक जीव ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं, भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, द्वीन्द्रिय में २, ४, ६, त्रीन्द्रिय में ४, ८, १२, चतुरिन्द्रिय में ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय में ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। उक्त ग्यारह बोलों के एक–एक जीव ने पांच अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवा सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियां अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, द्वीन्द्रिय में २, ४, ६, त्रीन्द्रिय में ४, ८, १२, चतुरिन्द्रिय में ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय में ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। उक्त ग्यारह बोलों के एक–एक जीव ने पांच अनुत्तर विमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके चार अनुत्तरविमान रूप में आठ अथवा सोलह होंगी और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में आठ होंगी। उक्त ग्यारह बोलों के एक–एक जीव ने संज्ञीमनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनंत कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियमपूर्वक ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

संज्ञी मनुष्य के एक–एक जीव ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनंत कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके ८ या १६ या २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक संज्ञी मनुष्य ने पांच अनुत्तरविमान और संज्ञी मनुष्य के सिवा शेष सभी

की लम्बाई प्रत्येक अंगुल अर्थात् दो से नौ अंगुल की है। यह अंगुल आत्मांगुल लेना। स्पर्शनेन्द्रिय की लम्बाई शरीर–प्रमाण है।

५. अवगाढ़द्वार–पांचों इन्द्रियां असंख्यात आकाश– प्रदेश अवगाह कर रही हैं।

६. स्पृष्ट (लागा) द्वार–एक–एक इन्द्रिय के अनन्त–अनन्त पुद्गल स्पृष्ट (लगे हुए) हैं।

७. अवगाढ़ का अल्पबहुत्वद्वार – १. सब से थोड़े चक्षु – रिन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश, २. श्रोत्रेन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश संख्यातगुणा, ३. घ्राणेन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश संख्यातगुणा, ४. रसनेन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश असंख्यातगुणा, ५. स्पर्शनेन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश संख्यातगुणा।

८. स्पृष्ट का अल्पबहुत्वद्वार– १. सब से थोड़े चक्षुरिन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल, २. श्रोत्रेन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल संख्यातगुणा, ३. घ्राणेन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल संख्यातगुणा, ४. रसनेन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल असंख्यातगुणा, ५. स्पर्शनेन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल संख्यातगुणा।

९. अवगाढ़ और स्पृष्ट का सम्मिलित अल्पबहुत्वद्वार– १. सबसे थोड़े चक्षुरिन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश, २. श्रोत्रेन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश संख्यातगुणा, ३. घ्राणेन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश संख्यातगुणा, ४. रसनेन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश असंख्यातगुणा, ५. स्पर्शनेन्द्रिय के अवगाहे हुए आकाशप्रदेश संख्यातगुणा, ६. चक्षुरिन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल अनन्तगुणा, ७. श्रोत्रेन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल संख्यातगुणा, ८. घ्राणेन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल संख्यातगुणा, ९. रसनेन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल असंख्यातगुणा, १०. स्पर्शनेन्द्रिय के स्पृष्ट पुद्गल संख्यातगुणा।

स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनंत कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय की अपेक्षा १, २, ३, द्वीन्द्रिय की अपेक्षा २, ४, ६, त्रीन्द्रिय की अपेक्षा ४, ८, १२, चतुरिन्द्रिय की अपेक्षा ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय की अपेक्षा ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक एक संज्ञी मनुष्य ने पांच अनुत्तरविमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं। जिसने कीं उसने चार अनुत्तरविमान के देव रूप में ८ अथवा १६ कीं और सर्वार्थसिद्ध देवता के रूप में ८ कीं। वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके चार अनुत्तरविमान के देव रूप में ८ अथवा १६ होंगी और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में आठ होंगी।

बहुत नारकी के नैरयिकों ने नारकी से लेकर यावत् नवग्रैवेयक देवता के रूप में तथा औदारिक के दस दंडक रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनंत कीं, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं और भविष्य में अनंत होंगी। बहुत नारकी के नैरयिकों ने पांच अनुत्तरविमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

बहुत से भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के जीवों ने नारकी से लेकर यावत् नवग्रैवेयक देवता और औदारिक के दस दंडक के रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं किन्तु वनस्पति में स्वस्थान की अपेक्षा अनंत हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं, भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत से भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, पांच स्थावर,

१०. कर्कश–गुरुद्वार–एक–एक इन्द्रिय के अनन्त–अनन्त कर्कश–गुरुगुण वाले पुद्गल लगे हुए हैं।

११. लघु–मृदुद्वार–एक–एक इन्द्रिय के अनन्त–अनन्त लघु–मृदुगुण वाले पुद्गल लगे हुए हैं।

१२. कर्कश–गुरु का अल्पबहुत्वद्वार – १. सबसे थोड़े चक्षुरिन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल, २. श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल अनन्तगुणा, ३. घ्राणेन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल अनन्तगुणा, ४. रसनेन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल अनन्तगुणा, ५. स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल अनन्तगुणा।

१३. लघु–मृदु का अल्पबहुत्वद्वार – १ सबसे थोड़े स्पर्शनेन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल, २. रसनेन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा, ३. घ्राणेन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा, ४. श्रोत्रेन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा, ५. चक्षुरिन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा।

१४. कर्कश–गुरु और लघु–मृदु का सम्मिलित अल्पबहुत्वद्वार– १. सबसे थोड़े चक्षुरिन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल, २. श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल अनन्तगुणा, ३. घ्राणेन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल अनन्तगुणा, ४. रसनेन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल अनन्तगुणा, ५. स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश–गुरु पुद्गल अनन्तगुणा, ६. स्पर्शनेन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा, ७. रसनेन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा, ८. घ्राणेन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा, ९. श्रोत्रेन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा, १०. चक्षुरिन्द्रिय के लघु–मृदु पुद्गल अनन्तगुणा।

१५. विषयद्वार – १. श्रोत्रेन्द्रिय जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट बारह योजन से प्राप्त, अव्यवहित (अन्तर रहित अर्थात् अन्य शब्द तथा वायु आदि से जिसका सामर्थ्य नष्ट

तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के जीवों ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमानकाल में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी, किन्तु वनस्पति की अपेक्षा अनन्त होंगी।

बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने संज्ञी मनुष्य और पांच अनुत्तरविमान के सिवा शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनंत कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने स्वस्थान यानी संज्ञी मनुष्य की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने पांच अनुत्तरविमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में संख्यात कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी।

पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने चार अनुत्तरविमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीत में असंख्यात कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने सर्वार्थसिद्ध देवता के रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने पांच अनुत्तरविमान के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनंत कीं, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं और भविष्य में अनंत होंगी।

चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में असंख्यात कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं

नहीं हुआ है), स्पृष्ट, प्रविष्ट (प्रवेश हुआ) शब्द सुनती है। २. चक्षुरिन्द्रिय जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक लाख योजन से प्राप्त, दीवाल आदि से अव्यवहित, अस्पृष्ट, अप्रविष्ट रूप देखती है। ३. घ्राणेन्द्रिय जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट नौ योजन से प्राप्त अव्यवहित, स्पृष्ट, प्रविष्ट पुद्‌गलों को सूंघती है। रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय घ्राणेन्द्रिय की तरह कहना चाहिए।

एकेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ४०० धनुष, द्वीन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ८०० धनुष, त्रीन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय १६०० धनुष, चतुरिन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ३२०० धनुष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ६४०० धनुष और संज्ञी पंचेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय नौ योजन है। द्वीन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय ६४ धनुष, त्रीन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय १२८ धनुष, चतुरिन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय २५६ धनुष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय ५१२ धनुष और संज्ञी पंचेन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय नौ योजन है। त्रीन्द्रिय के घ्राणेन्द्रिय का विषय १०० धनुष, चतुरिन्द्रिय के घ्राणेन्द्रिय का विषय २०० धनुष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के घ्राणेन्द्रिय का विषय ४०० धनुष और संज्ञी पंचेन्द्रिय के घ्राणेन्द्रिय का विषय नौ योजन है। चतुरिन्द्रिय के चक्षुरिन्द्रिय का विषय २९५४ धनुष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के चक्षुरिन्द्रिय का विषय ५९०८ धनुष और संज्ञी पंचेन्द्रिय के चक्षुरिन्द्रिय का विषय एक लाख योजन झाझेरा (अधिक) है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय के श्रोत्रेन्द्रिय का विषय ८०० धनुष* और संज्ञी पंचेन्द्रिय के श्रोत्रेन्द्रिय का विषय बारह योजन है।

---

*कोई ८००० धनुष भी कहते हैं। तत्त्व केवलीगम्य।

और भविष्य में असंख्यात होंगी। चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने सर्वार्थसिद्ध के देवता की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमानकाल में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी। चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के देवों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनंत कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने वैमानिकदेव और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनंत कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य के रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनंत कीं, वर्तमानकाल में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने चार अनुत्तरविमान के देवरूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में संख्यात कीं, वर्तमानकाल में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने चार अनुत्तरविमान और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी।

९. पांच भाव–इंद्रियों का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १५वां पद)

भाव–इन्द्रियां पांच हैं–श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। नारकी के नैरयिक, दस भवनपति,

१६. जघन्य उपयोगकाल का अल्पबहुत्व – १. सबसे थोड़ा चक्षुरिन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल, २. श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक, ३. घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक, ४. रसनेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक, ५. स्पर्शनेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक।

१७. उत्कृष्ट उपयोगकाल का अल्पबहुत्व – १. सब से थोड़ा चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल, २. श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक, ३. घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक, ४. रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक, ५. स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक।

१८. जघन्य–उत्कृष्ट उपयोगकाल का शामिल अल्पबहुत्व– १. सबसे थोड़ा चक्षुरिन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल, २. श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक, ३. घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक, ४. रसनेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक, ५. स्पर्शनेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक, ६. चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक, ७. श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक, ८. घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक, ९. रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक, १०. स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक।

८. आठ द्रव्येन्द्रियों का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १५वां पद)

आठ द्रव्येन्द्रियों के नाम– दो कान, दो आंख, दो नाक, एक जिह्वा और एक स्पर्शनेन्द्रिय।

नैरयिक, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक, तिर्यंच–पंचेन्द्रिय और मनुष्य के आठ द्रव्येन्द्रियां होती हैं। पांच स्थावर के

व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चौदह दण्डक में तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य में ये पांचों इन्द्रियां होती हैं। पांच स्थावर में एक स्पर्शनेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय में दो– स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय में तीन–स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय में चार इन्द्रियां–स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय होती हैं।

एक–एक नारकी के नैरयिक ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में ५, १०, ११ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक असुरकुमार ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में पांच, छह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। इसी तरह नव निकाय, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देव लोक के एक–एक देवता का कह देना। चार अनुत्तरविमान के एक–एक देवता ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में ५, १०, १५ यावत् संख्यात होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देवता ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में पांच होंगी। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय के एक–एक जीव ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनंत कीं, वर्तमान में एकेन्द्रिय के एक, द्वीन्द्रिय के दो, त्रीन्द्रिय के तीन, चतुरिन्द्रिय के चार हैं और भविष्य में छह, सात यावत् संख्यात, असंख्यात अनन्त होंगी, किन्तु पृथ्वी, पानी, वनस्पति में पांच भी होंगी। तिर्यंचपंचेन्द्रिय असुरकुमार की तरह कहना। एक–एक संज्ञी मनुष्य ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके पांच, छह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

बहुत से नारकी के नैरयिकों ने भावेन्द्रियां अतीतकाल

एक द्रव्येन्द्रिय–स्पर्शनेन्द्रिय होती है। द्वीन्द्रिय के दो द्रव्येन्द्रियां होती हैं–जिह्वा और स्पर्शनेन्द्रिय। त्रीन्द्रिय के चार द्रव्येन्द्रियां होती हैं–दो नाक, जिह्वा और स्पर्शनेन्द्रिय। चतुरिन्द्रिय के ये चार और दो आंख–ये छह द्रव्येन्द्रियां होती हैं। इस थोकड़े में एक जीव की अपेक्षा, अनेक जीवों की अपेक्षा, एक जीव में परस्पर? अनेक जीवों में परस्पर अतीत (भूतकाल), वर्तमान (बद्धेल्लगा) और भविष्य (पुरेक्खडा) काल की द्रव्येन्द्रियों का वर्णन किया गया है।

एक नैरयिक ने अतीतकाल में द्रव्येन्द्रियां अनन्त की हैं। वर्तमान काल संबंधी द्रव्येन्द्रियां उसके आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा सत्रह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

एक असुरकुमार देवता ने अतीतकाल में द्रव्येन्द्रियां अनन्त कीं, वर्तमानकाल में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा नौ अथवा सत्रह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। असुरकुमार की तरह शेष नवनिकाय के भवनपति देव कहना। पृथ्वी, पानी और वनस्पति के एक–एक जीव ने अतीतकाल में द्रव्येन्द्रियां अनन्त कीं, वर्तमान में एक द्रव्येन्द्रिय है और भविष्य मे आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के एक एक जीव ने अतीतकाल में द्रव्येन्द्रियां अनन्त कीं, वर्तमान में तेजस्काय, वायुकाय के एक, द्वीन्द्रिय के दो, त्रीन्द्रिय के चार, चतुरिन्द्रिय के छह, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के आठ द्रव्येन्द्रियां हैं तथा भविष्य में नौ अथवा दस यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

संज्ञी तिर्यंच के एक–एक जीव ने द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल

में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी व पहले देवलोक से नवग्रैवयेक तक के बहुत से देवों ने तथा चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय के बहुत से जीवों ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। वनस्पतिकाय के बहुत जीवों ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में अनन्त हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत से संज्ञी मनुष्य और सर्वार्थसिद्ध के देवों ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में मनुष्यों में अनन्त होंगी और सर्वार्थसिद्ध के देवों में संख्यात होंगी। चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

नारकी के एक–एक नैरयिक ने नैरयिक के रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके पांच, दस, पन्द्रह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक नारकी के नैरयिक ने पांच अनुत्तरविमान और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, द्वीन्द्रिय में २, ४, ६, त्रीन्द्रिय में ३, ६, ९, चतुरिन्द्रिय में ४, ८, १२ और पंचेन्द्रिय में ५, १०, १५ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं, भविष्य में नियमपूर्वक ५, १०, १५, यावत् संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी। एक–एक नारकी के नैरयिक ने पांच अनुत्तरविमान के देव रूप में भावेन्द्रियां

में अनन्त कीं, वर्तमानकाल में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

संज्ञी मनुष्य के एक–एक जीव ने द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमानकाल में आठ हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के एक–एक देवता ने द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमानकाल में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

तीसरे देवलोक से नवग्रैवेयक के एक–एक देवता ने अतीत में द्रव्येन्द्रियां अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा सत्रह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के एक–एक देवता ने द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात करेंगे।

सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देवता ने द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में भी आठ होंगी।

नारकी के अनेक नैरयिकों ने अतीत में द्रव्येन्द्रियां अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। मनुष्य और अनुत्तर–विमान के सिवा बहुत भवनपति, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी यावत् नवग्रैवेयक तक के देवों ने द्रव्येन्द्रियां अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने द्रव्येन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं,

अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमानकाल में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी और किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी, उसके चार, अनुत्तरविमान के देव रूप में ५, १० और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में पांच होंगी। एक–एक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय, सम्मूर्छिम मनुष्य, नारकी की तरह कह देना चाहिए।

पहले देवलोक से लेकर नवग्रेवेयक तक के एक–एक देव ने पांच अनुत्तरविमान और संज्ञी मनुष्य को छोड़कर शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान में पांच हैं, परस्थान में नहीं हैं, भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी, उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, द्वीन्द्रिय में २, ४, ६, त्रीन्द्रिय में ३, ६, ९, चतुरिन्द्रिय में ४, ८, १२ और पंचेन्द्रिय में ५, १०, १५ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के एक–एक देवता ने पांच अनुत्तरविमान के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं, उसने चार अनुत्तरविमान के देव रूप में ५ कीं, किन्तु सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके चार, अनुत्तरविमान के देव रूप में पांच या दस होंगी और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में पांच होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक–एक देव ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियमपूर्वक पांच, दस, पन्द्रह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

चार अनुत्तर विमान के एक–एक देव ने संज्ञी मनुष्य और पांच अनुत्तरविमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में केवल

वैमानिकदेव की अपेक्षा किसी के होंगी; किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी, उसके ५, १०, १५, यावत् संख्यात होंगी। शेष स्थानों की अपेक्षा नहीं होंगी। चार अनुत्तरविमान के एक–एक देव ने स्वस्थान अर्थात् चार अनुत्तरविमान के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने की हैं, उसने पांच की हैं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं। जिसके होंगी, उसके पांच होंगी। चार अनुत्तरविमान के एक–एक देव ने सर्वार्थसिद्ध के देवता के रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके पांच होंगी। चार अनुत्तरविमान के एक–एक देव ने संज्ञी मनुष्य के रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियमपूर्वक पांच, दस यावत् संख्यात होंगी।

सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देव ने संज्ञी मनुष्य और अनुत्तरविमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देव ने चार अनुत्तर के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं, उसने ५ कीं। वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देव ने सिद्ध देव के रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक–एक देव ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियमपूर्वक पांच होंगी।

एक–एक संज्ञी मनुष्य ने संज्ञी मनुष्य के रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में किसी

उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) की। अवेदी के दो भंग होते हैं– सादि– अपर्यवसित और सादि–सपर्यवसित। दूसरे भंग की कायस्थिति– जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की।

अंतर–संवेदी के पहले दूसरे भंग का और अवेदी के पहले भंग का अंतर नहीं। सवेदी के तीसरे भंग का अंतर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त का। स्त्रीवेद का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, पुरुषवेद का अंतर जघन्य एक समय का, दोनों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का। नपुंसकवेद का अन्तर जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सागरोपम से कुछ अधिक का। अवेदी के दूसरे भंग का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का।

७ कषायपद–सकषायी के तीन भंग कहना–अनादि–अपर्यवसित, अनादि–सपर्यवसित और सादि–सपर्यवसित। तीसरे भंग की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन की। क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। लोभकषायी की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की, अकषायी के दो भंग–सादि–अपर्यवसित और सादि–सपर्यवसित। दूसरे भंग की कायस्थिति अवेदी की तरह जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की कहना।

अंतर–सकषायी के पहले दूसरे और अकषायी के पहले भंग का अंतर नहीं। सकषायी के तीसरे भंग का अन्तर जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त का। क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी का अंतर जघन्य एकसमय का, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त का। लोभकषायी का अंतर जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त का। अकषायी के दूसरे भंग का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन

के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी, उसके ५, १०, १५ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक संज्ञी मनुष्य ने पांच अनुत्तरविमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, द्वीन्द्रिय में २, ४, ६, त्रीन्द्रिय में ३, ६, ९, चतुरिन्द्रिय में ४,८,१२ और पंचेन्द्रिय में ५, १०, १५, यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक–एक संज्ञी मनुष्य ने पांच अनुत्तरविमान के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं उसने चार अनुत्तरविमान के देव रूप में पांच अथवा दस और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में पांच कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में अतीतकाल की तरह कहना चाहिए।

बहुत से नारकी के नैरयिकों ने पांच अनुत्तरविमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत से नारकी के नैरयिकों ने पांच अनुत्तरविमान के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के भावेन्द्रियां नारकी के नैरयिकों की तरह कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वनस्पति के जीवों में पांच अनुत्तरविमान की अपेक्षा भविष्य में भावेन्द्रियां अनन्त कहनी चाहिए।

बहुत संज्ञी मनुष्यों ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत संज्ञी मनुष्यों ने पांच अनुत्तरविमान के सिवाय

अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का।

८ लेश्यापद–सलेश्य (लेश्यापदवाले) जीव के दो भंग अनादि–अपर्यवसित और अनादि–सपर्यवसित। कृष्णलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम अंतर्मुहूर्त अधिक। नीललेश्या वाले की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट दस सागरोपम पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक। कापोतलेश्या वाले की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तीन सागरोपम पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक। तेजोलेश्या वाले की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट दो सागरोपम पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक। पद्मलेश्या वाले की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट दस सागरोपम अंतर्मुहूर्त अधिक। अलेश्य (लेश्यारहित) में एक सादि– अपर्यवसित भंग पाया जाता है।

अंतर–सलेश्य और अलेश्य का अंतर नहीं है।कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम अंतर्मुहूर्त अधिक।तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल यानी वनस्पतिकाल का।

९ सम्यक्त्वपद–सम्यग्दृष्टि के दो भंग–सादि–अपर्यवसित और सादि–सपर्यवसित। सम्यग्दृष्टि के दूसरे भंग के क्षयोपशम–सम्यक्त्व की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ६६ सागरोपम से कुछ अधिक। सास्वादनसम्यक्त्व की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट छह आवलिका की। उपशमसम्यक्त्व की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की। वेदक (क्षायिक वेदक) सम्यक्त्व की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट एक समय की। क्षायिक सम्यक्त्व में एक सादि–अपर्यवसित भंग पाया जाता है।

शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत संज्ञी मनुष्यों ने पांच अनुत्तरविमान के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में संख्यात कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी।

पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने नारकी से लेकर नवग्रैवेयक तक के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमानकाल में स्वस्थान की अपेक्षा भावेन्द्रियां हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने पांच अनुत्तरविमान के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में चार अनुत्तरविमान के देव रूप में असंख्यात कीं, सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा भावेन्द्रियां अतीतकाल में असंख्यात कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी। चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने वैमानिक देव और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। चार अनुत्तरविमान के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य एवं पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

सर्वार्थसिद्धके बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा भावेन्द्रियां अतीतकाल में नहीं कीं,वर्तमान में संख्यात हैं, भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों

मिथ्यादृष्टि में तीन भंग हैं – अनादि–अपर्यवसित, अनादि–सपर्यवसित और सादि–सपर्यवसित। तीसरे भंग की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन की। मिश्रदृष्टि की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की।

अंतर–सम्यग्दृष्टि के पहले भंग का अंतर नहीं है। दूसरे भंग का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का। मिथ्यादृष्टि के तीसरे भंग का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट ६६ सागरोपम से कुछ अधिक। मिश्रदृष्टि का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का। उपशम, सास्वादन और क्षयोपशम सम्यक्त्व का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का। वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व का अंतर नहीं है।

१० ज्ञानपद–समुच्चय ज्ञानी के दो भंग–सादि–अपर्यवसित और सादि–सपर्यवसित। समुच्चय ज्ञानी के दूसरे भंग की एवं मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ६६ सागरोपम से कुछ अधिक। अवधिज्ञानी की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट ६६ सागरोपम से कुछ अधिक। मनः पर्यवज्ञानी की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की। केवलज्ञानी में एक सादि–अपर्यवसित भंग होता है। समुच्चय अज्ञानी, मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी में तीन भंग होते हैं– अनादि–अपर्यवसित, अनादि–सपर्यवसित और सादि–सपर्यवसित। तीसरे भंग की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन की। विभंगज्ञानी की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम देशोन करोड़ पूर्व अधिक।

में भावेन्द्रियां अतीतकाल में चार अनुत्तरविमान के देव रूप से संख्यात कीं, शेष स्थानों की अपेक्षा अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियां अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी।

१०. कायस्थिति का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १८वां पद)

काय का अर्थ पर्याय है। पर्याय सामान्य, विशेष के भेद से दो प्रकार की है। जीव की जीवत्व रूप पर्याय सामान्य है और नरक, तिर्यंच आदि रूप पर्याय विशेषपर्याय है। सामान्य अथवा विशेषपर्याय की अपेक्षा जीव का निरन्तर होना कायस्थिति है। इस थोकड़े में बाईस पदों से कायस्थिति का वर्णन किया जाता है।

जीव गइ इंदिय काए, जोए वेए कसाय लेसा य।
सम्मत्त णाण दंसण, संजय उवओग आहारे॥
भासग परित्त पज्जत्त, सुहुम सण्णी भवऽत्थिचरिमे य।
एतेसिं तु पदाणं, कायठिई होइ णायव्वा॥

१ जीवपद, २ गतिपद, ३ इन्द्रियपद, ४ कायपद, ५ योगपद, ६ वेदपद, ७ कषायपद, ८ लेश्यापद, ९ सम्यक्त्वपद, १० ज्ञानपद, ११ दर्शनपद, १२ संयतपद, १३ उपयोगपद, १४ आहारपद, १५ भाषकपद, १६ परित्तपद, १७ पर्याप्तपद, १८ सूक्ष्मपद, १९ संज्ञीपद, २० भव्य (भवसिद्ध) पद, २१ अस्तिकायपद, २२ चरमपद।

१ जीवपद–समुच्चय जीव की कायस्थिति सर्वकाल (सव्वद्धा) की है।

२ गतिपद–नैरयिक और देवता की कायस्थिति जघन्य

अन्तर–समुच्चय ज्ञानी के पहले भंग और केवलज्ञानी का अंतर नहीं है। समुच्चय ज्ञानी के दूसरे भंग का, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी, इन पांच बोलों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का। समुच्चय अज्ञानी, मति–अज्ञानी, श्रुत–अज्ञानी, इन तीनों के पहले, दूसरे भंग का अंतर नहीं होता। तीसरे भंग का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट ६६ सागरोपम से कुछ अधिक। विभंगज्ञानी का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल यानी वनस्पतिकाल का।

११ दर्शनपद – चक्षुदर्शन की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट एक हजार सागरोपम से कुछ अधिक। अचक्षुदर्शन के दो भंग–अनादि–अपर्यवसित और अनादि–सपर्यवसित। अवधिदर्शन की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट १३२ सागरोपम से कुछ अधिक। केवलदर्शन में एक सादि–अपर्यवसित भंग पाया जाता है।

अंतर–चक्षुदर्शन और अवधिदर्शन का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल यानी वनस्पतिकाल का। अचक्षुदर्शन और केवलदर्शन का अन्तर नहीं होता।

१२ संयतपद–संयत (संयती) की कायस्थिति जघन्य एक समय की, संयतासंयती की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, दोनों की उत्कृष्ट कायस्थिति देशोन करोड़ पूर्व की। असंयती में तीन भंग हैं–अनादि–अपर्यवसित, अनादि–सपर्यवसित और सादि–सपर्यवसित। तीसरे भंग की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन की। सामायिकचारित्र, छेदोपस्थापनीयचारित्र और यथाख्यातचारित्र की कायस्थिति जघन्य एक समय की,उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की। परिहारविशुद्धिचारित्र की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट

दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की। देवी की कायस्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की। मनुष्य, मनुष्यस्त्री और तिर्यंचस्त्री की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट प्रत्येक कोटि (कोड़ी) पूर्व अधिक तीन पल्योपम की। तिर्यंच की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल की। काल की अपेक्षा अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की। क्षेत्र की अपेक्षा अनन्त लोक की। अर्थात् प्रतिसमय एक-एक आकाशप्रदेश निकालते हुए जितने काल में लोकप्रमाण अनन्त आकाशखण्ड खाली हों, उतने काल की यानी अनन्त लोकाकाश प्रमाण आकाशखंडों के प्रदेश प्रमाण समयों की। काल (पुद्गलपरावर्तनकाल) की अपेक्षा असंख्यात पुद्गलपरावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय होते हैं,उतने पुद्गलपरावर्तन की तिर्यंच की कायस्थिति है। तिर्यंच की यह कायस्थिति वनस्पति की अपेक्षा है। सिद्ध भगवान् सादि अपर्यवसित (साइया अपज्जवसिया) हैं। सिद्ध भगवान् के सिवाय सात अपर्याप्त बोलों (नरक, देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यस्त्री, तिर्यंच, तिर्यंचस्त्री) की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की। पर्याप्त नारकी और देवता की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की। पर्याप्त तिर्यंच, तिर्यंचस्त्री, मनुष्य और मनुष्यस्त्री की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की। पर्याप्त देवी की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचपन पल्योपम की।

अन्तर (आन्तरा)-सिद्ध भगवान् का अन्तर नहीं होता है। नारकी, तिर्यंचस्त्री, मनुष्य, मनुष्यस्त्री, देवी, देवता - ये छह समुच्चय का, छह के पर्याप्त, अपर्याप्त, तिर्यंचस्त्री, मनुष्य, मनुष्यस्त्री,

उनतीस वर्ष कम करोड़ पूर्व की। सूक्ष्मसंपरायचारित्र की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत (सिद्ध) में सादि-अपर्यवसित भंग पाया जाता है।

अन्तर-संयत, संयतासंयत और पांच चारित्र, इन सात बोलों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का। असंयती के तीसरे भंग का अन्तर जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व का। असंयती के पहले, दूसरे भंग का तथा नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत का अंतर नहीं होता।

१३ उपयोगपद-साकार-उपयोग (ज्ञान) वाले और अनाकार-उपयोग (दर्शन) वाले की कायस्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। दोनों का अन्तर भी जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त का होता है।

१४ आहारकपद - आहारक के दो भेद - छद्मस्थ-आहारक और केवली-आहारक। छद्मस्थ-आहारक की कायस्थिति जघन्य दो समय न्यून क्षुल्लकभव (खुड्डागभव) ग्रहण की, उत्कृष्ट असंख्यातकाल की, काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी की, क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग में जितने आकाशप्रदेश हों उतने समयों की। केवली-आहारक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की। अनाहारक के दो भेद-छद्मस्थ-अनाहारक और केवली-अनाहारक। छद्मस्थ-अनाहारक की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट दो समय की। केवली-अनाहारक के दो भेद-सिद्ध केवली-अनाहारक और भवस्थ केवली-अनाहारक। सिद्ध केवली अनाहारक में एक सादि-अपर्यवसित भंग होता है। भवस्थ केवली-अनाहारक के

इन पन्द्रह बोलों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल का। + अपर्याप्त नारकी, देवी तथा देवता का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष का, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का, शेष समुच्चय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंच का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सगरोपम से अधिक।

३ इन्द्रियपद–सेन्द्रिय (सइंदिया) काल की अपेक्षा अनादि–अपर्यवसित और अनादि–सपर्यवसित होते हैं। एकेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) की। तीन विकलेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट संख्यात काल की। पंचेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट एक हजार सागरोपम से अधिक की। अनिन्द्रिय में सादि–अपर्यवसित एक भंग कहना। अनिन्द्रिय के सिवाय छह बोल के अपर्याप्त की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। सेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के पर्याप्त की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सागरोपम से कुछ अधिक की। पर्याप्त एकेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों की। पर्याप्त द्वीन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट संख्यात वर्षों की। पर्याप्त त्रीन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट संख्यात दिनरात की। पर्याप्त चतुरिन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट संख्यात महीनों की।

अंतर–समुच्चय सेन्द्रिय और अनिन्द्रिय का अंतर नहीं है। एकेन्द्रिय का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट दो हजार

+ ऊपर तिर्यंच की कायस्थिति में काल, क्षेत्र और पुद्गलपरावर्तन काल की अपेक्षा अनन्तकाल का परिमाण बताया है, तदनुसार यहां अनन्तकाल समझना।

दो भेद–सयोगी भवस्थ केवली–अनाहारक और अयोगी भवस्थ केवली–अनाहारक। सयोगी भवस्थ केवली–अनाहारक की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट तीन समय की। अयोगी भवस्थ केवली–अनाहारक की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की।

अन्तर–छद्मस्थ–आहारक का अन्तर जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट दो समय का। छद्मस्थ–अनाहारक का अंतर जघन्य दो समय न्यून क्षुल्लकभवग्रहण का, उत्कृष्ट असंख्यातकाल–बादर काल–का, काल से असंख्यात उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी, क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग के आकाशप्रदेश प्रमाण। केवली–आहारक का अन्तर जघन्य, उत्कृष्ट तीन समय का। सयोगी केवली–अनाहारक का अंतर जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का। अयोगी केवली और सिद्ध केवली का अंतर नहीं होता।

१५ भाषकपद–भाषक की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। अभाषक के दो भेद – सिद्ध अभाषक और संसारी अभाषक। सिद्ध अभाषक सादि–अपर्यवसित है। संसारी अभाषक की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) की।

अंतर–भाषक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल यानी वनस्पतिकाल का, संसारी अभाषक का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का। सिद्ध अभाषक का अन्तर नहीं होता।

१६ परित्तपद–परित्त के दो भेद – संसारपरित्त और कायपरित्त। संसारपरित्त की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन की। कायपरित्त की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट असंख्यातकाल (पृथ्वीकाल) की। अपरित्त के दो भेद–संसार–अपरित्त और काय–अपरित्त। संसार–

सागरोपम से कुछ अधिक। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का।

४ कायापद–सकायिक काल की अपेक्षा अनादि–अपर्यवसित और अनादि–सपर्यवसित होते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय, इन चारों की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट असंख्यात काल की, काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी के समय प्रमाण, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण। वनस्पति की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अनन्त काल की, काल की अपेक्षा अनन्त उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी की, क्षेत्र की अपेक्षा अनन्त लोकप्रमाण, पुद्‌गलपरावर्तन की अपेक्षा असंख्यात पुद्‌गलपरावर्तन प्रमाण यानी आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय होते हैं उतने पुद्‌गलपरावर्तन की। त्रसकाय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट दो हजार सागरोपम से कुछ अधिक। अकायिक (सिद्ध) सादि–अपर्यवसित होते हैं। अकायिक के सिवाय सात बोलों के अपर्याप्त की कायस्थिति जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की। सकायिक और त्रसकाय के पर्याप्त की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट प्रत्येक सागरोपम से कुछ अधिक। पर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट तेजस्काय की संख्यात दिनरात की, शेष चार की संख्यात हजार वर्षों की।

अंतर–सकायिक और अकायिक का अंतर नहीं होता है। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और त्रसकाय का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्त काल (वनस्पतिकाल) का। वनस्पतिकाय का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट असंख्यात

अपरित्त के दो भंग होते हैं–अनादि–अपर्यवसित और अनादि–सपर्यवसित। काय–अपरित्त की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) की। नोपरित्त–नोअपरित्त में सादि–अपर्यवसित भंग पाया जाता है।

अन्तर – संसारपरित्त का अन्तर नहीं। कायपरित्त का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का। संसार–अपरित्त का अन्तर नहीं। काय–अपरित्त का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट असंख्यातकाल (पृथ्वीकाल) का। नोपरित्त–नोअपरित्त का अन्तर नहीं होता।

१७ पर्याप्तपद–पर्याप्त की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सागरोपम से कुछ अधिक। अपर्याप्त की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। नोपर्याप्त–नोअपर्याप्त (सिद्ध) में सादि–अपर्यवसित भंग पाया जाता है।

अन्तर–पर्याप्त का अन्तर जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का। अपर्याप्त का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सागरोपम से कुछ अधिक का। नोपर्याप्त–नोअपर्याप्त का अन्तर नहीं है।

१८ सूक्ष्मपद–सूक्ष्म की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट असंख्यातकाल–पृथ्वीकाल की। बादर की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट असंख्यातकाल बादर काल की। नोसूक्ष्म–नोबादर में सादि–अपर्यवसित भंग मिलता है।

अन्तर–सूक्ष्म का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट असंख्यातकाल यानी बादर काल का। बादर का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त का, उत्कृष्ट असंख्यातकाल यानी पृथ्वीकाल का। नोसूक्ष्म–नोबादर का अन्तर नहीं।

१९ संज्ञीपद–संज्ञी की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,

काल (पृथ्वीकाल) का।

सूक्ष्म के सात बोल–समुच्चय सूक्ष्म, सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेजस्काय, सूक्ष्म वायुकाय, सूक्ष्म वनस्पतिकाय और सूक्ष्म निगोद। सूक्ष्म के इन सातों बोलों की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट असंख्यातकाल (पृथ्वीकाल) की। सूक्ष्म के इन सात बोलों के अपर्याप्त और पर्याप्त – चौदह बोलों की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।

अन्तर–समुच्चय सूक्ष्म, सूक्ष्म वनस्पति और सूक्ष्म निगोद का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट असंख्यातकाल का, काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी का, क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में जितने आकाशप्रदेश हों उतने समय का। सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेजस्काय और सूक्ष्म वायुकाय, इन चार का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का।

बादर के दस बोल–समुच्चय बादर, पांच बादर स्थावर, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकाय, बादर निगोद, बादर त्रस, समुच्चय निगोद। समुच्चय बादर और बादर वनस्पतिकाय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट असंख्यात काल की, काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी– अवसर्पिणी प्रमाण, क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग के आकाशप्रदेश प्रमाण। बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय, बादर तेजस्काय, बादर वायुकाय, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकाय, बादर निगोद, इन छह बोल की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ७० कोड़ाकोड़ी (कोटि–कोटि) सागरोपम की। समुच्चय निगोद की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल की, काल की अपेक्षा अनन्त उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी की, क्षेत्र की अपेक्षा ढाई पुद्‌गलपरावर्तन

उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सागरोपम से कुछ अधिक। असंज्ञी की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अनन्तकाल यानी वनस्पतिकाल की। नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी में सादि–अपर्यवसित भंग होता है।

अन्तर–संज्ञी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का। असंज्ञी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सागरोपम से कुछ अधिक काल का। नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी का अन्तर नहीं है।

२० भव्यपद–भव्य में एक भंग होता है–अनादि–सपर्यवसित। अभव्य में एक भंग होता है– अनादि–अपर्यवसित। नोभव्य–नोअभव्य में एक सादि–अपर्यवसित भंग होता है। तीनों का अन्तर नहीं है।

२१ अस्तिकायपद–धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्य सदा सर्वदा मिलते हैं।

२२ चरमपद–जिसका चरम भव होगा वह चरम यानी भव्य। जिसका चरम भव नहीं होगा वह अचरम अर्थात् अभव्य। चरम में अनादि–सपर्यवसित भंग होता है। अचरम में अभव्य की अपेक्षा अनादि–अपर्यवसित भंग पाया जाता है और सिद्ध की अपेक्षा सादि–अपर्यवसित भंग पाया जाता है। चरम, अचरम का अन्तर नहीं होता।

११. शरीर का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २१ वां पद)

इस थोकड़े में पन्द्रह द्वारों से शरीर का वर्णन किया जाता है। पन्द्रहद्वार – १. नामद्वार, २. अर्थद्वार, ३. स्वामीद्वार, ४. संस्थानद्वार, ५. अवगाहनाद्वार, ६. शरीरसंयोगद्वार, ७. द्रव्यार्थ की

की। बादर त्रसकाय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट दो हजार सागरोपम, संख्यातवर्ष अधिक की। बादर के दस बोलों के अपर्याप्त की कायस्थिति जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की। समुच्चय बादर और बादर त्रसकाय के पर्याप्त की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सागरोपम से अधिक की। बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय, बादर वायुकाय, बादर वनस्पतिकाय, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकाय, इन पांच बोलों के पर्याप्त की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों की। बादर तेजस्काय के पर्याप्त की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट संख्यात अहोरात्रि की। समुच्चय निगोद और बादर निगोद के पर्याप्त की कायस्थिति जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की।

अंतर – समुच्चय बादर, बादर वनस्पतिकाय, बादर निगोद और समुच्चय निगोद – इन चार बोलों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट पृथ्वीकाल का। बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय, बादर तेजस्काय, बादर वायुकाय, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकाय, बादर त्रसकाय–इन छह बोलों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल का + है।

५ योगपद–सयोगी दो तरह के होते हैं – अनादि – अपर्यवसित और अनादि–सपर्यवसित। जो कभी मोक्ष नहीं जायेगा वह सदैव योग वाला है। इसलिए वह अनादि–अपर्यवसित योग वाला कहा जाता है। जो कभी न कभी मोक्ष जाने वाला है वह अनादि–सपर्यवसित योग वाला है, क्योंकि मोक्ष जाने पर योग का अभाव

+ समुच्चय बादर, बादर वनस्पतिकाय, समुच्चय निगोद, बादर निगोद, इन चार का अन्तर पृथ्वीकाल का। समुच्चय सूक्ष्म, सूक्ष्म वनस्पतिकाय, सूक्ष्म निगोद, इन तीन का अन्तर बादर काल का। शेष सभी का अन्तर वनस्पतिकाल का।

अपेक्षा (दव्वट्ठयाए) अल्पबहुत्वद्वार, ८. प्रदेशार्थ की अपेक्षा (पएसट्ठयाए) अल्पबहुत्वद्वार, ९. द्रव्यार्थ और प्रदेशार्थ शामिल की अपेक्षा अल्पबहुत्वद्वार, १०. सूक्ष्म–बादरद्वार, ११. अवगाहना का अल्पबहुत्वद्वार, १२. प्रयोजनद्वार, १३. विषयद्वार, १४. स्थितिद्वार, १५. अन्तर (आंतरा) द्वार।

(१) नामद्वार–शरीर पांच होते हैं–औदारिकशरीर, वैक्रियशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर।

(२) अर्थद्वार–उदार अर्थात् प्रधान शरीर को औदारिकशरीर कहते हैं। तीर्थंकर, गणधरों के शरीर की अपेक्षा यह शरीर प्रधान कहा गया है। उदार अर्थात् महान् प्रमाणवाला होने से भी यह शरीर औदारिक कहा गया है। भवधारणीय स्वाभाविक वैक्रियशरीर की अपेक्षा औदारिकशरीर अधिक प्रमाण वाला कहा गया है। औदारिकशरीर कमल की अपेक्षा हजार योजन से अधिक प्रमाण वाला होता है। जिस शरीर में विविध अथवा विशिष्ट क्रियाएं होती हैं, उसे वैक्रियशरीर कहते हैं। इस शरीर वाला एक, अनेक, अणु, महान, दृश्य, अदृश्य, आकाशचारी तथा भूमिचर आदि अनेक रूप वाला होता है। वैक्रियशरीर दो तरह का होता है–औपपातिक और लब्धिप्रत्यय। उपपातजन्म वाले देव और नैरयिक के औपपातिक वैक्रियशरीर होता है। मनुष्य और तिर्यंच के लब्धिप्रत्यय वैक्रियशरीर होता है। विशिष्ट लब्धि वाले चौदह पूर्वधारी विशेष प्रयोजन उत्पन्न होने पर केवली भगवान के पास भेजने के लिये स्फाटिक के समान निर्मल जिस शरीर को बनाते हैं, उसे आहारकशरीर कहते हैं। प्राणीदया, ऋद्धिदर्शन, विशिष्ट पदार्थ समझना एवं संशयनिवारण, ये विशिष्ट प्रयोजन हैं। तैजसपुद्गलों का विकार तैजसशरीर है। उष्णता इस शरीर का चिन्ह है। तैजसशरीर आहार को पचाता है। तैजसलब्धि का निमित्त भी यही शरीर है। आत्मप्रदेशों के साथ क्षीर–

हो जाता है। मनयोगी और वचनयोगी की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। काययोगी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) की। अयोगी में सादि– अपर्यवसित भंग पाया जाता है।

अन्तर–सयोगी और अयोगी का अन्तर नहीं है। मनयोगी, वचनयोगी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का। काययोगी का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृट अंतर्मुहूर्त का।

६ वेदद्वार–सवेदी तीन तरह के होते हैं–अनादि–अपर्यवसित, अनादि–सपर्यवसित, सादि–सपर्यवसित। जो कभी भी उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी नहीं करेगा, वह अनादि–अपर्यवसित है। जो उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी करेगा, वह अनादि–सपर्यवसित है। जो उपशमश्रेणी कर अवेदक होता है और फिर उपशमश्रेणी से गिरकर सवेदक होता है, वह सादि–सपर्यवसित है। सादि–सपर्यवसित सवेदी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन अद्धपुद्‌गलपरावर्तन की। स्त्रीवेद की कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट पांच प्रकार की (१) ११० पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व अधिक (दूसरे देवलोक की अपरिग्रहीता देवी की अपेक्षा), (२) सौ पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व अधिक (पहले देवलोक की अपरिग्रहीता देवी की अपेक्ष), (३) अठारह पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व अधिक (दूसरे देवलोक की परिग्रहीता देवी की अपेक्षा), (४) चौदह पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व अधिक (पहले देवलोक की परिग्रहीता देवी की अपेक्षा), (५) प्रत्येक पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व अधिक (मनुष्यस्त्री और तिर्यंचस्त्री की अपेक्षा)। पुरुषवेद की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट प्रत्येक सौ सागरोपम से कुछ अधिक। नपुंसकवेद की कायस्थिति जघन्य एक समय की,

नीर की तरह मिले हुए कर्म ही कार्मणशरीर हैं। यह शरीर आठ कर्मों से बना हुआ है एवं सभी शरीरों का कारण है।

(३) स्वामीद्वार–औदारिकशरीर के स्वामी मनुष्य और तिर्यंच हैं, नैरयिक और देव वैक्रियशरीर के स्वामी हैं। चौदह पूर्वधारी लब्धिधारी मुनिराज आहारकशरीर के स्वामी होते हैं। तैजस और कार्मण शरीर के स्वामी चारों ही गति के जीव होते हैं।

(४) संस्थानद्वार–औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर में छहों संस्थान पाये जाते हैं। वैक्रियशरीर में समचतुरस्र (समचउरंस) और हुंडक, ये दो संस्थान पाये जाते हैं। आहारकशरीर में एक समचतुरस्र संस्थान पाया जाता है।

(५) अवगाहनद्वार–औदारिकशरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट एक हजार योजन से कुछ अधिक, कमल की अपेक्षा। वैक्रियशरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट एक लाख योजन से कुछ अधिक उत्तरवैक्रिय की अपेक्षा। आहारकशरीर की अवगाहना जघन्य कुछ कम एक हाथ (मुंड हाथ) की, उत्कृष्ट एक हाथ की। तैजस कार्मण शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट लोकान्त से लोकान्त तक अर्थात् सम्पूर्ण लोक प्रमाण।

(६) शरीरसंयोगद्वार–औदारिकशरीर में वैक्रियशरीर और आहारकशरीर की भजना है अर्थात् औदारिकशरीर के साथ वैक्रियशरीर कभी होता है, कभी नहीं होता तथा औदारिकशरीर के साथ आहारकशरीर भी कभी होता है, कभी नहीं होता। औदारिकशरीर के साथ तैजस कार्मण शरीर नियमपूर्वक होते हैं। वैक्रियशरीर में औदारिकशरीर की भजना है, वैक्रियशरीर में आहारकशरीर नही होता तथा वैक्रियशरीर में तैजस कार्मण शरीर नियमपूर्वक होते हैं। आहारकशरीर में औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर नियमपूर्वक

होते हैं। आहारकशरीर में वैक्रियशरीर नहीं होता। तैजस शरीर में कार्मणशरीर नियमपूर्वक होता है। औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर की भजना है। कार्मणशरीर में तैजसशरीर नियमपूर्वक होता है, औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर की भजना है।

(७) द्रव्यार्थ की अपेक्षा (दव्वट्ठयाए) अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े आहारकशरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा, उससे वैक्रियशरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा असंख्यातगुणा, उससे औदारिकशरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा असंख्यातगुणा, उससे तैजस कार्मण शरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा अनन्तगुणा हैं, परस्पर तुल्य हैं। यहां द्रव्यार्थ का आशय शरीर रूप द्रव्य की संख्या से है।

(८) प्रदेशार्थ की अपेक्षा (पएसट्ठयाए) अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े आहारकशरीर प्रदेश की अपेक्षा,उससे वैक्रियशरीर प्रदेश की उपेक्षा असंख्यातगुणा, उससे औदारिकशरीर प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, उससे तैजस शरीर प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणा, उससे कार्मणशरीर प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणा।

(९) द्रव्यार्थ प्रदेशार्थ शामिल की अपेक्षा अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोड़े आहारकशरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा, उससे वैक्रियशरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा असंख्यातगुणा, उससे औदारिकशरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा असंख्यातगुणा, उससे आहारकशरीर प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणा, उससे वैक्रियशरीर प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, उससे औदारिकशरीर प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा, उससे तैजस कार्मण शरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा अनन्तगुणा परस्पर तुल्य, उससे तैजस शरीर प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणा, उससे कार्मणशरीर प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणा।

(१०) सूक्ष्मबादरद्वार—सबसे सूक्ष्म पुद्गल कार्मण शरीर के, उसकी अपेक्षा तैजसशरीर के बादर, उसकी अपेक्षा आहारकशरीर

तथा छह और एक कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके नौ भंग होते है–१. सभी सात, आठ कर्म बांधने वाले, २. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ३. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ४. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, ५. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, ६. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, ७. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, ८. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, ९. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत। पांच स्थावर और मनुष्य के सिवाय नैरयिक आदि अठारह दंडक के बहुत जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदते हुए सात, आठ कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग कहना। पांच स्थावर के बहुत जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदते हुए सात, आठ कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले बहुत हैं और आठ कर्म बांधने वाले भी बहुत हैं। बहुत मनुष्य ज्ञानावरणीयकर्म वेदते हुए सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, आठ, छह और एक कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके २७ भंग होते हैं – असंयोगी एक, दो संयोगी छह, तीन संयोगी बारह और चार संयोगी आठ। १. सभी सात कर्म बांधने वाले, २. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, ३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, ४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, ७. सात

के बादर, उसकी अपेक्षा वैक्रियशरीर के बादर, उसकी अपेक्षा औदारिकशरीर के बादर। सबसे बादर पुद्‌गल औदारिकशरीर के, उसकी अपेक्षा वैक्रियशरीर के सूक्ष्म, उसकी अपेक्षा आहारकशरीर के सूक्ष्म, उसकी अपेक्षा तैजस शरीर के सूक्ष्म और उसकी अपेक्षा कार्मणशरीर के सूक्ष्म हैं।

(११) अवगाहना का अल्पबहुत्वद्वार–सबसे थोड़ी औदारिकशरीर की जघन्य अवगाहना, उससे तैजस कार्मण शरीर की जघन्य अवगाहना विशेषाधिक, उससे वैक्रियशरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, उससे आहारकशरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, उससे आहारकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, उससे औदारिकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी, उससे वैक्रियशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी, उससे तैजस कार्मण शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी परस्पर तुल्य।

(१२) प्रयोजनद्वार–औदारिकशरीर का प्रयोजन–तीर्थंकर, गणधर के शरीर की अपेक्षा औदारिकशरीर प्रधान कहा गया है। तीर्थंकर, गणधर के शरीर की अपेक्षा दूसरे शरीर अनन्तगुणा हीन होते हैं। इस औदारिकशरीर से तीर्थंकर, गणधर एवं अन्य चरमशरीरी आठ कर्म क्षय कर सिद्धगति प्राप्त करते हैं। वैक्रियशरीर का प्रयोजन अच्छे–बुरे अनेक प्रकार के रूप बनाना है। विशिष्ट प्रकार के बोध, संशय–निवारण आदि प्रयोजन से विशिष्ट आहारक लब्धिधारी चौदह पूर्वधर केवली भगवान् के पास भेजने के लिये आहारकशरीर बनाते हैं, जो एक हाथ प्रमाण होता है। केवली भगवान् के पास भेजा हुआ आहारकशरीर जहां केवली भगवान् विराजते हैं, वहां जाता है। यदि केवली भगवान् वहां से विहार कर गये हों तो आहारकशरीर में से उससे कुछ छोटा यानी मुंड हाथ

कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत , (तीन संयोगी ३११, * ३१३, ३३१, ३३३) ८. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक ९. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, १०. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ११. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, १२. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, १३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, १४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, १५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, १६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, १७. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, १८. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, १९. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत। (चार संयोगी ३१११, ३११३, ३१३१, ३१३३, ३३११, ३३१३, ३३३१, ३३३३) २०. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, २१. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, २२. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, २३.

---

* जहां ३ का अंक है वहां बहुत और १ का अंक है वहां एक कहना।

प्रमाण शरीर निकलता है, वह जहां केवली भगवान् पधारे हैं वहां जाता है। केवली भगवान् के समीप प्रयोजन सिद्ध कर वह छोटा शरीर लौट कर मूल एक हाथ वाले आहारक शरीर में प्रवेश करता है, मूल आहारकशरीर आकर मुनिराज के शरीर में प्रवेश करता है। मुनिराज ने जिस प्रयोजन से आहारकशरीर बना केवली भगवान् के पास भेजा था, उनका वह प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। प्रश्नकर्त्ता सामने हो ते मुनिराज उसका समाधान करते हैं। तैजसशरीर का प्रयोजन आहार पचाना है। तैजसलब्धि का प्रयोग भी तैजसशरीर द्वारा ही होता है। कार्मणशरीर आठ कर्मों का खजाना रूप है। यह शरीर जीव को चारों गतियों में भ्रमण कराता है।

(१३) विषयद्वार–औदारिकशरीर का विषय रुचक द्वीप तक, वैक्रियशरीर का विषय असंख्यात द्वीप, समुद्र तक, आहारकशरीर का विषय ढ़ाई द्वीप तक तथा तैजस कार्मण शरीर का विषय (केवलीसमुद्घात की अपेक्षा) चौदह राजू लोकप्रमाण है।

(१४) स्थितिद्वार–औदारिकशरीर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की (युगलिया की अपेक्षा)। वैक्रियशरीर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की। आहारकशरीर की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। तैजस कार्मण शरीर की स्थिति के दो भंग होते हैं–अनादि–अपर्यवसित और अनादि–सपर्यवसित (अनादि–सान्त)।

(१५) अन्तरद्वार–औदारिकशरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम का। वैक्रियशरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल का। आहारकशरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का। तैजस कार्मण शरीर का अन्तर नहीं होता, ये दोनों शरीर संसारी जीव के सदा रहते हैं।

सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, २४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, २५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, २६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, २७. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत ९+५४+२७=९० भंग हुए।

ज्ञानावरणीयकर्म की तरह दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म कहना। ९०+९०=१८० भंग हुए।

समुच्चय एक जीव वेदनीयकर्म वेदता हुआ सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधता है अथवा अबन्ध यानी कोई कर्म नहीं बांधता। इसी तरह मनुष्य कहना। शेष नैरयिक आदि २३ दंडक का एक-एक जीव वेदनीयकर्म वेदता हुआ सात या आठ कर्म बांधता है। समुच्चय बहुत जीव वेदनीयकर्म वेदते हुए सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधते हैं या अबन्ध होते हैं। इनमें सात, आठ और एक कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, छह कर्म बांधने वाले और अबन्ध अशाश्वत हैं। इनके नौ भंग होते हैं – असंयोगी एक, दो संयोगी चार, तीन संयोगी चार। १. सभी सात, आठ और एक कर्म बांधने वाले, २. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ३. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ४. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्ध एक, ५. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्ध बहुत, ६. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने

१२. मारणान्तिकसमुद्घात का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २१ वां पद)

मारणान्तिकसमुद्घात में तैजस शरीर की कितनी अवगाहना होती है, यह इस थोकड़े में बताया जाएगा। मारणान्तिकसमुद्घात में तैजसशरीर का विष्कंभ (विस्तार) और बाहल्य (स्थूलता) शरीर प्रमाण रहता है। तैजस शरीर का आयाम (लम्बाई) जीवों में पृथक्–पृथक् है, जो इस प्रकार है–

(१) नैरयिक मारणान्तिकसमुद्घात करे तो जघन्य एक हजार योजन से कुछ अधिक, उत्कृष्ट नीचे सातवीं नरक* तक, तिर्छे स्वयंभूरमणसमुद्र तक और ऊपर मेरु पर्वत के पंडगवन की बावड़ियों तक।

(२) भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक के देवता मारणान्तिकसमुद्घात करें तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट नीचे तीसरी नारकी+ के चरमान्त तक, तिर्छे स्वयंभूरमणसमुद्र की बाह्यवेदिका (पद्मवरवेदिका) के चरमान्त तक और ऊपर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी (सिद्धशिला) तक।

(३) तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक के देवता मारणान्तिकसमुद्घात करें तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट नीचे करें तो पातालकलशों के दूसरे त्रिभाग (२/३)

---

* नैरयिक नीचे समुद्घात नहीं करता है, किन्तु सातवीं नारकी का नैरयिक अपने स्थान से समुद्घात करता है, इस अपेक्षा से नीचे की समुद्घात कही है।

+भवनपति से दूसरे देवलोक तक के देवता कारणवश तीसरी नारकी के चरमान्त तक जावें और वहां काल कर जायें, इस अपेक्षा से इन देवों की नीचे की समुद्घात कही है।

एक, अबन्ध एक, ७. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, अबन्ध बहुत, ८. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्ध एक, ९. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्ध बहुत।

पांच स्थावर और मनुष्य के सिवाय नैरयिकादि १८ दंडक के बहुत जीव वेदनीयकर्म वेदते हुए सात, आठ कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन–तीन भंग होते हैं। १८×३=५४ भंग हुए। पांच स्थावर के बहुत जीव वेदनीयकर्म वेदते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं। भंग नहीं होता। बहुत मनुष्य वेदनीयकर्म वेदते हुए सात, आठ, छह और एक कर्म बांधते है या अबन्ध होते हैं। सात और एक कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ व छह कर्म बांधने वाले तथा अबन्ध अशाश्वत हैं। इनके २७ भंग होते हैं–असंयोगी एक, दो संयोगी ६. तीन संयोगी १२ और चार संयोगी ८। ज्ञानावरणीयकर्म में २७ भंग कहे हैं, उसी तरह ये भंग कहना। ९+५४+२७=९० भंग हुए। वेदनीयकर्म की तरह आयु, नाम और गोत्र कर्म कहना। इनके ९०+९०+९०=२७० भंग हुए।

समुच्चय एक जीव मोहनीयकर्म वेदता हुआ सात, आठ या छह कर्म बांधता है। इसी तरह मनुष्य कहना। नैरयिक आदि तेईस दंडक का एक–एक जीव मोहनीयकर्म वेदता हुआ सात या आठ कर्म बांधता है। समुच्चय बहुत जीव मोहनीयकर्म वेदते हुए सात, आठ और छह कर्म बांधते हैं। सात आठ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और छह कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग कहना। पांच स्थावर के बहुत जीव मोहनीयकर्म वेदते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं। भंग नहीं होता। पांच स्थावर और मनुष्य के सिवाय शेष

तक, तिर्छे स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त, ऊपर बारहवें देवलोक × तक।

(४) नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें देवलोक के देवता मारणान्तिकसमुद्घात करें तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट नीचे अधोलोक के ग्राम (सलिलावतीविजय) तक, तिर्छे मनुष्यक्षेत्र (ढ़ाई द्वीप) तक तथा ऊपर बारहवें * देवलोक तक किन्तु बारहवें देवलोक के देवता के लिये ऊपर अपने विमान तक कहना।

(५) नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तरविमान के देवता मारणान्तिकसमुद्घात करें तो जघन्य विद्याधरों की श्रेणी तक, उत्कृष्ट नीचे अधोलोक के ग्राम सलिलावतीविजय तक, तिर्छे मनुष्यक्षेत्र तक और ऊपर अपने-अपने विमान + तक।

(६) पांच स्थावर मारणान्तिकसमुद्घात करें तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट लोकान्त से लोकान्त तक अर्थात् ऊपर करें तो चौदह राजू तक, नीचे करें तो चोदह राजू तक और तिर्छे करें तो एक राजू तक।

(७) तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यचपंचेन्द्रिय मारणान्तिक-समुद्घात करें तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट

× तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक के देवता ऊपर समुद्घात नहीं करते। किन्तु यदि कोई दूसरा ऊपर का देवता उन्हें ऊपर के देवलोक यावत् बारहवें देवलोक तक ले जावे और वहां उस देवता की आयु पूरी हो जाय, इस अपेक्षा से इनकी ऊपर की समुद्घात कही है।

* नवें से ग्यारहवें देवलोक के देवता कारणवश ऊपर बारहवें देवलोक तक जावें और वहां काल कर जायें, इस अपेक्षा से इनकी ऊपर की समुद्घात बारहवें देवलोक तक कही है।

+ नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तरविमान के देवता जहां रहते हैं, वहीं काल करते हैं, इस अपेक्षा से मारणान्तिकसमुद्घात अपने-अपने विमान तक कही है,

अठारह दंडक के जीव मोहनीयकर्म वेदते हुए सात, आठ कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन–तीन भंग कहना। बहुत मनुष्य मोहनीयकर्म वेदते हुए सात, आठ, छह कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ व छह कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके नौ भंग होते हैं– असंयोगी एक, दो संयोगी चार, तीन संयोगी चार। कुल ३+५४+९=६६ भंग हुए।

समुच्चय जीव में मोहनीयकर्म छोड़ कर सात कर्मों के ९–९ भंग होते हैं। इनके ७×९=६३ भंग हुए। मोहनीयकर्म के ३ भंग होते हैं। इस तरह समुच्चय जीव के ६३+३=६६ भंग हुए।

पांच स्थावर में भंग नहीं होते। पांच स्थावर और मनुष्य के सिवाय शेष १८ दण्डक के एक–एक कर्म के तीन–तीन भंग होते हैं। इनके १८×३=५४ भंग हुए। इनको ८ कर्मों से गुणा करने से ५४×८=४३२ भंग हुए।

मनुष्य में मोहनीयकर्म के नौ भंग होते हैं और शेष सात कर्मों के २७–२७ भंग होते हैं। २७×७=१८९। सात कर्म के और मोहनीय के ९, कुल १८९+९=१९८ भंग हुए।

कुल भंग ६६+४३२+१९८=६९६ भंग हुए।

१६. कर्म वेदते हुए वेदने का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २७ वां पद)

जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्म विशेष को वेदता हुआ कितने कर्म वेदता है, यह इस थोकड़े में बताया जायेगा।

प्रश्न–समुच्चय एक जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदता हुआ कितने कर्म वेदता है?

उत्तर–समुच्चय एक जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदता हुआ

तिर्यक्लोक से लोकान्त तक अर्थात् नीचे सात राजू, ऊपर सात राजू और तिर्छे एक राजू एक।

(८) मनुष्य मारणान्तिकसमुद्घात करे तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) से लोकान्त तक अर्थात् तिर्छे आधे राजू तक, ऊपर सात राजू से कुछ कम और नीचे सात राजू से कुछ अधिक।

१३. कर्म बांधते हुए बांधने का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २४ वां पद)

इस थोकड़े में यह बताया जायेगा कि एक कर्मप्रकृति को बांधते हुए जीव दूसरी कितनी कर्मप्रकृतियां बांधता है।

प्रश्न–समुच्चय एक जीव ज्ञानावरणीयकर्म बांधता हुआ कितनी कर्मप्रकृतियां बांधता है?

उत्तर – समुच्चय एक जीव ज्ञानावरणीयकर्म बांधता हुआ सात, आठ अथवा छह कर्मप्रकृतियां बांधता है। इसी तरह मनुष्य भी ज्ञानावरणीयकर्म बांधता हुआ ७, ८ अथवा ६ कर्मप्रकृतियां बांधता है। शेष नारकादि २३ दंडक वाले ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हुए सात अथवा आठ कर्म बांधते हैं। समुच्चय बहुत से जीव ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हुए सात, आठ अथवा छह कर्म बांधते हैं। सात, आठ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और छह कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते हैं– १. सभी सात, आठ कर्म बांधने वाले, २. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ३. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत। नरक के बहुत नैरयिक ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हुए सात अथवा आठ कर्म बांधते हैं, सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते है– १. सभी

सात कर्म या आठ कर्म वेदता है। इसी तरह एक मनुष्य भी ज्ञानावरणीयकर्म वेदता हुआ सात अथवा आठ कर्म वेदता है। नैरयिक आदि २३ दंडक का एक–एक जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदते हुए नियमपूर्वक आठ कर्म वेदते हैं। समुच्चय बहुत जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदते हुए आठ कर्म या सात कर्म वेदते हैं। आठ कर्म वेदने वाले शाश्वत हैं और सात कर्म वेदने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते हैं। मनुष्य के सिवाय २३ दंडक के बहुत जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदते हुए नियमपूर्वक आठ कर्म वेदते हैं। समुच्चय बहुत जीव की तरह बहुत मनुष्य कहना। ३+३=६ भंग हुए। ज्ञानावरणीयकर्म की तरह दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म कहना, ६+६=१२ भंग हुए।

प्रश्न–समुच्चय एक जीव वेदनीयकर्म वेदता हुआ कितने कर्म वेदता है।

उत्तर–समुच्चय एक जीव वेदनीयकर्म वेदता हुआ आठ कर्म वेदता है, सात कर्म वेदता है और चार कर्म वेदता हैं। इसी तरह एक मनुष्य का कहना। नैरयिक आदि २३ दण्डक एक जीव की अपेक्षा नियमपूर्वक आठ कर्म वेदते हैं। समुच्चय बहुत जीव वेदनीयकर्म वेदते हुए आठ कर्म वेदते हैं, सात कर्म वेदते हैं और चार कर्म वेदते हैं। आठ और चार कर्म वेदने वाले शाश्वत हैं और सात कर्म वेदने वाले अशाश्वत हैं। इसके तीन भंग होते हैं। इसी तरह बहुत मनुष्य भी कहना। नैरयिक आदि २३ दंडक के बहुत जीव वेदनीयकर्म वेदते हुए नियमपूर्वक आठ कर्म वेदते हैं। ३+३=६ भंग हुए। वेदनीयकर्म की तरह आयु, नाम और गोत्र कर्म कहना। ६+६+६=१८ भंग हुए।

समुच्चय एक जीव तथा बहुत जीव मोहनीयकर्म वेदते हुए नियमपूर्वक आठ कर्म वेदते हैं। इसी तरह नैरयिक आदि २४ दंडक के एक जीव और बहुत जीव मोहनीयकर्म वेदते हुए नियमपूर्वक आठ

सात कर्म बांधने वाले, २. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, ३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत। इसी तरह तीन विकलेन्द्रिय के तीन दंडक, तिर्यंचपंचेन्द्रिय का एक दंडक और देवता के १३ दंडक = १७ दंडक कहना। १८×३=५४ भंग हुए। पांच स्थावर के बहुत से जीव ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं। बहुत से मनुष्य ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हुए सात, आठ अथवा छह कर्मप्रकृति बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, आठ और छह कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके नौ भंग होते हैं– असंयोगी १, दो संयोगी ४ और तीन संयोगी ४। १ सभी सात कर्म बांधने वाले, २. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, ३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, ४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, ७. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ८. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ९. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत।

समुच्चय जीव के तीन भंग, १८ दंडक के चौपन भंग और मनुष्य के नौ भंग, इस प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म के ६६ भंग होते हैं। ज्ञानावरणीयकर्म की तरह दर्शनावरणीयकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म और अन्तरायकर्म कहना। ६६×५=३३० भंग हुए।

प्रश्न – समुच्चय एक जीव वेदनीयकर्म बांधता हुआ कितने कर्म बांधता है? उत्तर – समुच्चय एक जीव वेदनीयकर्म बांधता हुआ

कर्म वेदते हैं।

सात कर्म के समुच्चय जीव और मनुष्य के छह, छह भंग होते हैं। अतः ७×६=४२ भंग हुए।

कर्म बांधते हुए बांधने के ४५३ भंग, बांधते हुए वेदने के छह भंग, वेदते हुए बांधने के ६९६ भंग और वेदते हुए वेदने के ४२ भंग। कुल ४५३+६+६९६+४२=११९७ भंग हुए।

समुच्चय जीव का एक बोल और २४ दण्डक के चौबीस बोल, ये पच्चीस बोल हुए। आठकर्म के २५×८=२०० बोल हुए। कर्म बांधते हुए बांधने के २०० बोल, कर्म बांधते हुए वेदने के २०० बोल, कर्म वेदते हुए बांधने के २०० बोल और कर्म वेदते हुए वेदने के २०० बोल, कुल ८०० बोल हुए।

इन चारों थोकड़ों को ८०० बोल की बंधी का थोकड़ा भी कहते हैं।

१७. ज्ञानलब्धि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवां उद्देशा दूसरा)

गाथा – जीव गइ इंदिय काए. सुहुम पज्जत्ति भवत्थे य।
भवसिद्धिए य सण्णी, लद्धी उवओग जोगे य ॥ १ ॥
लेस्सा कसाय वेए, आहारे णाणगोयरे।
काले अंतर अप्पाबहुयं, पज्जवा चेव दाराइं ॥ २ ॥

जीव में ज्ञान–अज्ञान–आश्रित नियमा भजना के २१ द्वार– १ जीवद्वार, २. गतिद्वार, ३ इन्द्रियद्वार, ४ कायद्वार, ५ सूक्ष्मबादरद्वार, ६ पर्याप्तिद्वार, ७ भवत्थ (भवस्थ) द्वार, ८ भवसिद्धिद्वार, ९ सन्नी (संज्ञी) द्वार, १० लब्धिद्वार, ११ उपयोगद्वार, १२ योगद्वार, १३ लेश्याद्वार, १४ कषायद्वार, १५ वेदद्वार, १६ आहारद्वार, १७ ज्ञानगोचरद्वार, १८ कालद्वार, १९ अन्तरद्वार, २०

सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधता है। इसी तरह एक मनुष्य का कहना। शेष २३ दंडक का एक-एक जीव वेदनीयकर्म बांधता हुआ सात या आठ कर्म बांधता है। समुच्चय बहुत जीव वेदनीयकर्म बांधते हुए ७. ८, ६ अथवा १ कर्म बांधते है, ७, ८ और १ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और ६ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते हैं – १-सभी ७, ८, १ कर्म बांधने वाले, २-७, ८, १ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ३-७, ८, १ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत। नरक के बहुत नैरयिक वेदनीयकर्म बांधते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं। सात बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग पूर्ववत् कहना। इसी तरह तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और देवता के तेरह दंडक कहना। पांच स्थावर बहुत जीव वेदनीयकर्म बांधते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं। बहुत मनुष्य वेदनीयकर्म बांधते हुए ७, ८, ६ अथवा १ कर्म बांधते हैं। ७, १ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, ८ और ६ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके नौ भंग होते हैं – १ असंयोगी, ४ दो संयोगी, ४ तीन संयोगी। १. सभी सात और एक कर्म बांधने वाले, २. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, ३. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, ४. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ५. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ६. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, ७. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, ८. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, ९. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत,

अल्पबहुत्वद्वार, २१ पर्याय की अल्पाबोधद्वार।

(१) जीवद्वार–समुच्चय जीव में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। पहली नारकी, भवनपति और वाणव्यन्तर देवता में ३ ज्ञान की नियमा, ३ अज्ञान की भजना। दूसरी नारकी से सातवीं नारकी तक और ज्योतिषी से नवग्रैवेयक तक ३ ज्ञान, ३ अज्ञान की नियमा। पांच अनुत्तरविमान में ३ ज्ञान की नियमा। पांच स्थावर और असंज्ञी मनुष्य में २ अज्ञान की नियमा। तीन विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) और असंज्ञी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय में २ ज्ञान, २ अज्ञान की नियमा। संज्ञी तिर्यञ्च में ३ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। मनुष्य में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। सिद्ध भगवान् में केवलज्ञान की नियमा।

(२) गतिद्वार–+नरकगतिक और देवगतिक में ३ ज्ञान की नियमा, ३ अज्ञान की भजना। तिर्यंचगतिक में २ ज्ञान, २ अज्ञान की नियमा। मनुष्यगतिक में ३ ज्ञान की भजना, २ अज्ञान की नियमा। सिद्धगतिक में केवलज्ञान की नियमा।

(३) इन्द्रियद्वार–सइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। एकेन्द्रिय में २ अज्ञान की नियमा। तीन विकलेन्द्रिय में २ ज्ञान, २ अज्ञान की नियमा। अनिन्द्रिय में केवलज्ञान की नियमा।

(४) कायद्वार–सकायिक और त्रसकायिक में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय,

---

+नरकगति में जाता हुआ जीव जब तक अन्तराल–बीच में रहता है, उत्पत्तिस्थान में पहुंचा नहीं, तब तक उसको नरकगतिक (नरकगतिया) कहते हैं। इसी तरह देवगतिक, तिर्यंचगतिक और मनुष्यगतिक भी समझ लेना चाहिए।

आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत। वेदनीयकर्म के भी ६६ भंग हुए।

प्रश्न–समुच्चय एक जीव मोहनीयकर्म बांधता हुआ कितनी कर्मप्रकृतियां बांधता है?

उत्तर–समुच्चय एक जीव मोहनीयकर्म बांधता हुआ सात या आठ कर्म बांधता है। इसी तरह २४ दंडक कहना। समुच्चय बहुत जीव मोहनीयकर्म बांधते हुए सात कर्म भी बांधते हैं और आठ कर्म भी बांधते हैं। इसी तरह पांच स्थावर कहना। नरक के बहुत नैरयिक मोहनीयकर्म बांधने वाले सात या आठ कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग पूर्ववत् कहना। नैरयिक की तरह १८ दंडक कहना। १९×३=५७ भंग हुए।

प्रश्न–समुच्चय एक जीव तथा बहुत से जीव आयुकर्म बांधते हुए कितने कर्म बांधते हैं?

उत्तर–समुच्चय एक जीव तथा बहुत जीव आयु कर्म बांधते हुए आठ कर्म बांधते हैं। इसी तरह चौबीस दंडक कहना।

कुल–३३०+६६+५७=४५३ भंग हुए।

१४. कर्म बांधते हुए वेदने का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २५ वां पद)

इस थोकड़े में यह बताया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि एक–एक प्रकृति बांधता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियां वेदता है।

प्रश्न – समुच्चय एक जीव व समुच्चय बहुत जीव ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियां वेदते हैं?

उत्तर – आठों ही कर्मप्रकृतियां वेदते हैं। समुच्चय जीव की तरह नैरयिक आदि चौवीस दंडक कहना। वेदनीय के सिवाय शेष

वनस्पतिकाय में २ अज्ञान की नियमा। अकायिक में केवलज्ञान की नियमा।

(५) सूक्ष्मबादरद्वार–*सूक्ष्म में २ अज्ञान की नियमा। बादर में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। नोसूक्ष्म–नोबादर में केवलज्ञान की नियमा।

(६) पर्याप्तिद्वार–समुच्चय पर्याप्तकों में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। पहली नरक से नवग्रैवेयक तक के पर्याप्तकों में ३ ज्ञान, ३ अज्ञान की नियमा। पांच अनुत्तरविमान के पर्याप्तकों में ३ ज्ञान की नियमा। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और असंज्ञी तिर्यंच के पर्याप्तकों में २ अज्ञान की नियमा। संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्तकों में ३ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। मनुष्य के पर्याप्तकों में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। समुच्चय अपर्याप्तकों में ३ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। पहली नारकी, भवनपति और वाणव्यन्तर के अपर्याप्तकों में ३ ज्ञान की मियमा, ३ अज्ञान की भजना। दूसरी नारकी से छठी नारकी तक और ज्योतिषी से नवग्रैवेयक तक के अपर्याप्तकों में ३ ज्ञान, ३ अज्ञान की नियमा। सातवीं नारकी के अपर्याप्तकों में ३ अज्ञान की नियमा। पांच अनुत्तरविमान के अपर्याप्तकों में ३ ज्ञान की नियमा। पांच स्थावर और असंज्ञी मनुष्य के अपर्याप्तकों में २ अज्ञान की नियमा। तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच और संज्ञी तिर्यंच के अपर्याप्तकों में २ ज्ञान, २ अज्ञान की नियमा। संज्ञी मनुष्य के अपर्याप्तकों में ३ ज्ञान की भजना, २ अज्ञान की नियमा। नोपर्याप्तकों नोअपर्याप्तकों में केवलज्ञान की नियमा।

---

*जिसका शरीर किसी को रोके नहीं तथा स्वयं भी किसी से रुके नहीं, उसको सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म केवली के सिवाय छद्मस्थ को नहीं दिखता है।

छह कर्म भी ज्ञानावरणीय की तरह कहना।

प्रश्न – समुच्चय एक जीव वेदनीयकर्म बांधता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियां वेदता है?

उत्तर – आठ, सात या चार कर्म प्रकृतियां वेदता है। इसी तरह मनुष्य का दंडक कहना. नैरयिक आदि २३ दंडक के एक–एक जीव वेदनीयकर्म बांधते हुए आठों ही कर्म वेदते हैं। समुच्चय बहुत जीव वेदनीयकर्म बांधते हुए आठ, सात अथवा चार कर्मप्रकृतियां वेदते हैं। आठ और चार कर्मप्रकृतियां वेदने वाले शाश्वत हैं और सात कर्मप्रकृतियां वेदने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते हैं–१. सभी आठ व चार कर्म वेदने वाले, २. आठ व चार कर्म वेदने वाले बहुत, सात कर्म वेदने वाला एक, ३. आठ व चार कर्म वेदने वाले बहुत, सात कर्म वेदने वाले बहुत। इसी तरह मनुष्य का कहना। नैरयिक आदि तेईस दंडक के बहुत जीव वेदनीयकर्म बांधते हुए आठ कर्म वेदते हैं। कुल छह भंग हुए।

१५. कर्म वेदते हुए बांधने का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २६ वां पद)

इस थोकड़े में यह बताया गया है कि एक कर्म वेदता हुआ जीव कितने कर्म बांधता है।

प्रश्न – समुच्चय एक जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदता हुआ कितने कर्म बांधता है?

उत्तर – सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधता है। इसी तरह मनुष्य का कहना। नैरयिक आदि तेईस दंडक का एक–एक जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं। समुच्चय बहुत जीव ज्ञानावरणीयकर्म वेदते हुए सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधते हैं। सात, आठ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं

(७) * भवत्था (भवस्थ) द्वार–नारक–भवस्थ और देव–भवस्थ में ३ ज्ञान की नियमा, ३ अज्ञान की भजना। तिर्यंच–भवस्थ में ३ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। मनुष्य–भवस्थ में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। अभवस्थ (सिद्ध भगवान्) में केवलज्ञान की नियमा।

(८) भवसिद्धयाद्वार–भवसिद्धिया (भव्य) में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। अभवसिद्धिया (अभव्य) में ३ अज्ञान की भजना। नोभवसिद्धिया–नोअभवसिद्धिया (सिद्ध भगवान्) में केवलज्ञान की नियमा।

(९) संज्ञी (सन्नी) द्वार–संज्ञी में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। असंज्ञी में २ ज्ञान, २ अज्ञान की नियमा। नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी (सिद्धभगवान् और तेरहवें चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव) में केवलज्ञान की नियमा।

(१०) लब्धिद्वार–लब्धि के १०भेद हैं–1 ज्ञानलब्धि, २दर्शनलब्धि, ३ चारित्रलब्धि,४ चारित्राचारित्रलब्धि (देशविरतिचारित्रलब्धि), ५ दानलब्धि, ६लाभलब्धि,७ भोगलब्धि, ८ उपभोगलब्धि,१९ वीर्यलब्धि, १० इन्द्रियलब्धि।

ज्ञानलब्धि–ज्ञान के ५ भेद–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान। अज्ञान के ३ भेद–मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान, विभंगज्ञान। समुच्चय ज्ञानलद्धिया में ५ ज्ञान की भजना। तस्स (उनके) अलद्धिया (ज्ञान के अलद्धिया) में ३ अज्ञान की भजना। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के लद्धिया में ४ ज्ञान की भजना, तस्स अलद्धिया (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के अलद्धिया) में ३ अज्ञान की भजना, केवलज्ञान की नियमा। अवधिज्ञानलद्धिया और मनःपर्ययज्ञान के लद्धिया में ४ ज्ञान की भजना, तस्स अलद्धिया

---

*जो जीव मर कर अपने उत्पत्तिस्थान में जाकर उत्पन्न हो चुका है, उसे भवस्थ कहते हैं। जैसे नरक में रहा हुआ जीव नरकभवस्थ कहलाता है। इसी तरह तिर्यंचभवस्थ, मनुष्यभवस्थ, देवभवस्थ भी समझ लेना चाहिए।

(अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान के अलद्धिया) में ४ ज्ञान,३ अज्ञान की भजना। केवलज्ञानलद्धिया में केवलज्ञान की नियमा, तस्स अलद्धिया (केवलज्ञान के अलद्धिया) में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना।समुच्चय अज्ञान और मति–अज्ञान श्रुत–अज्ञान के लद्धिया में ३ अज्ञान की भजना, तस्स अलद्धिया (समुच्चय अज्ञान, मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान के अलद्धिया) में ५ ज्ञान की भजना। विभंगज्ञान के लद्धिया में ३ अज्ञान की नियमा, तस्स अलद्धिया (विभंगज्ञान के अलद्धिया) में ५ज्ञान की भजना,२अज्ञान की नियमा।

दर्शनलब्धि–दर्शन के ३ भेद– सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन, सम्यग्मिथ्यादर्शन (मिश्रदर्शन)।समुच्चय दर्शन में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना।तस्स (उनका) अलद्धिया (समुच्चय दर्शन का अलद्धिया) कोई जीव नहीं।सम्यग्दर्शन का लद्धिया में ५ ज्ञान की भजना, तस्स अलद्धिया (सम्यग्दर्शन के अलद्धिया) में ३ अज्ञान की भजना। मिथ्यादर्शनलद्धिया और मिश्रदर्शन– लद्धिया में ३ अज्ञान की भजना।तस्स अलद्धिया (मिथ्यादर्शन का अलद्धिया और मिश्रदर्शन का अलद्धिया) में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना।

चारित्रलब्धि – चारित्र के ५ भेद–सामायिकचारित्र, छेदोपस्थापनीयचारित्र, परिहारविशुद्धिचारित्र, सूक्ष्मसम्पराय चारित्र, यथाख्यातचारित्र। समुच्चय चारित्रलद्धिया में ५ ज्ञान की भजना, तस्स अलद्धिया में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। सामायिकचारित्रलद्धिया, छेदोपस्थापनीयचारित्रलद्धिया, परिहारविशुद्धि चारित्रलद्धिया, सूक्ष्मसम्परायचारित्रलद्धिया में ४ ज्ञान की भजना।तस्स अलद्धिया (सामायिकचारित्र का अलद्धिया, छेदोपस्थापनीयचारित्र का अलद्धिया, परिहारविशुद्धिचारित्र का अलद्धिया,सूक्ष्मसम्परायचारित्र का अलद्धिया) में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। यथाख्यातचारित्रलद्धिया में ५ ज्ञान की भजना। तस्स

पदवी पाते हैं और छठी नरक से निकले हुए ग्यारह में से साधु के सिवाय दस पदवी पाते हैं। सातवीं नरक से निकले हुए अश्वरत्न, हस्तीरत्न और सम्यग्दृष्टि ये तीन पदवी पाते हैं। भवनपति, व्यन्तर और ज्योतिषी से निकले हुए तीर्थंकर और वासुदेव के सिवाय इक्कीस पदवी पाते हैं। पहले दूसरे देवलोक से निकले हुए तेईस ही पदवियां पाते हैं। तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक के निकले हुए सात एकेन्द्रिय रत्न के सिवाय सोलह पदवी पाते हैं। नवें देवलोक से नवग्रैवेयक तक के निकले हुए इन सोलह में से अश्वरत्न हस्तीरत्न के सिवाय चौदह पदवी पाते हैं। पांच अनुत्तरविमान से निकले हुए वासुदेव के सिवाय आठ बड़ी पदवी पाते हैं। पृथ्वी, पानी, वनस्पति, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और संज्ञी मनुष्य से निकले हुए तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव के सिवाय उन्नीस पदवी पाते हैं। तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य से निकले हुए इन उन्नीस में से केवलज्ञानी के सिवाय अठारह पदवी पाते हैं। अग्नि और वायु से निकले हुए सात एकेन्द्रियरत्न, अश्वरत्न और हस्तीरत्न, ये नौ पदवी पाते हैं।

६ गतिद्वार – सात पंचेन्द्रिय रत्न, चक्रवर्ती, वासुदेव, सम्यग्दृष्टि और मांडलिकराजा – ये ग्यारह पदवी वाले पहली से चौथी नरक तक जाते हैं। इन ग्यारह में से अश्वरत्न और हस्तीरत्न के सिवाय शेष नौ पदवी वाले पांचवीं, छठी नरक तक जाते हैं। इन नौ में से श्रीदेवी और सम्यग्दृष्टि को छोड़ कर शेष सात पदवी वाले सातवीं नरक में जाते हैं। श्रीदेवी के सिवाय छह पंचेन्द्रिय रत्न, साधु, श्रावक, मांडलिकराजा और सम्यग्दृष्टि, ये दस पदवी वाले भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले देवलोक से आठवें देवलोक में जाते हैं। उक्त दस में से अश्वरत्न और हस्तीरत्न के सिवाय शेष आठ पदवी वाले नवें से बारहवें देवलोक तक जाते हैं। सम्यग्दृष्टि

अलद्धिया (यथाख्यातचारित्र का अलद्धिया) में ५ ज्ञान,३ अज्ञान की भजना। चारित्राचारित्रलद्धिया में ३ ज्ञान की भजना। तस्स अलद्धिया चारित्राचारित्र का अलद्धिया) में ५ ज्ञान ३ अज्ञान की भजना।

दानलद्धिया, लाभलद्धिया, भोगलद्धिया, उपभोगलद्धिया, वीर्यलद्धिया में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। तस्स अलद्धिया (दान-अलद्धिया, लाभ-अलद्धिया-भोग अलद्धिया, उपभोग-अलद्धिया, वीर्य-अलद्धिया) में केवलज्ञान की नियमा। बोलवीर्यलद्धिया में ३ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। तस्स अलद्धिया (बालवीर्य का अलद्धिया) में ५ ज्ञान की भजना। बालपण्डितवीर्यलद्धिया में ३ ज्ञान की भजना। तस्स अलद्धिया (बालपण्डितवीर्य का अलद्धिया) में ५ ज्ञान,३ अज्ञान की भजना। पण्डितवीर्यलद्धिया में ५ ज्ञान की भजना। तस्स अलद्धिया (पण्डितवीर्य का अलद्धिया) में ४ज्ञान,३ अज्ञान कीभजना।

इन्द्रियलब्धि – इन्द्रियाँ ५ श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुंरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय। रसेन्द्रिय लद्धिया में और स्पर्शेन्द्रिय लद्धिया में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। तस्स अलद्धिया (समुच्चय इन्द्रिय का अलद्धिया और स्पर्शेन्द्रिय का अलद्धिया) में केवलज्ञान की नियमा। श्रोत्रेन्द्रियलद्धिया, चक्षुरिन्द्रियलद्धिया और घ्राणेन्द्रियलद्धिया में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। तस्स अलद्धिया (श्रोत्रेन्द्रिय का अलद्धिया, चक्षुरिन्द्रिय का अलद्धिया, घ्राणेन्द्रिय का अलद्धिया) में २ ज्ञान, २ अज्ञान और केवलज्ञान की नियमा। रसेन्द्रियलद्धिया में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। तस्स अलद्धिया (रसेन्द्रिय के अलद्धिया) में केवलज्ञान की नियमा, २ अज्ञान की नियमा।

(११) उपयोगद्वार – * सागारोवउत्ता, अणागारोवउत्ता में

---

* सागारोवउत्ता (साकार-उपयोग) ज्ञान। अणागारोवउत्ता (अनाकार-उपयोग) दर्शन।

और साधु, ये दो पदवी वाले नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान में जाते हैं। सात एकेन्द्रिय रत्न, श्रीदेवी के सिवाय छह पंचेन्द्रिय रत्न और मांडलिकराजा, ये चौदह पदवी वाले पांच स्थावर और असंज्ञी मनुष्य में जाते हैं। उक्त चौदह और सम्यग्दृष्टि, ये पन्द्रह पदवी वाले तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और संज्ञी मनुष्य में जाते हैं।

७ प्राप्तिद्वार – नरक और देवता में एक सम्यग्दृष्टि पदवी पाई जाती हैं। तिर्यंच में ग्यारह पदवी पाई जाती हैं – सात एकेन्द्रिय रत्न, अश्वरत्न, हस्तीरत्न, सम्यग्दृष्टि और श्रावक। मनुष्य में अश्वरत्न हस्तीरत्न के सिवाय पांच पंचेन्द्रिय रत्न और नौ बड़ी पदवी पाई जाती हैं।

१९. सीझना (सिद्ध होना) द्वार का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २० वां पद)

पन्द्रह द्वारों से इस थोकड़े का वर्णन किया जाता है १ क्षेत्रद्वार, २ कालद्वार, ३ गतिद्वार, ४ वेदद्वार, ५ तीर्थद्वार, ६ लिंगद्वार, ७ चारित्रद्वार, ८ बुधद्वार, ९ ज्ञानद्वार, १० अवगाहनाद्वार, ११ उत्कृष्टद्वार, १२ अन्तरद्वार, १३ अनुसमयद्वार, १४ गण (संख्या) द्वार, १५ अल्पबहुत्वद्वार। यहां सिद्धों की जो संख्या बताई जायगी, वह एक समय की उत्कृष्ट संख्या समझना।

१ क्षेत्रद्वार – ऊर्ध्वलोक में ऊर्ध्वदिशा में प्रतिसमय चार सिद्ध होते हैं। अधोलोक में बीस सिद्ध होते हैं। अधोदिशा में सिद्ध नहीं होते। तिर्यग्लोक में तिर्यग्दिशा में १०८ सिद्ध होते हैं। समुद्र में दो सिद्ध होते हैं। समुद्र के सिवाय शेष जल में तीन सिद्ध होते

५ ज्ञान, ३अज्ञान की भजना। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान में ४ ज्ञान की भजना। केवलज्ञान में एक केवलज्ञान की नियमा।

मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान में ३ अज्ञान की भजना। विभंगज्ञान में अज्ञान की नियमा।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन में ४ ज्ञान,३ अज्ञान की भजना। अवधिदर्शन में ३ अज्ञान की नियमा, ४ ज्ञान की भजना। केवलदर्शन में एक केवलज्ञान की नियमा।

(१२) योगद्वार–सयोगी, मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। अयोगी में केवलज्ञान की नियमा।

(१३) लेश्याद्वार–सलेशी और शुक्ललेशी में ५ ज्ञान, ३ ज्ञान की भजना। कृष्णा लेशी, नीललेशी, कापोतलेशी, तेजोलेशी, पद्मलेशी में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। अलेशी में केवलज्ञान की नियमा।

(१४) कषायद्वार–सकषायी, क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। अकषायी में ५ ज्ञान की भजना।

(१५) वेदद्वार–सवेदी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी में ४ ज्ञान, ३ अज्ञान की भजना। अवेदी में ५ ज्ञान की भजना।

(१६) आहारद्वार–आहारक में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान की भज्ञना। अनाहारक में ४ ज्ञान (मनःपर्ययज्ञान को छोड़कर), ३ अज्ञान की भजना।

(१७) ज्ञानगोचरद्वार–हरेक ज्ञान का विषय ४ प्रकार से वताया गया है – द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से। मतिज्ञान के २ भेद–श्रुतनिश्रित, अश्रुतनिश्रित। मतिज्ञानी द्रव्य क्षेत्र काल भाव

हैं। मेरुपर्वत के सोमनसवन, भद्रशालवन और नन्दनवन में चार–चार सिद्ध होते हैं और पण्डकवन में दो सिद्ध होते हैं। विदेहदेश के प्रत्येक विजय में बीस सिद्ध होते हैं। अकर्मभूमि में दस सिद्ध होते हैं। पन्द्रह कर्मभूमि में १०८ सिद्ध होते हैं। चुल्लहिमवन्तपर्वत पर दस सिद्ध होते हैं।

२ कालद्वार —अवसर्पिणी काल के पहले दूसरे आरे में दस–दस, तीसरे चौथे आरे में १०८, एक सौ आठ, पांचवें आरे में बीस और छठे आरे में दस सिद्ध होते हैं। उत्सर्पिणीकाल के पहले, दूसरे आरे में दस दस, तीसरे चौथे आरे में १०८ एक सौ आठ तथा पांचवें छठे आरे में दस–दस सिद्ध होते हैं।

३ गतिद्वार – निम्नलिखित गतियों में से निकले हुए प्रति समय नीचे लिखे अनुसार सिद्ध होते हैं –

पहली दूसरी तीसरी नरक से निकले हुए..................दस–दस
चौथी नरक से निकले हुए...............................चार
भवनपति से निकले हुए ....दस
भवनपति देवियों से निकले हुए........................ पांच
व्यन्तर देवों से निकले हुए........................ दस
व्यन्तर देवियों से निकले हुए .... पांच
ज्योतिषी देवों से निकले हुए .... दस
ज्योतिषी देवियों से निकले हुए .... वीस
वैमानिक देवों से निकले हुए .... एक सौ आठ
वैमानिक देवियों से निकले हुए .... वीस
तिर्यंचपंचेन्द्रिय से निकले हुए .... दस
तिर्यंचस्त्री से निकले हुए .... दस
वनस्पति से निकले हुए .... छह
पृथ्वी पानी से निकले हुए ....चार–चार

से आदेसेण (सामान्यप्रकार से) सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जानता–देखता है। *

श्रुतज्ञान के १४ भेद–१ अक्षरश्रुत, २ अनक्षरश्रुत, ३ संज्ञीश्रुत, ४ असंज्ञीश्रुत, ५ सम्यक्‌श्रुत, ६ मिथ्याश्रुत, ७ सादिश्रुत, ८ अनादिश्रुत, ९ सपर्यवसितश्रुत, १० अपर्यवसितश्रुत, ११ गमिकश्रुत, १२ अगमिकश्रुत, १३ अङ्गप्रविष्टश्रुत, १४ अंगबाह्यश्रुत। श्रुतज्ञानी उपयोग सहित सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जानता–देखता है।

+अवधिज्ञान के ६ भेद–१ अनुगामी, २ अननुगामी, ३ वर्द्धमान, ४ हीयमान, ५ प्रतिपाती ६ अप्रतिपाती। अवधिज्ञानी उपयोग लगाकर द्रव्य से जघन्य अनन्तानन्त रूपी द्रव्य जानता–देखता है, उत्कृष्ट सर्व रूपी द्रव्य जानता–देखता है। क्षेत्र से जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग जानता–देखता है, उत्कृष्ट सर्व लोक और लोक सरीखे असंख्यात खण्ड अलोक में होवें तो जानता–देखता है। काल से जघन्य आवलिका के असंख्यातवें भाग भूतकाल और भविष्यकाल जानता–देखता है, उत्कृष्ट असंख्याती अवसर्पिणी

---

* भगवतीसूत्र के आठवें शतक के दूसरे उद्देशे की टीका में कहा है – 'अवायधारणे ज्ञानम्, अवग्रहेहे दर्शनम्' अर्थात् अवाय और धारणा ज्ञानरूप हैं तथा अवग्रह और ईहा दर्शनरूप हैं। इसलिये अवाय और धारणा की अपेक्षा से 'जाणइ' (जानना) कहा है तथा अवग्रह और ईहा की अपेक्षा से 'पासइ' (देखना) कहा है।

जातिस्मरण मतिज्ञान के पेटा में (अन्तर्गत) है। इस कारण से भगवतीसूत्र में 'जाणइ पासइ' कहा है। नन्दीसूत्र में – 'जाणइ न पासइ' कहा है, क्योंकि मतिज्ञान परोक्षज्ञान है।

+ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान के भेद–प्रभेद और विस्तार नन्दीसूत्र में हैं।

मनुष्य से निकले हुए......... .... दस
मनुष्यस्त्री से निकले हुए.............. .... बीस

पांचवीं, छठी, सातवीं नरक, तीन विकलेन्द्रिय, अग्नि और वायु से निकले हुए सिद्ध नहीं होते।

४. वेदद्वार – एक समय में स्त्री २०, नपुंसक १० और पुरुष १०८ सिद्ध होते हैं। पुरुष मर कर पुरुष हो तो १०८, पुरुष मरकर स्त्री हो तो दस तथा पुरुष मर कर नपुंसक हो तो १० सिद्ध होते हैं। स्त्री मर कर स्त्री, पुरुष या नपुंसक हो तो १०–१० सिद्ध होते हैं। इसी तरह नपुंसक मर कर नपुंसक, पुरुष या स्त्री हो तो दस–दस सिद्ध होते हैं।

५. तीर्थद्वार – एक समय में पुरुष तीर्थंकर ४, स्त्री तीर्थंकर २, प्रत्येकबुद्ध १०, स्वयंबुद्ध ४ और बुद्धबोधित १०८ सिद्ध होते हैं।

६. लिंगद्वार– एक समय में गृहलिंगी ४, अन्य लिंगी १० और स्वलिंगी १०८ सिद्ध होते हैं।

७. चारित्रद्वार – सामायिकचारित्र, सूक्ष्मसंपरायचारित्र और यथाख्यातचारित्र, ये तीन चारित्र स्पर्श कर एक समय में १०८ सिद्ध होते हैं। उक्त तीन चारित्र और छेदोपस्थापनीय चारित्र, ये चार चारित्र स्पर्श कर एक समय में १०८ सिद्ध होते हैं। पांच चारित्र स्पर्श कर एक समय में दस सिद्ध होते हैं।

८. बुधद्वार – आचार्य या बड़ी साध्वी से प्रतिबोध पाकर एक समय में पुरुष १०८, स्त्री २० और नपुंसक दस सिद्ध होते हैं।

९. ज्ञानद्वार – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, केवलज्ञान, ये तीन ज्ञान स्पर्श कर एक समय में ४ सिद्ध होते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, केवलज्ञान, ये चार ज्ञान स्पर्श कर एक समय में १०८

उत्सर्पिणी जितना भूतकाल (अतीतकाल), भविष्यकाल (अनागतकाल) जानता–देखता है। भाव से अनन्ता भाव जानता–देखता है। सब भावों के अनन्तवें भाग को जानता–देखता है।

मनःपर्ययज्ञान के २ भेद हैं–ऋजुमति, विपुलमति ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी द्रव्य से अनन्त–अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को जानता–देखता है। क्षेत्र से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट अधोदिशा में रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के और नीचे के क्षुल्लक (छोटे) प्रतरों को देखता है*, जैसा कि नंदीसूत्र का पाठ है–

"खेत्तओ णं उज्जुमई अ जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जयं भागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणंप्पभाए पुढवीए उवरिम हेट्ठिले खुड्डग पयरे।"

ऊर्ध्वदिशा (ऊंचीदिशा) में ज्योतिषी के ऊपर के तल को जानता–देखता है, तिर्यक्दिशा (तिरछीदिशा) में अढ़ाई अंगुल कम अढ़ाई द्वीप के संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के मन के भावों को जानता–देखता है। काल से पल के असंख्यातवें भाग, गया काल और आगामी काल सम्बन्धी जानता–देखता है। भाव से अनन्त भाव जानता–देखता है, सब भावों के अनन्तवें भाग को जानता–देखता है।

ऋजुमति के समान ही विपुलमति का कथन कर देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षेत्र की अपेक्षा सम्पूर्ण अढाई द्वीप को जानता–देखता है और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में कुछ

---

* नोटः– चूंकि मनःपर्ययज्ञानी नीचे शिलावनी विजय की अपेक्षा १००० योजन तक देख सकता है, इसलिये रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के और नीचे के क्षुल्लक प्रतर इन्हीं १००० योजन के अन्दर ही समझना चाहिये।

सिद्ध होते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, ये चार ज्ञान स्पर्श कर एक समय में दस सिद्ध होते हैं। पांच ज्ञान स्पर्श कर एक समय में १०८ सिद्ध होते हैं।

१०. अवगाहनाद्वार – एक समय में जघन्य अवगाहना वाले ४, मध्यम अवगाहना वाले १०८ और उत्कृष्ट अवगाहना वाले २ सिद्ध होते हैं।

११. उत्कृष्टद्वार – अपडवाइ (अप्रतिपाती) एक समय में चार सिद्ध होते हैं। अनन्तकाल के पडिवाइ (प्रतिपाती) एक समय में १०८, असंख्यातकाल के पडिवाइ और संख्यातकाल के पडिवाइ एक समय में दस–दस सिद्ध होते हैं।

१२–१३. अन्तरद्वार, अनुसमयद्वार–जब पहले समय में १०३ यावत् १०८ सिद्ध होते हैं तब दूसरे समय में अवश्य अन्तर पड़ता है। जब दो समय तक प्रति समय ९७ से लेकर १०२ तक सिद्ध होते हैं तब तीसरे समय में अन्तर अवश्य पड़ता है। यदि तीन समय तक प्रति समय ८५ से ९६ तक निरन्तर सिद्ध होते हैं तब चौथे समय में अन्तर अवश्य पड़ता है। जब चार समय तक प्रति समय ७३ से ८४ तक निरन्तर सिद्ध होते हैं तब पांचवें समय में अन्तर अवश्य पड़ता है। जब पांच समय तक प्रति समय ६१ से ७२ तक निरन्तर सिद्ध होते हैं तब छठे समय में अन्तर अवश्य पड़ता है। जब छह समय तक प्रति समय निरन्तर ४९ से ६० तक सिद्ध होते है तब सातवें समय में अन्तर अवश्य पड़ता है। जब सात समय तक लगातार प्रतिसमय ३३ से लेकर ४८ तक सिद्ध होते हैं तब आठवें समय में अन्तर अवश्य पड़ता है। यदि आठ समय तक निरन्तर प्रति समय १ से ३२ तक सिद्ध होते है तब नवें समय में अन्तर अवश्य पड़ता है।

१४. गण (संख्या) द्वार – एक समय में १०८ सिद्ध होने

अधिक विस्तार सहित, विशुद्ध (निर्मल), अधिक स्पष्ट जानता–देखता है।

केवलज्ञान के दो भेद–भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धकेवलज्ञान। केवलज्ञान सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जानता–देखता है।

मति–अज्ञानी द्रव्य क्षेत्र काल भाव से ग्रहण किये हुए पुद्गलों को जानता–देखता है। श्रुत–अज्ञानी द्रव्य क्षेत्र काल भाव से ग्रहण किये हुए पुद्गलों को कहता है, बतलाता है, प्ररूपणा करता है। विभंगज्ञानी द्रव्य क्षेत्र काल भाव से ग्रहण किये हुए पुद्गलों को जानता–देखता है।

(१८) कालद्वार–ज्ञानी के ज्ञान की स्थिति की मर्यादा को काल कहते हैं। स्थिति दो प्रकार की है – १ साइया–सपज्जवसिया (आदि–अंतसहित), २ साइया–अपज्जवसिया (आदि है, किंतु अंत रहित), समुच्चय ज्ञानी में भांगा पाये जाते हैं २, साइया–अपज्जवसिया और साइया–सपज्जवसिया। साइया–अपज्जवसिया की स्थिति नहीं। साइया–सपज्जवसिया की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर झाझेरी। मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ६६ सागरोपम झाझेरी। अवधिज्ञान की स्थिति जघन्य १ समय की, उत्कृष्ट ६६ सागरोपम झाझेरी। मनःपर्ययज्ञान की स्थिति जघन्य १ समय की, उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) करोड़ पूर्व की। केवलज्ञान में भांगा पाया जाता है १ साइया–अपज्जवसिया, केवलज्ञान उत्पन्न होकर फिर कभी नष्ट नहीं होता।

समुच्चय अज्ञान और मति–अज्ञान श्रुत–अज्ञान में भांगा होते हैं तीन–१ अणाइया–अपज्जवसिया (आदिअन्तरहित)। २ अणाइया–सपज्जवसिया (आदि नहीं, किंतु अन्त है)। ३ साइया–सपज्जवसिया (आदि–अन्तसहित)। पहला भांगा अभवी जीवों में पाया

वाले सबसे थोड़े, १०७ सिद्ध होने वाले अनन्तगुणा। इसी तरह १०६, १०५ यावत् ५१ तक सिद्ध होने वाले अनन्तगुणा। उनकी अपेक्षा एक समय में ५० सिद्ध होने वाले असंख्यातगुणा। इसी तरह ४९, ४८ यावत् २६ तक सिद्ध होने वाले असंख्यातगुणा। इनकी अपेक्षा एक समय में २५ सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा। इसी तरह २४, २३, २२, २१ यावत् एक सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा।

१५. अल्पबहुत्व – जिस क्षेत्र में एक समय में १०८ सिद्ध होते हैं, उस क्षेत्र में आठ समय तक निरन्तर सिद्ध होते हैं। जिस क्षेत्र में एक समय में बीस सिद्ध होते हैं, उस क्षेत्र में चार समय तक निरन्तर सिद्ध होते हैं। जिस क्षेत्र में एक समय में दस सिद्ध होते हैं, उस क्षेत्र में भी चार समय तक निरन्तर सिद्ध होते हैं। जिस क्षेत्र में एक समय में दो, तीन या चार सिद्ध होते हैं, वहां एक समय तक ही सिद्ध होते हैं। दूसरे समय में अन्तर पड़ता है।

२०. सिद्धों का तेतीस बोल का अल्पबहुत्व

(पन्नवणासूत्र, २० वां पद)

वैसे जीव मनुष्यभव में ही सिद्ध होता है, अतः मनुष्यभव ही चरम भव है। तेतीस स्थानों से चरम मनुष्यभव में आकर जीव सिद्ध होते हैं। ये तेतीस स्थान चरमभव से अव्यवहित पूर्व भव के समझना। इन तेतीस स्थानों में किस स्थान से निकले हुए जीव थोड़े और किस स्थान से निकले हुए अधिक सिद्ध होते हैं, यह अल्पबहुत्व ही इस थोकड़े का विषय है।

१. सबसे थोड़े चौथी नरक से निकले हुए सिद्ध।
२. तीसरी नरक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
३. दूसरी नरक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
४. वनस्पतिकाय से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।

जाता है। दूसरा भांगा भवी जीवों में पाया जाता है। तीसरा भांगा पडिवाई भवी जीवों में पाया जाता है। समुच्चय अज्ञान, मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान तीसरे भांगे की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्‌गलपरावर्तन की। विभंगज्ञान की स्थिति जघन्य १ समय की, उत्कृष्ट ३३ सागर देशोन करोड़ पूर्व अधिक की।

(१९) * अन्तरद्वार– ×समुच्चय ज्ञान में भांगा होते हैं दो– १ साइया–अपज्जवसिया २ साइया–सपज्जवसिया। साइया–अपज्जवसिया का आन्तरा नहीं, समुच्चय ज्ञान का दूसरा भांगा, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान का आन्तरा जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्‌गलपरावर्तन का, केवलज्ञान का आन्तरा नहीं। समुच्चय अज्ञान, मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान के भांगे तीन तीन – १ अणाइया–अपज्जवसिया, २ अणाइया–असपज्जवसिया, ३ साइया–सपज्जवसिया। पहले, दूसरे भांगे का आन्तरा नहीं। तीसरे भांगे का आन्तरा जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट ६६ सागर झाझेरी। विभंगज्ञान का आन्तरा जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्त काल का (वनस्पतिकाल जितना)।

(२०) अल्पबहुत्वद्वार– १ सबसे थोड़ा मनःपर्ययज्ञानी, २

---

*एक बार उत्पन्न होकर नष्ट होने के समय से लगा कर दूसरी बार उत्पन्न होने के समय तक बीच में जो आन्तरा (व्यवधान) पड़ता है, उसको अन्तर कहते हैं।

× समुच्चय–अज्ञान, मति–अज्ञान श्रुत–अज्ञान के दो (१ अणाइया–अपज्जवसिया २ अणाइया–सपज्जवसिया) भांगे के हिसाब से छः भांगे और एक समुच्चय ज्ञान का भांगा साइया–अपज्जवसिया और एक केवलज्ञान, इन ८ भांगों का आन्तरा नहीं होता। अज्ञान छोड़कर बाकी सब बोलों में आन्तरा पड़े तो देश उणा अर्द्धपुद्‌गलिक काल का और समुच्चय अज्ञान मति–अज्ञान श्रुत–अज्ञान का तीसरा भांगा साइया–सपज्जवसिया का आन्तरा जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर झाझेरी। विभंगज्ञान का आन्तरा पड़े तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्ताकाल का जाव वनस्पतिकाल।

५. पृथ्वीकाय से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
६. अप्काय से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
७. भवनपति की देवियों से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
८. भवनपति देवों से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
९. व्यन्तर देवियों से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१०. व्यन्तर देवों से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
११. ज्योतिषी देवियों से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१२. ज्योतिषी देवों से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१३. मनुष्यस्त्री से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१४. मनुष्य से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१५. पहली नरक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१६. तिर्यंचस्त्री से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१७. तिर्यंचपंचेन्द्रिय से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१८. अनुत्तरविमान देवों से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
१९. नवग्रैवेयक देवों से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२०. बारहवें देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२१. ग्यारहवें देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२२. दसवें देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२३. नवें देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२४. आठवें देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२५. सातवें देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२६. छठे देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२७. पांचवें देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२८. चौथे देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
२९. तीसरे देवलोक से निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।
३०. दूसरे देवलोक की देवियोंसे निकले हुए सिद्ध संख्यातगुणा।

उससे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणा, ३ उससे मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी आपस में तुल्य (बराबर), विशेषाहिया, ४ उससे केवलज्ञानी अनन्तगुणा, ५ उससे समुच्चयज्ञानी विशेषाहिया।

तीन अज्ञान का अल्पबहुत्व – १ सब से थोड़ा विभंगज्ञानी, २ उससे मति–अज्ञानी श्रुत–अज्ञानी आपस में तुल्य अनन्तगुणा, ३ उससे समुच्चय अज्ञानी विशेषाहिया।

ज्ञान–अज्ञान दोनों की शामिल अल्पाबोध – १ सब से थोड़ा मनःपर्ययज्ञानी, २ उससे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणा, ३ उससे मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी आपस में तुल्ला विशेषाहिया, ४ उससे विभङ्गज्ञानी असंख्यातगुणा, ५ उससे केवलज्ञानी अनन्तगुणा, ६ उससे समुच्चयज्ञानी विशेषाहिया, ७ उससे मति–अज्ञानी श्रुत–अज्ञानी आपस में तुल्य अनन्तगुणा, ८ उससे समुच्चयअज्ञानी विशेषाहिया।

(२१) पर्याय की अल्पबहुत्व द्वार (परजवाद्वार)– एक एक ज्ञान के अनन्तानंत परजवा हैं। १ सब से थोड़े मनःपर्ययज्ञान के परजवा, २ उससे अवधिज्ञान के परजवा अनन्तगुणा, ३ उससे श्रुतज्ञान के परजवा अनन्तगुणा, ४ उससे मतिज्ञान के परजवा अनन्तगुणा, ५ उससे केवलज्ञान के परजवा अनन्तगुणा।

तीन अज्ञान के परजवा अनन्तानन्त हैं।इनकी अल्पाबोध– १ सब से थोड़ा विभङ्गज्ञान के परजवा, २ उससे श्रुत–अज्ञान के परजवा अनन्तगुणा, ३ उससे मति–अज्ञान के परजवा अनन्तगुणा।

१८. पदवी का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, बीसवां पद)

इस थोकड़े में सात द्वारों से पदवी का वर्णन किया गया है। सात द्वार – १ नामद्वार, २ उत्पत्तिद्वार, ३ अवगाहनाद्वार, ४